साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२३ अंक-२ ❖ पृष्ठ ८८ | भाद्रपद-आश्विन, संवत्-२०७४ | सितंबर २०१७

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२

फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

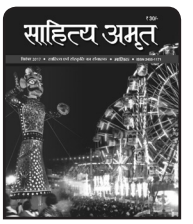

इस अंक में

संपादकीय

नए राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का… ४

प्रतिस्मृति

कदंब के फूल/ *सुभद्रा कुमारी चौहान* १०

स्मरण

प्रभु के सहचर-रसाद्वैत संत श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार/ *रेणु रजवंशी गुप्ता* १२

तिरानबे वर्ष निरंतर खिला एक गुलाब/ *हरीश नवल* ३६

कवि-गद्यकार अजित कुमार/ *संदीप जायसवाल* ५२

कहानी

बुढ़ापे की डगर/ *मनमोहन गुप्ता* १४

माटी कहे कुम्हार की…/ *तुलसी देवी तिवारी* २८

परोपकार…न बाबा न/ *राहिला रईस* ५४

तूलिका/ *लवलेश दत्त* ६६

लघुकथा

बाबूजी का कुरता/ *सत्य शुचि* ५१

क्षतिपूर्ति के चेहरे/ *सत्य शुचि* ६५

आलेख

किशोरियों का आश्विन पर्व : भोंडला/ *मालती शर्मा* १७

भारत को विकसित राष्ट्र बनाने में हिंदी का विज्ञान में…/ *दुर्गादत्त ओझा* ३४

वैश्विक हिंदी की भावी चुनौतियाँ/ *राजेश्वर उनियाल* ६२

संस्मरण

वे अध्यापक, जिनके ममता भरे स्पर्श ने मुझे गढ़ा/ *प्रकाश मनु* २०

कविता

जियो और जीने दो सबको…/ *आर.एस. पांडेय* १९

भाषा का दर्द/ *राहुल* ३३

कंटकों से परहेज क्या ?/ *संकटा प्रसाद मिश्र* ३५

हिंदी : रस से परिपूर्ण/ *विनीता सहल* ५६

छोड़ दो तुम आँधियों से क्या लड़ोगे/ *राकेश भ्रमर* ५७

हिंदी की अलख/ *गौतम अरोड़ा 'सरस'* ७३

हाइकु/ *दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* ७६

राम झरोखे बैठ के

साहित्य के इवेंट मैनेजर/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३९

व्यंग्य

सट्टा एक स्प्रिच्युअल गेम/ *दिनेश बैस* ४२

हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य : झींकना/ *बिमल लाठ* ५०

उपन्यास-अंश

खुशहालियों के बीच…/ *सूर्यबाला* ४७

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

आशीर्वाद/ *संयुक्ता महांति* ५८

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

खिलती झाड़ी/ *कारमैन बरगोस* ७०

यात्रा-संस्मरण

नरई/ *श्रीकांत उपाध्याय* ७२

लोक-साहित्य

लोकगीतों में स्वातंत्र्य चेतना की अभिव्यक्ति/ *उषा निगम* ७४

बाल-संसार

आएँगे मेहमान अभी/ *संजीव ठाकुर* ७७

बेबो को मिल गई सीख/ *पवन चौहान* ७८

वर्ग-पहेली ८०

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८१

साहित्यिक गतिविधियाँ ८४

संपादकीय

नए राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का अभिनंदन

भारत में नए राष्ट्रपति मान. श्री रामनाथ कोविंद और उपराष्ट्रपति मान. श्री वैंकय्या नायडू ने संविधान के अनुसार अपने पद की शपथ ग्रहण की। उनका हार्दिक-स्वागत अभिनंदन! प्रारंभ से ही चुनाव का गणित राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.) के पक्ष में था, परंतु मुख्य विपक्षी दल और उनके सहयोगियों ने कहा कि सिद्धांतों के आधार पर फिर भी वे अपने प्रत्याशी खड़े करेंगे। वैसे यू.पी.ए. में तो आपस में ही अनेक मतभेद हैं। फिर भी उन्होंने सेकुलरिज्म, सोशलिज्म, असहिष्णुता, विभेदकारी राजनीति, महिलाओं, दलितों और अल्पसंख्यकों की असुरक्षा आदि के मुद्दे उठाए। संविधान में राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के अधिकार तथा दायित्व रेखांकित हैं। संविधान हर व्यक्ति और वर्ग को समान अधिकार देता है। सेकुलरिज्म और सोशलिज्म शब्द घिसते-घिसते अर्थहीन हो गए हैं। न्यायपालिका, विशेषतया सर्वोच्च न्यायालय का दायित्व है कि संविधान की लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन न हो। विरोध पक्ष की ओर से शुरू में नीतीश कुमार और ममता बनर्जी ने गोपाल कृष्ण गांधी का नाम राष्ट्रपति के लिए प्रस्तावित किया, पर कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी ने उस समय इस प्रस्ताव को स्थगित कर दिया। इसी बीच राजग ने बिहार के राज्यपाल रामनाथ कोविंद को अपना प्रत्याशी घोषित कर दिया। वे एक साधारण गरीब परिवार एवं गाँव से आते हैं और कोरी अनुसूचित जाति के हैं। उनको जनसेवा और सर्वोच्च न्यायालय में कानूनी प्रैक्टिस का अनुभव है। मोरारजी के स्टाफ में भी वे रहे हैं। बी.ए. और एल-एल.बी. की डिग्रियाँ उन्होंने अर्जित की हैं। राज्यसभा के दो बाद सदस्य और संसद् में एक समिति के अध्यक्ष तथा कुछ अन्य समितियों के सदस्य रहे हैं। वे सक्रिय सांसद थे। राज्यपाल का संवैधानिक पद उन्होंने गरिमा से सुशोभित किया।

कांग्रेस ने अंत में उनके मुकाबले में श्रीमती मीरा कुमार को प्रत्याशी घोषित कर दिया। जब कांग्रेस का चुनावी गणित सही हो, तब और जब नहीं हो, तब भी उसकी कोशिश यही रहती है कि कोई कांग्रेसी ही राष्ट्रपति बने। इसके पहले ही नीतीश कुमार ने घोषणा कर दी कि श्री रामनाथ कोविंद का राज्यपाल की हैसियत से व्यवहार निष्पक्ष एवं हर प्रकार से विवाद रहित रहा है और वे उनका समर्थन करेंगे। बी.एस.पी. की अध्यक्ष मायावती ने पहले कहा कि वे कोविंद का समर्थन करेंगी, क्योंकि वे दलित हैं, किंतु यदि उनसे अच्छा कोई प्रत्याशी आया तो फिर उसका समर्थन करेंगी। इसी को आधार बनाकर उन्होंने अंत में मीरा कुमार का समर्थन किया। वे भी अनुसूचित जाति की हैं। वे स्व. जगजीवनराम की बेटी हैं, विदेश सेवा में रहीं और मंत्री तथा लोकसभा की स्पीकर भी रहीं। दोनों प्रत्याशी वोट माँगने के लिए राज्यों में भी गए, क्योंकि विधानसभाओं के सदस्य और लोकसभा के सदस्य राष्ट्रपति के लिए इलेक्टोरेट बनाते हैं। मीराजी ने वक्तव्य दिए कि उनकी विचारधारा क्या है और उनका मंतव्य क्या है। कोविंदजी ने राज्यों की अपनी यात्रा बड़ी संजीदगी से की। ज्यादा वक्तव्य नहीं दिए। उनका केवल इतना कहना था कि अब वे राज्यपाल होने के बाद किसी दल से संबंधित नहीं हैं और बिना पक्षपात संविधान की अपेक्षा के अनुसार निर्णय करेंगे। माननीय कोविंद का बयान, जो उन्होंने राष्ट्रपति के चुने जाने के बाद दिया और जो आह्वान उन्होंने स्वाधीनता की पूर्व संध्या पर किया, वह उनकी प्रज्ञा, वृहद् सामाजिक संवेदना तथा देश की जमीनी परिस्थितियों की जानकारी का परिचायक है। जैसा पहले से स्पष्ट था, श्री रामनाथ कोविंद ने आशा से भी अधिक मत प्राप्त किए और वे भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित घोषित हुए।

उपराष्ट्रपति के लिए कांग्रेस अध्यक्ष ने गोपालकृष्ण गांधी को नामित किया। हम उन्हें मसूरी नेशनल प्रशासनिक अकादमी से भी जानते हैं, जब वे आई.एस. के प्रशिक्षु (प्रोवेशनर) के रूप में वहाँ प्रशिक्षण के लिए पहुँचे थे। बाद में भी सेवाकाल में मिलना-जुलना होता रहा। वे मेधावी हैं। प्रशासन का अच्छा अनुभव है। भारत के दक्षिण अफ्रीका में उच्चायुक्त नियुक्त हुए थे, बाद में कुछ देशों में राजदूत भी रहे। पश्चिम बंगाल के राज्यपाल भी नियुक्त हुए। सोनिया गांधी यदि उनको पहले राष्ट्रपति के लिए नामित कर देतीं तो विरोध पक्ष की शायद इतनी बड़ी हार न होती, क्योंकि नीतीश उस समय उनके समर्थक थे। अपनी विचारधारा के आधार पर गोपाल गांधी ने उपराष्ट्रपति प्रत्याशी होना भी स्वीकार कर लिया। चुनाव को आइडियालिकल रंग देने की चेष्टा की गई। चुनाव में कोई कटुता पैदा नहीं हुई। सत्तापक्ष और उनके सहयोगियों ने श्री वैंकय्या नायडू को उपराष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशित बनाया। पार्टी संघटन का उनको दीर्घकालीन अनुभव है। पेशे से वकील रहे, वे दो बार आंध्र प्रदेश विधानसभा के सदस्य रहे। उनको भाजपा का अध्यक्ष होने का भी गौरव प्राप्त है। वाजपेयी और मोदी मंत्रिमंडल में उनको कई मंत्रालयों में काम करने का अवसर मिला। संसदीय कार्यप्रणाली की अच्छी जानकारी है। तेलुगू, हिंदी और अंग्रेजी के अच्छे वक्ता हैं। हाजिरजवाब हैं और अपनी बात को हास्य तथा प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं। सभी दलों के नेतृत्व से उनके अच्छे संबंध हैं।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनावों के समय यह कहा गया कि श्री कोविंद और श्री नायडू दोनों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से लंबे अरसे से जुड़े रहे और भारतीय जनता पार्टी से भी, तो क्या वे उनकी विचारधारा से ऊपर उठ सकते हैं। यह एक प्रकार का दुष्प्रचार ही था। राजग के दोनों प्रत्याशियों ने बार-बार स्पष्ट किया कि वे सब दलों से अलग हैं, अपने संवैधानिक पदों के दायित्वों का निर्वहन बिना किसी भेदभाव के और संविधान के अनुसार करेंगे। अभी तक केवल भैरोंसिंह शेखावत ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा से संबंधित थे, जो उपराष्ट्रपति के चुनाव में विजयी हुए थे। उनका कार्यकाल हर दृष्टि से प्रशंसनीय रहा। इस प्रचार में अंग्रेजी मीडिया खासकर शामिल रहा। वास्तव में जो शंकाएँ या शिकायतें

रहीं, उन्हें खुलकर नहीं कहा जाता था। अंदर-अंदर प्रचार हो रहा था। पहली यह कि कोविंद और वैंकय्या नायडू उतने 'सोफिस्टिकेटेड' या 'रिफाइंड' नहीं, जैसे इन पदों पर पहले के लोग रहे हैं। वे हमेशा अंग्रेजी में ही बात नहीं करते हैं। दिल्ली में एक लुटाइनस सर्कल या सेट है, जिसमें कुछ राजनेता, कुछ पत्र-पत्रिकाएँ और दृश्य मीडिया के मालिक, कुछ पूर्व अधिकारी, मीडिया के लोग तथा कुछ पूँजीपति भी शामिल हैं, और जिनकी नाक सदैव ऊँची रहती है, वे इनको अपने क्लास का नहीं समझते। उनको यही दु:ख है कि अब शायद वे सत्ता को पीछे रहकर इस्तेमाल नहीं कर पाएँगे या प्रभावित नहीं कर पाएँगे। अभी तक उनकी चलती थी, अब शायद न चल सकेगी। इस सीमित और क्लोज्ड सर्कल का यह भ्रम दूर हो गया है कि जो सरकार सत्तारूढ़ है, उसको वे अब कठपुतलियों की तरह नहीं नचा पाएँगे। यह लुटाइनस सर्कल अनौपचारिक है। इसके सदस्य अदलते-बदलते रहते हैं। यह एक प्रकार का प्रेशर ग्रुप है, जो चुपचाप सत्ता को प्रभावित करने की कोशिश करता है। इनमें से बहुतों के विदेश से संबंध हैं। वे चतुराई से काम करते हैं। राष्ट्रपति अनुसूचित जाति के हैं और उपराष्ट्रपति अन्य पिछड़ा वर्ग के हैं। यह इलाइटिस्ट मेंटलिटी अथवा तथाकथित संभ्रांत वर्ग की मानसिकता है।

दूसरा दु:ख यह है कि अब तीनों उच्च संवैधानिक पदों पर संघ और भाजपा से जुड़े रहे महानुभाव आसीन हैं। प्रधानमंत्री संवैधानिक पद पर होते हुए भी एक राजनीतिक दल का नेता होता है। नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री हैं। कोविंद राष्ट्रपति और नायडू उपराष्ट्रपति, अतएव सब सत्ता एक विचारधारा वालों में केंद्रित हो गई है, इसलिए देश के भविष्य के बारे में बहुत से संपादकीय और आलेखों में चुनाव के पहले और चुनाव के बाद भी समय-समय पर तरह-तरह से शंकाएँ प्रकट की गईं और की जा रही हैं। यह भी कहा गया कि आइडिया ऑफ इंडिया या भारत की परिकल्पना टूटने का डर है, मानी आइडिया ऑफ इंडिया एक दल की या एक परिवार की धरोहर है। पहले भी तीनों पदों पर एक विचारधारा के व्यक्ति विराजमान रहे हैं। तब यह शंका क्यों नहीं उठाई गई? आपातकाल की घोषणा क्या ऐसे दिनों में नहीं हुई? असल में इन लोगों को घुटन और चिढ़ नरेंद्र मोदी से है। वह उन्हें लोनर लगते हैं, उनकी अपनी सोच है, उसका कोई क्या कर सकता है।

कुछ लोग 'सोशलाइज' करते हैं। मोदी पार्टियों-समारोहों में एक-दूसरे की पीठ नहीं ठोकते। मोदी ने सत्ता के गणित में जो उलट-पलट कर दी है, शायद सभी पुराने सत्ताभोगियों को वह खलती है, अखरती है। सत्ता का स्वभाव ही चंचल है। लोकतंत्र का तो आधार ही है कि राजनीतिक दल आएँगे, जाएँगे। फिर शंकालु होने की क्या और क्यों आवश्यकता है? वैसे तो न जाने कितनी बार दिल्ली बनी और बिगड़ी। जायसी ने तो वैसे भी दिल्ली को निबहुरी कहा है। किंतु आज तो लोकतंत्र है, जनता निर्णायक होगी कि सत्ता का दुरुपयोग किसने किया है। संविधान सत्ता को नियंत्रित करता है। किसी प्रकार की आशंका बेबुनियाद है। हमें संसद् में दोनों के सहयोगी होने का सौभाग्य प्राप्त है। हमें पूर्ण आशा है कि मान. राष्ट्रपति महोदय श्री रामनाथ कोविंद और मान. उपराष्ट्रपति श्री वैंकय्या नायडू अपने कार्यकाल में अपने पदों की सार्थकता पूर्णतया प्रमाणित करेंगे।

भारत छोड़ो आंदोलन और राजनैतिक दलों का रुख

संसद् के दोनों सदनों में ८ अगस्त के आंदोलन को श्रद्धापूर्वक स्मरण किया गया। वक्ताओं ने उसके महत्त्व पर अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत किए। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि १९४२ से १९४७ का समय बड़े उथल-पुथल का समय था, देश में जन-जागृति बढ़ रही थी। गांधीजी के नेतृत्व में अंततोगत्वा स्वाधीनता प्राप्त हुई। दोनों सदनों ने प्रस्ताव पारित किए, किंतु बहस के दौरान सामूहिक सम्मान के स्थान पर अगस्त आंदोलन विवाद के भँवर में फँस गया। जवाहरलाल नेहरू का नाम प्रधानमंत्री द्वारा न लेने के कारण कांग्रेस नाराज हो गई। नेहरूजी ने गांधीजी के भारत छोड़ो प्रस्ताव को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में औपचारिक रूप में पेश किया था और सरदार पटेल ने उसका समर्थन किया। अतएव सोनिया गांधी ने बिना संघ या भाजपा का नाम लिये कहा कि ऐसे दल भारत छोड़ो आंदोलन का श्रेय लेना चाहते हैं, जिन्होंने कभी स्वतंत्रता आंदोलन में भाग नहीं लिया और उसका विरोध किया। यहाँ तक कहा कि देश में ऐसी शक्तियाँ उभर रही हैं, जो देश की एकता और अखंडता के लिए खतरा हैं और कांग्रेस उनका भरसक विरोध करेगी। पूरी नोकझोंक के विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। यह जरूर है कि उस समय स्थिति विचित्र थी। जो लोग उस काल के साक्षी रहे हैं, उन्हें ही इसका कुछ एहसास है।

प्रारंभ में पं. नेहरू और मौलाना आजाद किसी प्रकार के आंदोलन के विरुद्ध थे, क्योंकि प्रजातंत्रात्मक और फासीवादी देशों की लड़ाई में वे नहीं चाहते थे कि साम्राज्यवादी होते हुए भी प्रजातंत्रात्मक देश कमजोर हों। उनकी सहानुभूति ब्रिटेन और फ्रांस के साथ थी। राजाजी भी इसी विचार के थे और उन्होंने तो अंत में कांग्रेस छोड़ ही दी थी। मौ. आजाद ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि गांधीजी सुभाषचंद्र बोस से बहुत प्रभावित हो रहे थे। स्वतंत्रता की खोज में देश से बाहर जाने के बाद सुभाष बोस निरंतर कोशिश में थे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध जंग छेड़ी जाए। आजाद हिंद रेडियो से अपने भाषणों में वे लगातार ब्रिटेन से किसी प्रकार के समझौते के खिलाफ बोलते थे। चर्चिल सरकार की भारत की स्वाधीनता के प्रति अस्पष्टता और टालमटोल के कारण अंत में नेहरू और आजाद गांधीजी से सहमत हो गए, और इस प्रकार भारत छोड़ा आंदोलन का सूत्रपात हुआ।

उस समय जो मुख्य राजनीतिक दल देश में थे, उनके दृष्टिकोण अलग-अलग थे। जिन्ना की मुसलिम लीग, जो ब्रिटिश सरकार के समर्थन के कारण तथा कांग्रेस की सरकारों के इस्तीफा देने के कारण काफी मजबूत हो गई थी, वह मुसलमानों में लोकप्रिय हो रही थी। उसने विरोध किया कि यदि ब्रिटिश राज समाप्त हुआ तो हिंदू राज स्थापित हो जाएगा और मुसलमानों पर अत्याचार होंगे। १९४० में लीग का लाहौर प्रस्ताव देश-विभाजन के बारे में पारित हो चुका था। हिंदू महासभा के अध्यक्ष वीर सावरकर ने नारा दिया—'हिंदुआइज पालिटिक्स ऐंड मिलीटराइज हिंदुज्म'। वे चाहते थे कि हिंदुओं में राजनीति के प्रति जागरूकता बढ़े, वे अपने हितों को पहचानें, फौज में भरती हों और अधिकाधिक शस्त्रों की शिक्षा लें। कम्युनिस्ट पार्टी पहले द्वितीय विश्व युद्ध को साम्राज्यवादियों का युद्ध कह रही थी और ब्रिटिश सरकार विरोधी थी, पर जैसे ही जर्मनी ने सोवियत रूस पर आक्रमण किया तो उनका रुख बदल गया। अब वह जनता का युद्ध हो गया। पी.सी. जोशी और मैक्सवेल में समझौता हो गया। वह पूरी तरह सरकार के साथ चली गई और अगस्त आंदोलन की विरोधी हो गई। एम.एन. राय की रेडिकल पार्टी थी, जो कम्युनिस्ट पार्टी से अलग

थी, किंतु अपने को मार्क्स की विचारधारा पर आधारित कहती थी, वह भी अगस्त आंदोलन के विरुद्ध थी।

डॉ. अंबेडकर का खयाल था कि दलितों की सुरक्षा और अधिकारों की रक्षा ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत बेहतर है एवं उस समय के वातावरण में वे भी अगस्त आंदोलन के विरोध में थे। संघ जो एक सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन है, का कहना था कि संघ संस्था के रूप में अलग रहेगा, पर इसके सदस्य अपनी इच्छानुसार भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेना चाहें तो ले सकते हैं। किस्सा लंबा है। अब दस्तावेज उपलब्ध हैं, जो देखे जा सकते हैं। वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी राज से स्वाधीनता सब चाहते थे, किंतु पहले वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि अंग्रेजों के जाने के बाद आखिर सत्ता कब, किस प्रकार और किसके पास जाती है। कांग्रेस में विशेषतया कांग्रेस सोशलिस्टों जयप्रकाश, अच्युत पटवर्धन, लोहिया आदि ने आंदोलन में बहुत सक्रियता से भाग लिया और कष्ट सहे, पर अब ये इतिहास की बातें रह गई हैं। विवादों से ऊपर उठकर अगस्त आंदोलन का स्वागत और सम्मान सामूहिक रूप से होना चाहिए। आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिए यह सदैव प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

संकल्प से सिद्धि

सत्तरवें स्वाधीनता दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री मोदी के देश के नाम उद्‌बोधन की हम संक्षेप में चर्चा करना चाहेंगे। मुद्‌दे और समस्याएँ अनेक हैं तथा उनपर विचार-विमर्श चलता रहेगा। प्रधानमंत्री ने कई राज्यों में प्राकृतिक विपदाग्रस्त लोगों के प्रति संवेदना व्यक्त की और गोरखपुर के अस्पताल में हुई त्रासदी, बच्चों की मृत्यु पर दुःख और संवेदना प्रकट की। उन्होंने अपने तीन वर्षों की मुख्य उपलब्धियों की चर्चा की। स्वतंत्रता दिवस पर संकल्प लेने और सिद्धि प्राप्त करने का आह्वान किया। देश से सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, असहिष्णुता, भ्रष्टाचार और संकुचित वृत्तियाँ, गरीबी, गंदगी आदि दूर करने का संकल्प लें। उन्होंने कहा, धर्म के नाम पर हिंसा अस्वीकार्य है। जम्मू-कश्मीर की समस्या न गाली (वाक् युद्ध) से और न गोली से होगी, आवश्यकता है गले लगाने की। देखना है कि इसकी प्रतिक्रिया कश्मीर घाटी में क्या होती है। विदेश नीति के बारे में कुछ नहीं कहा। आश्वासन दिया कि आंतरिक और बाह्य सुरक्षा सरकार की प्राथमिकता है। तीन तलाक के विरुद्ध महिलाओं के आंदोलन का भी उन्होंने जिक्र किया। उन्होंने एक नए भारत की तसवीर प्रस्तुत की। आह्वान किया कि 'सब चलता है' की मानसिकता को हम बदल सकते हैं। 'भारत छोड़ो' आंदोलन के अवसर पर 'भारत जोड़ो' का संकल्प लें। उनका आह्वान सबके सहयोग का है। उन्होंने कहा, दौड़कर २०२२ तक नए भारत के संकल्प को पूरा करें। तब तक गरीब के पास कंक्रीट के मकान होंगे, किसान की आमदनी दो गुनी होगी और महिलाओं को बहुत सारे अवसर प्राप्त होंगे, तब तक भारत जातिवाद, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद से मुक्त होकर स्वच्छ भारत होगा। प्रधानमंत्री का आह्वान, आश्वासन सुहावना और प्रेरणादायक है। पर यह रास्ता लंबा और कंटकाकीर्ण है। सावधानी से हर कदम का आकलन आवश्यक है, अभी तक जो कदम उठाए गए हैं, उनका निष्पक्ष मूल्यांकन होना चाहिए, ताकि जो कमियाँ हैं, उनको दूर किया जा सके।

कुछ समस्याएँ हैं, जिनका समाधान अत्यावश्यक है। पहली समस्या कृषि संबंधी है, किसानों की कर्ज माफी का, उनकी आत्महत्या का और उनको उनकी उपज की उचित कीमत क्यों नहीं दी जाती है, ताकि वे कृषि से जुड़े रहें। दूसरी समस्या स्वास्थ्य की है, जो शहरों से ज्यादा गाँवों में लचर स्थिति में है। गाँवों में तो है ही नहीं। स्वास्थ्य योजनाओं के अंतर्गत करोड़ों रुपए दिए गए, उनका क्या हुआ। गोरखपुर के अस्पताल में दिमागी बुखार से बच्चों की मृत्यु की घटना हृदयविदारक है। ऐसा वर्षों से हो रहा है। क्या कारण है? क्या उसका कुछ निदान है? हम किसी पर दोषारोपण नहीं करना चाहते हैं। गोरखपुर की त्रासदी की जाँच हो रही है। मुख्यमंत्री ने आवाश्सन दिया है कोई दोषी बख्शा नहीं जाएगा। इतने वर्षों से चली आ रही समस्या पर ध्यान क्यों नहीं दिया गया? अभी भी मौतें हो रही हैं। असम और ओडिशा भी इसकी चपेट में हैं। क्या इनकी रोकथाम का इंतजाम नहीं किया जा सकता है? आपातकाल के स्तर पर क्या कोई प्रबंध हो सकता है? इसी तरह प्राथमिक से लेकर सेकेंडरी शिक्षा पर उचित ध्यान अभी भी नहीं दिया जा रहा है। गुणवत्ता का तो सवाल ही नहीं। विकास की यह नीवँ है।

तीसरी समस्या है कि प्रधानमंत्री की बहुत सी योजनाओं को सफल बनाने में राज्यों की बहुत बड़ी भूमिका है। कॉआपरेटिव फेडरलिज्म, सहयोगी संघीय व्यवस्था एकांगी नहीं हो सकती। राज्यों की भी अपनी जिम्मेदारी है। सर्वोच्च न्यायालय ने अभी पिछले दिनों फूड सिक्योरिटी या भूख से सुरक्षा के संबंध में बहस के दौरान टिप्पणी की थी कि यदि संसद् द्वारा पारित कानूनों का पालन राज्य नहीं करते तो क्या केंद्र असहाय बना रहेगा? यह विचारणीय है। केंद्र के कुछ आदेश या कार्य होते हैं, जो राज्यों को पसंद नहीं, तो तुरंत शिकायत शुरू हो जाती है कि संघीय व्यवस्था खतरे में है, राज्यों की स्वायत्तता का अतिक्रमण हो रहा है। आंतरिक सुरक्षा, महिलाओं और दलितों की सुरक्षा सामान्य कानून व्यवस्था की समस्याओं का समाधान राज्य सरकारों को कराना है। क्या ऐसा हो रहा है? चौथी समस्या है बेरोजगारी की। क्या यह समस्या बिना नए रोजगारों के सृजन के हल हो सकती है? क्या हर युवक स्वयं अपने लिए रोजगार पैदा कर सकता है? इसकी एक सीमा है। अच्छा है कि इस विषय पर प्रधानमंत्री युवा इंटरप्रेनोरो से बातचीत कर रहे हैं कि कैसे रोजगार के नए अवसर निकाले जाएँ। देशी पूँजी का भी निवेश देश में न होकर विदेश में हो रहा है, क्या काम-धंधा करने की सुविधाओं में सुधार हो रहा है? विदेशी निवेश तो इसी पर निर्भर करेगा।

इसी से जुड़ी है समाज में बढ़ती विषमता। एक प्रतिशत लोगों के नियंत्रण में ५८ प्रतिशत धन और सुविधाएँ हैं। अधिक कहना बेकार है। विषमता समाज को जोड़ने की जगह तोड़ती है। पाँचवीं बात यह कि कुछ लोगों का कहना है कि इतनी जल्दी-जल्दी नीतियाँ और कार्यक्रम आ रहे हैं कि एक अनिश्चितता का वातावरण बन रहा है और विकास की गति धीमी हो रही है। यह धुँधलापन दूर होना चाहिए। तभी आर्थिक निवेश और विकास संभव होगा। छठा मुद्‌दा है कि अभी कीमतें बढ़ नहीं रही हैं, किंतु कुछ अर्थशास्त्री और टिप्पणीकार चिंता व्यक्त कर रहे हैं कि छह महीने में स्थिति बदले, इनफ्लेशन बढ़े, अतएव इस ओर सतर्क रहना होगा। सातवाँ सवाल भ्रष्टाचार और कालेधन का है, जिसके लिए प्रधानमंत्री इतने प्रयत्न कर रहे हैं। भ्रष्टाचार में अपने और दूसरे में भेद नहीं किया जा सकता। आज भाजपा परोक्ष और अपरोक्ष रूप से १३ राज्यों में सत्ता में है। अतएव भाजपा शासित राज्यों के बारे में यदि कोई आरोप लगाता है तो शीघ्र काररवाई होनी चाहिए और पारदर्शिता भी होनी चाहिए। हरियाणा सरकार की भूमिका वहाँ के राजनेता के पुत्र का हरियाणा के एक अधिकारी की बेटी की गाड़ी का अपनी गाड़ी द्वारा चंडीगढ़ में पीछा करने के मामले में जनता पर असर अच्छा नहीं पड़ा। अंत में उस युवक और

उसके साथी को जेल जाना ही पड़ा और हेर-फेर की कोशिश बेकार रही। अब सर्वोच्च न्यायालय ने एक कटु टिप्पणी की है, किस प्रकार एक पार्टी को वह लाभ दिलाने की कोशिश की गई, जिसके लिए वह अयोग्य थी।

हम विवरण में नहीं जाना चाहते। उधर छत्तीसगढ़ के एक मंत्री के विरुद्ध आरोप है कि उनके पुत्र और पत्नी ने गलत तरीके से जंगल विभाग की जमीन खरीदी और वहाँ एक टूरिस्ट रिजोर्ट बनाया जा रहा है। अब समाचार आया है कि किस प्रकार जो स्थान पोस्ट ऑफिस के लिए निश्चित किया गया था, वह केंद्रीय राज्य मंत्री विजय गोयल को डी.डी.ए. द्वारा नियम या मापदंड बदलकर आवंटित किया गया। सिद्धांत रूप से उनकी चर्चा की है, क्योंकि इस प्रकार के आरोपों का जब तक स्पष्टीकरण नहीं होता है, प्रधानमंत्री के भष्टाचार के प्रयासों और उसकी नैतिक स्वच्छता के दावे पर प्रश्न उठने लगते हैं। आठवाँ सवाल है कि चाहे केंद्र के मंत्री हों अथवा राज्यों के, चाटुकारों, चमचों, खुशामदियों से कैसे बचें। जहाँ सत्ता होती है, वहाँ ये चाटुकार अपने हाथ सेंकने पहुँच ही जाते हैं। जहाँ शहद का पात्र होगा, वहाँ मक्खियाँ भिनभिनाने ही लगती हैं। कभी-कभी मंत्रिगण आत्ममोह से ग्रसित हो जाते हैं, क्योंकि आसपास चाटुकार हैं, जिनका काम ही है जी-हुजूरी करना और प्रशंसा के पुल बाँधना। सत्ता का नशा अच्छे और बुरे में पहचान कठिन बना देता है। हम सब जानते हैं, किसी राय की आवश्यकता नहीं है, हर आलोचना नकारात्मक है, वे भ्रम पालने लगते हैं। इसलिए कबीर बाबा ने बहुत पहले आगाह किया था, 'निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।' कुछ नम्रता, दूसरों से अनुभव लेना या जानकारी का आदान-प्रदान सदैव लाभदायक होता है। यह वही कर सकता है, जिसे स्वयं अपने पर विश्वास है।

इस प्रकार की अनेकों समस्याएँ हैं, जिनकी चर्चा यहाँ संभव नहीं है। प्रश्न है कि क्या राजनेता और प्रशासनिक व्यवस्था इन समस्याओं का निराकरण करने में ईमानदारी से दिलचस्पी ले रही है, और क्या इन्हें भान है कि उत्तरदायित्व की धारणा की अधिक समय तक अवहेलना नहीं की जा सकती है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अगले चुनाव से नहीं, बल्कि २०२२ में जब हमारी स्वाधीनता की ७५वीं वर्षगाँठ होगी, उसे नए भारत की प्राप्ति का लक्ष्य बनाया है, अपना विजन निर्धारित किया है, वह संकल्प से सिद्धि तक पहुँचने के लिए अत्यंत अर्थवान है। संयोग से ७०वाँ स्वाधीनता दिवस और जन्माष्टमी एक दिन पड़े। यह नियति का संकेत है कि देश को अब श्रीकृष्ण के गीता की शिक्षा 'निष्काम कर्म और कौशल ही योग है' को समझने और तदनुकूल कर्तव्य-पालन की आवश्यकता है।

जगदीश चंद्र माथुर की जन्मशती

साहित्य अमृत के अगस्त मास के अंक में सूचनार्थ लिखा गया था कि २०१७ प्रख्यात नाटककार श्री जगदीश चंद्र माथुर का शती वर्ष है। ऐसा लगता है कि पिछले कुछ दशकों से उनका नाम साहित्य-जगत् में विस्मृत हो गया है। उनका व्यक्तित्व व कृतित्व बहुपक्षीय था। संतोष और प्रसन्नता की बात है कि उनके शती वर्ष में उनके नाट्य साहित्य पर एक विवेचनात्मक ग्रंथ 'जगदीशचंद्र माथुर का नाट्य साहित्य : एक मूल्यांकन' पुस्तक प्रतिष्ठान, अंसारी रोड, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है। यह एक शोधग्रंथ है, जिसका प्रणयन डॉ. (श्रीमती) शैलजा हिरेमठ ने किया है, जो कर्नाटक के कई विद्यालयों में हिंदी की प्राध्यापिका रही हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उत्तर भारत के हिंदीवाले जगदीशचंद्र माथुर पर एक अहिंदी विदुषी ने डॉ. चंदूलाल दुबे (पूर्व विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग) के मार्गदर्शन में यह शोधकार्य किया है। सामग्री खोजने और प्राप्त करने में कितना परिश्रम, पत्राचार और दौड़-धूप डॉ. (श्रीमती) हिरेमठ ने की है, यह ग्रंथ का अध्ययन करते समय पता चलता है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तीन-चार दशक पूर्व माथुर पर लिखे गए अनुसंधान ग्रंथों को देखकर तय किया कि उनकी शोध की दिशा कुछ नई होनी चाहिए। समाजशास्त्र की विद्यार्थी रहने के कारण और उसमें दिलचस्पी की वजह से उन्होंने जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों की सामाजिक पृष्ठभूमि और सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में शोध किया। यह बहुत उचित था, क्योंकि जो सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वातावरण, विशेषतया पहले घर के और बाद में इलाहाबाद के वातावरण, जिसने जगदीशचंद्र माथुर को प्रभावित किया, एक प्रकार से उनके व्यक्तित्व को निर्मित किया, उसको उजागर किया जाना आवश्यक था।

लेखिका ने अपने प्राक्कथन में खेद प्रकट किया है कि थीसिस के दो प्रारंभिक अध्याय, जो सामाजिक चेतना के स्वरूप आदि से संबंधित थे, पुस्तक के आकार को सीमित करने के कारण वे पुस्तक में नहीं जोड़े जा सके। हम समझते हैं कि उनके बिना भी प्रकाशित ग्रंथ में पूर्णता है और उनका अभाव किसी प्रकार नहीं खलता है, उनके पूरे विश्लेषण में सामाजिक चेतना परिलक्षित होती है। पाँच अध्यायों में डॉ. (श्रीमती) हिरेमठ ने न केवल जगदीशचंद्र माथुर के व्यक्तित्व तथा क्या क्रिएटिव प्रभाव रहे, बल्कि किस प्रकार से वे नाटक लिखने और समय-समय पर उनमें भाग लेने के लिए आकर्षित हुए और इतनी ख्याति प्राप्त की, इसका भी वर्णन किया है। विवरण के लिए तो ग्रंथ का अनुशीलन आवश्यक है। विदुषी डॉ. हिरेमठ इस शोधग्रंथ के प्रणयन के लिए साधुवाद की पात्र हैं। जो भी विश्लेषण वे करती हैं, उसकी पुष्टि, समर्थन अधिकाधिक रूप में करती हैं। उनके विश्लेषण में जगदीश चंद्र माथुर के शब्द ही नहीं, उनकी भावना, उनके आदर्श और उनकी आस्थाएँ प्रतिध्वनित होती हैं। देर से ही सही, पर उनका शोधग्रंथ जगदीशचंद्र माथुर की जन्मशताब्दी वर्ष में प्रकाशित हो सका, यह हर्ष का विषय है और स्वागतयोग्य भी।

अपने सेवाकाल के प्रारंभ में हमारा जगदीशचंद्र माथुर से कुछ परिचय हुआ था। प्रथम, जब जयपुर में ऑल इंडिया रेडियो का केंद्र स्थापित होना था और उस समय हमें राजस्थान के मुख्यमंत्री के सचिव होने का शुभावसर प्राप्त हुआ था। दूसरे, कुछ वर्षों के बाद पुनः संयोग बना, जब हम दिल्ली प्रशासन के मुख्य सचिव थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने स्वाधीनता के पच्चीसवें वर्ष के उपलक्ष्य में स्वाधीनता सेनानियों को ताम्रपत्र प्रदान करने का निश्चय किया। पूरे देश से आमंत्रित स्वतंत्रता सेनानियों को ठहराने और भोजन आदि की व्यवस्था का दायित्व दिल्ली प्रशासन पर था। मार्गदर्शन माथुर साहब से मिलता था। उनको पूरे आयोजन के संयोजक का गुरुतर भार सौंपा गया था। जगदीशचंद्र माथुर आई.सी.एस. के अधिकारी थे। जैसा कि होता है, वे बिहार सरकार के अनेक पदों पर रहे—कमिश्नर रहे, शिक्षा-सचिव रहे। उनके लिए कोई दायित्व औपचारिक नहीं था। वे अपने को हर दायित्व में आत्मसात् कर लेते थे। १९४२ के आंदोलन के समय अपनी विचारधारा के कारण वे ब्रिटिश सरकार के घेरे में रहे और उनके पत्राचार पर कड़ी नजर रखी गई थी। शालीनता और विनम्रता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। किसी को भान नहीं होने देते थे कि वे इतने उच्चाधिकारी हैं। साहित्य अवदान के अतिरिक्त उनकी सांस्कृतिक देन भी कम नहीं है। 'वैशाली अभिनंदन ग्रंथ' इसका एक उदाहरण है। जिन-जिन क्षेत्रों में उन्होंने काम किया, वे उसका गहराई से अध्ययन करते थे और अनुभवों के आधार पर लिखते

भी थे। वे एक असाधारण अधिकारी थे, किंतु प्रशासन की आंतरिक दौड़-भाग और आपाधापी से उन्होंने अपने को दूर रखा।

शती वर्ष में हम आशा करते हैं कि साहित्य अकादेमी भी उनके साहित्य पर एक गोष्ठी करेगी। यही नहीं, 'भारतीय साहित्य निर्माता' की जो शृंखला है, उसमें उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक मोनोग्राफ प्रकाशित हो। इसके अतिरिक्त उनके नाटकों और अन्य लेखन का एक संचयन प्रकाशित होना चाहिए, क्योंकि उनकी पुस्तकें अब साधारणतया उपलब्ध नहीं हैं। उन्होंने कुछ व्यक्तियों के चरित लिखे हैं, वे आज भी प्रेरणा के स्रोत हैं। यही नहीं, उनके कुछ एकांकियों तथा नाटकों का मंचन होना चाहिए। हिंदी भाषाभाषी राज्यों में जो अकादमियाँ हैं, उनको इस ओर पहल करनी चाहिए। बिहार सरकार के शिक्षा विभाग को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। दिल्ली राज्य की अकादमी के अतिरिक्त भारतीय संगीत नाट्य कला अकादमी का भी इस ओर दायित्व बनता है। इस प्रकार न केवल हम जगदीशचंद्र माथुर के बहुमुखी अवदान को स्मरण करेंगे, वरन् इससे हिंदी नाट्य मंचन को भी बल प्राप्त होगा।

देवदत्त पटनायक और हनुमान चालीसा

देवदत्त पटनायक की विशेषता है कि 'मिथकों की आज क्या प्रासंगिकता है' विषय पर लिखते हैं। वे करीब तीस पुस्तकों के रचयिता हैं। हिंदू देवी-देवताओं पर उन्होंने कुछ अत्युत्तम छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं। पिछले दिनों रूपा प्रकाशन, दिल्ली द्वारा उनकी पुस्तक 'मेरी गीता' प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने कुछ चुने हुए श्लोकों को लेकर भगवद्गीता का विवेचन प्रस्तुत किया है, जो काफी लोकप्रिय हुआ। पुस्तक हिंदी और अंग्रेजी दोनों में उपलब्ध है। अब उन्होंने 'माई हनुमान चालीसा' नामक पुस्तक में, जो अंग्रेजी में है, हनुमान चालीसा का विश्लेषण एवं अर्थ संदर्भों सहित प्रस्तुत किया है, जो अत्यंत रोचक है। जिन देवी-देवताओं के नाम गीता में आते हैं, उनका हनुमानजी से क्या और किस प्रकार का संबंध है, यह बताने की चेष्टा भी की गई है। हनुमान विषयक और किंवदंतियाँ भी हैं, उनपर भी प्रकाश डाला गया है। हनुमान चालीसा में प्रयुक्त शब्दों का, विशेषतया जो विशेषण हैं, उनका क्या तात्पर्य है और उससे संबंधित कोई अन्य मान्यता है तो उन सबकी अच्छी व्याख्या की गई है। हनुमान चालीसा की भाषा अपने में बहुत साधारण, बोधगम्य है और इसी कारण लाखों लोग देश और विदेश में नित्य इसका पारायण करते हैं। तुलसीदासजी के हनुमान चालीसा के पूरे मर्म और महत्त्व को अच्छे से समझने के लिए यह पुस्तक सहायक है। हनुमान चालीसा अपने में सरल और सुबोध है, किंतु दार्शनिकता से भी ओतप्रोत है। प्रायः हनुमान चालीसा की इस प्रकार की व्याख्या देखने को नहीं मिलती है। लेखक बधाई के पात्र हैं। अपने बनाए हनुमानजी के बहुत से रेखाचरित्र भी लेखक ने पुस्तक में दिए हैं, वे भी अत्यंत अर्थपूर्ण हैं। आशा है, प्रकाशक रूपा, दिल्ली देवदत्त पटनायक की 'माई हनुमान चालीसा' पुस्तक शीघ्र हिंदी भाषा में भी पाठकों को उपलब्ध कराएँगे।

भारतीय अर्थव्यवस्था का भविष्य और चुनौतियाँ

'भारतीय अर्थव्यवस्था का भविष्य : पिछले सुधार और आगे आनेवाली चुनौतियाँ' (The Future of Indian Economy : Past Reforms and Challenges Ahead) नामक एक संकलन, जिसमें भारत की अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण है, पिछले दिनों चर्चा में रहा है। प्रकाशक रूपा, दिल्ली है। इसका संपादन पूर्व वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा और लेखन विनय श्रीवास्तव ने किया है। १९९१ के उदारीकरण की नीति के उपरांत भारत की अर्थव्यवस्था की तसवीर बदल गई है। जो परिवर्तन हुए हैं, उनमें कुछ लाभदायक रहे, पर कुछ नई समस्याएँ भी उत्पन्न हो गईं, जिनका निराकरण आवश्यक है। १९९१ में विदेशी मुद्रा की ऐसी स्थिति थी कि देश के सामने कोई अन्य विकल्प बचा ही नहीं था। प्रारंभ में जो आर्थिक सुधार देश में हुए, उसका एक संक्षिप्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण संपादकों ने प्रस्तुत किया है। १९९१ के आर्थिक सुधार, जिनसे तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव और वित्तमंत्री मनमोहन सिंह के नाम जुड़े हैं, उनकी पृष्ठभूमि पहले ही बन चुकी थी। संजय वारु और जयराम रमेश की पुस्तकें इस विषय में पहले ही आ चुकी हैं। रिजर्व बैंक, वित्त मंत्रालय आदि के जो उस समय अधिकारी थे, उनके लेख भी १९९१ के आर्थिक सुधार के २५वें वर्ष में दिल्ली के एक दैनिक में प्रकाशित हुए थे कि उस आर्थिक संकट के समय किस-किस की क्या भूमिका रही। पूरे घटनाक्रम में नीतियों के साथ-साथ कुछ ढाँचागत सुधारों की भी शुरुआत हुई।

इस पुस्तक के आलेखों को मोटे तौर पर तीन भागों में विभक्त किया गया है। पहला है, 'उदारीकरण के पहले और उसके बाद आर्थिक व्यवस्था पर एक विहंगम दृष्टि'। इसमें छह लेख हैं। दूसरे भाग में सात लेख हैं। वित्तीय नीति, बजटरी तथा कैपिटल मार्केट के संबंध में तीसरे भाग में लेख हैं। पब्लिक सेक्टर की इकाइयों और उनके डिसइन्वेस्टमेंट की समस्यायों के विषय में सभी आलेख अनुभवी विशेषज्ञों और अधिकारियों द्वारा लिखे गए हैं। पुस्तक एक बहुत बड़े फलक को समेटने की कोशिश करती है। हर एक लेखक का अपना-अपना दृष्टिकोण है। अतएव यह जरूरी नहीं है कि हम उनके विश्लेषण या सुझावों से सहमत ही हों, किंतु पुस्तक में शामिल किए गए आलेखों से आज अर्थव्यवस्था की एक अधिकृत तसवीर हमारे सामने आती है। अब क्या समस्याएँ हैं, कैसे उनका समाधान हो और आगे क्या समस्याएँ आ सकती हैं, इनको रेखांकित कर हमें स्वयं सोचने को विवश करती है यह पुस्तक। विद्वानों के आलेख जो परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं, उसकी अनदेखी करना दूरदर्शिता का परिचायक नहीं है। हर एक आलेख की विषयवस्तु को अति संक्षेप में प्रस्तुत करना संभव नहीं है। यह पुस्तक राजनेताओं, नीति-निर्धारकों और नीतियों के अनुपालन के दायित्व वहन करनेवालों के लिए आवश्यक रूप से पठनीय है। गवर्नेंस अथवा प्रशासन में राजनीति और आर्थिक नीति एक-दूसरे से कितनी मिली हुई हैं, इन समस्याओं पर भी विचार व्यक्त किए गए हैं। अर्थशास्त्र के छात्रों के लिए भी यह बहुत उपयोगी पुस्तक है। अधिक-से-अधिक छात्र इसका लाभ उठा सकें, क्योंकि देश के एक बहुत बड़े भूभाग में हिंदी में ही अर्थशास्त्र का प्रशिक्षण हो रहा है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि प्रकाशक इसे शीघ्रातिशीघ्र हिंदी में अनुवादित कराने की व्यवस्था करवाएँ।

चंपारण सत्याग्रह

चंपारण सत्याग्रह का यह शती वर्ष है। नेशलन आर्काइब्ज में आयोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन प्रधानमंत्री ने किया था। बिहार सरकार ने भी कुछ आयोजन मोतिहारी, पटना आदि नगरों में किए, किंतु जितनी चर्चा चंपारण सत्याग्रह और उसके प्रभाव की होनी चाहिए, देश में उतनी हुई नहीं। अफ्रीका से भारत वापस आने के बाद स्वराज्य के संबंध में गांधीजी की यह पहली लड़ाई थी। इसके महत्त्व को इस बात से जाना जा सकता है कि गांधीजी के स्वयं अपने आत्मचरित 'मेरे सत्य के प्रयोग' में चार-पाँच अध्याय चंपारण प्रकरण से संबंधित हैं, जो पढ़ने योग्य हैं।

चंपारण के महत्त्व को समझने के लिए एक और बात ध्यान देने की है, यह प्रयोग देश के एक अत्यंत पिछड़े प्रांत में हुआ, जहाँ की भाषा, गाँवों की व्यवस्था आदि से गांधीजी अपरिचित थे। राजकुमार शुक्ल के उनके पीछे पड़ने के कारण वे निलहों और वहाँ के किसानों की व्यक्तिगत रूप से जानकारी लेना चाहते थे। पर वहाँ न वे केवल महीनों रुके, वरन् कस्तूरबा, देवदास और अनेक सहयोगियों को बाहर से वहाँ बुलाया। सी.एफ. एंड्रूज और हेनरी पोलक उन अनेकों प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे, जो वहाँ गए और उनमें से कई तो काफी अरसे तक रहे। साथ-ही-साथ निलहों के उत्पीड़न और अत्याचारों की सही गाथा लिखने के लिए उन्होंने स्थानीय लोगों की एक टीम तैयार की, जिसमें बड़े-बड़े वकील तथा अन्य तबके के लोग थे, जैसे ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेंद्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, मो. मजहरुल हक, आचार्य कृपलानी आदि। इन लोगों ने पीड़ित किसानों के बयान लिखे और तसदीक की। मजहरुल हक के अलावा जिनसे उनकी मुलाकात लंदन में बैरस्टरी पढ़ने के समय हुई थी, प्राय: उन सबसे पहली बार मिलने का मौका था।

राजकुमार शुक्ल लखनऊ, कानपुर, कलकत्ता आदि कार्यक्रमों में किस प्रकार गांधीजी के पीछे पड़े रहे और अंत में उनको चंपारण ले ही आए। राजकुमार शुक्ल का पहला पत्र, जो उन्होंने गांधीजी को लिखा था, वह अत्यंत मर्मस्पर्शी है। चंपारण सत्याग्रह के संपूर्ण विवरण में जाना संभव नहीं है। चंपारण में गांधीजी ने बड़ा प्रयोग यह किया कि अफ्रीका में जो हथियार उन्होंने खोजा था, उसका उपयोग एक शांतिपूर्वक माहौल बनाए रखकर भारत में किस प्रकार किया जाए। बारदोली आंदोलन आदि बाद में आए। इसके साथ-साथ गांधीजी को स्वराज्य की समस्या को समग्र रूप में देखने की दृष्टि चंपारण से मिली, हर वर्ग का विकास, आत्मनिर्भरता, स्वच्छता, अस्पृश्यता, महिलाओं का सशक्तीकरण, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, साधारण जीवनयापन, भाईचारे से रहने की आवश्यकता, निडरता, सत्य का पालन आदि-आदि जो कुछ विषय उनके कार्यक्रम के अभिन्न अंग बने, उन सबकी शुरुआत चंपारण में हुई। ये कुछ कारण हैं, जिनकी वजह से चंपारण सत्याग्रह का भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अपना विशेष स्थान है। चंपारण के संबंध में अंग्रेजी में कई अच्छी-अच्छी पुस्तकें हैं, पर हिंदी में नहीं। राजेंद्र बाबू की दो पुस्तकें अनुवादित होकर प्रकाशित हुईं, पर उनमें पूरी कहानी नहीं है। इस अभाव की पूर्ति अरविंद मोहन, जो एक वरिष्ठ पत्रकार हैं, ने अपने लेखन द्वारा की है। उनके अपने शब्दों में, ''मेरा जन्म एक शुद्ध गांधीवादी परिवार में हुआ और वह भी चंपारण के एक परिवार में।'' बहुत खोज और अत्यंत व्यापक पठन-पाठन के उपरांत उन्होंने चंपारण के संबंध में चार पुस्तकों का प्रणयन किया है। वे वास्तव में साधुवाद के पात्र हैं।

दो पुस्तकें 'चंपारण सत्याग्रह की कहानी' और 'चंपारण सत्याग्रह के सहयोगी' सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली से सुंदर कलेवर के साथ प्रकाशित हैं। 'चंपारण की कहानी' में गांधीजी के भारत में पहले सत्याग्रह के प्रयोग का विवेचनात्मक ढंग से संपूर्ण विवरण मिलता है। दूसरी पुस्तक 'चंपारण सत्याग्रह के सहयोगी' बड़े परिश्रम से लिखी गई है। राजकुमार शुक्ल के संबंध में अरविंद मोहन ने विस्तृत जानकारी दी है, जो कहीं नहीं मिलती। कैसे चाणक्य की तरह राजकुमार ने अपना मिशन चुना और इतिहास के पन्नों से लुप्त हुआ। प्रसिद्ध लोगों को छोड़ दें तो गोरखप्रसाद, मोहम्मद यूनुस आदि के बारे में भी जानकारी नहीं है। यदि और अधिक साधन तथा सहयोग अरविंद मोहन को उपलब्ध होते तो वे पुस्तक को और अधिक पूर्णता प्रदान कर सकते थे। दोनों पुस्तकें अत्यंत उपयोगी हैं और इनको स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय और सार्वजनिक पुस्तकालयों में पहुँचाना आवश्यक है। सरकारों का सहयोग अपेक्षित है, ताकि जनसाधारण और आज की पीढ़ियाँ चंपारण सत्याग्रह का अनुमान लगा सकें। उनकी तीसरी पुस्तक है, 'प्रयोग चंपारण', जो ज्ञानपीठ ने प्रकाशित की है। यह पुस्तक पहली दो पुस्तकों की पूरक है और 'प्रयोग चंपारण' को बेहतर तरीके से तभी समझा जा सकता है, जब हम चंपारण की कथा से पूरी तरह अवगत हों। उसमें उन्होंने ऐतिहासिक और दार्शनिक दृष्टियों से चंपारण सत्याग्रह का आकलन करने का प्रयास किया है, प्रश्न भी उठाए हैं। अरविंद मोहन का बौद्धिक और भावनात्मक आत्ममंथन भी इसमें परिलक्षित होता है। उन्होंने एक और पुस्तक तैयार की है, 'मि. एम.के. गांधी की चंपारण डायरी', प्रकाशक प्रभात प्रकाशन, दिल्ली हैं, जो अरविंद मोहन की चंपारण शृंखला की चौथी कड़ी है। ये पुस्तकें गांधीजी के आंदोलन के संदर्भ में लाभदायक हैं।

एक बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि निलहों के अत्याचार बंगाल में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के साथ ही प्रारंभ हो गए थे। उस समय बिहार बंगाल का ही भाग था। १९१४ में बिहार और ओड़िसा प्रांत बंगाल से अलग हुए। उन्नीसवीं सदी में बंगाल में जब इसका कड़ा विरोध शुरू हुआ तो अंग्रेजों ने सोचा कि बिहारवाले हिस्से को अपना चरागाह बनाया जाए। अंग्रेज अत्यंत प्रभावशाली थे। १९वीं सदी में बंगाल में कैसे विरोध शुरू हुआ, वह अपने आप में अत्यंत रोचक है। दीनबंधु मित्र के लिखे नाटक 'नीलदर्पण' ने इस समस्या को काफी हद तक उजागर किया है। उसके अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पादरी रेवेरेंड लांग ने लिखी थी, जिन्होंने काफी प्रयास करके बंगाल के निलहों के एक संगठन को चीफकोर्ट द्वारा दंडित कराया। 'नीलदर्पण' का अंग्रेजी अनुवाद माइकेल मधुसूदन दत्त ने किया था, पर उसकी जानकारी निलहों के पास नहीं थी। बंगाल के ले. गवर्नर जे.पी. ग्रांट के खिलाफ भी बवेला मचाया, क्योंकि उनके कमीशन की रिपोर्ट ने उनके काले कारनामों का पर्दाफाश किया। चंपारण सत्याग्रह के महत्त्व को, बंगाल में क्या हुआ था, उस पृष्ठभूमि का अवलोकन कर और अच्छी तरह समझा जा सकता है।

डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद पर उन व्यक्तियों के संस्मरण, जो प्रेमचंद के संपर्क में आए थे, अथवा उनके समकालीन थे, कुछ समय पूर्व बड़े परिश्रम से एकत्र किए थे। प्रेमचंद के शोधकर्ताओं के लिए यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। डॉ. गोयनका का यह संकलन काफी समय से अनुपलब्ध था। संतोष का विषय है, यह पुन: प्रकाशित हुआ है। उसकी उपादेयता निस्संदेह है। अच्छा होता कि डॉ. गोयनका रेखांकित कर देते कि उन्होंने कौन सा संस्मरण कहाँ से प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त जिन लोगों के संस्मरण संकलित किए हैं, उनमें अधिकतर ऐसे हैं, जिन्हें प्राय: सभी जानते हैं, पर कुछ ऐसे भी हैं, जिनके बारे में सर्वसाधारण को जानकारी नहीं भी हो सकती है, जैसे जनार्दन नागर, जो उदयपुर (राजस्थान) के अच्छे लेखक और साहित्यकार थे। उन्होंने विश्वविद्यालय में विद्यापीठ स्थापित की, वे राजस्थान की विधानसभा के सदस्य भी रहे थे। यदि एक या दो वाक्यों में संस्मरण लेखनकर्ताओं का परिचय दे दिया जाता तो साधारण पाठक के लिए सुविधाजनक हो जाता।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

कदंब के फूल

• सुभद्रा कुमारी चौहान

''भौजी! लो मैं लाया।''

''सच, ले आए? कहाँ मिले?''

''अरे! बड़ी मुश्किल से ला पाया, भौजी!''

''तो मजदूरी ले लेना।''

''क्या दोगी?''

''तुम जो माँगो।''

''पर मेरी माँगी हुई चीज मुझे दे भी सकोगी?''

''क्यों न दे सकूँगी? तुम मेरी वस्तु मेरे लिए ला सकते हो तो क्या मैं तुम्हारी इच्छित वस्तु तुम्हें नहीं दे सकती?''

''नहीं भौजी, न दे सकोगी, फिर क्यों नाहक कहती हो?''

''अब तुम्हीं न लेना चाहो तो बात दूसरी है, पर मैंने तो कह दिया कि तुम जो माँगोगे वही दूँगी।''

''अच्छा, अभी जाने दो, समय आने पर माँग लूँगा।'' कहते हुए मोहन ने अपने घर की राह ली। दूर से आती हुई भामा की सास ने मोहन को दोने में कुछ लिये हुए घर के भीतर जाते हुए देखा था। किंतु वह ज्यों ही नजदीक पहुँची, मोहन दूसरे रास्ते से अपने घर की तरफ जा चुका था। मोहन से कुछ पूछ न सकीं; पर उन्होंने यह अपनी आँखों से देखा था कि मोहन दोने में कुछ लाया है, किंतु क्या लाया है, यह न जान सकीं।

घर आते ही उन्होंने बहू से पूछा, ''मोहन दोने में क्या लाया था?''

भामा मन-ही-मन मुसकराकर बोली, ''मिठाई!''

बुढ़िया क्रोध से तिलमिलाकर बोली, ''इतना खाती है, दिन भर बकरी की तरह मुँह चला ही करता है, फिर भी पेट नहीं भरता? बाजार से भी मिठाई मँगा-मँगा के खाती है! अभी मैं न देखती तो क्या तू कभी बतलाती?''

भामा (मुसकराते हुए)—''तो बतलाती क्यों? कुछ बतलाने के लिए थोड़े ही मँगवाई थी?''

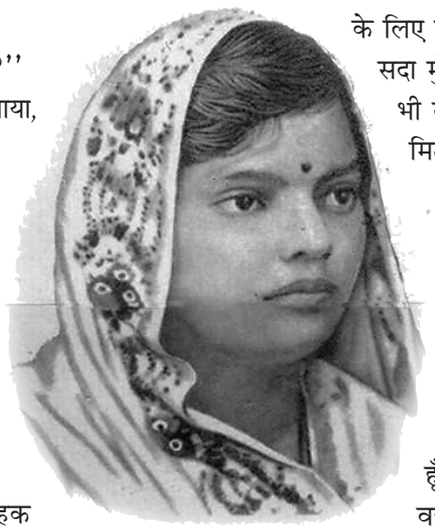

''क्यों, क्या मैं घर में कोई चीज ही नहीं हूँ? अपने लिए तो मिठाई के लिए पैसे हैं, मैं चार पैसे दान-दक्षिणा के लिए माँगूँ तो सदा मुँह से न ही निकालती है। तेरा आदमी है तो मेरा भी तो बेटा है। क्या उसकी कमाई नसीब हो और तू मिठाई मँगा-मँगा के खाए। कर ले, जितना तेरा जी चाहे। भगवान् तो ऊपर से देख रहा है। वह तो सजा देगा ही।''

(मुसकराते हुए) ''क्यों कोस रही हो, माँजी! मिठाई एक दिन खा ही ली तो क्या हो गया, अभी रखी है, तुम भी ले लेना।''

''चल रहने दे। अब इन मीठे पुचकारों से किसी और को बहकाना। मैं तेरे सब हाल जानती हूँ। तू समझती होगी कि तू जो-जो कुछ करती है, वह कोई नहीं जानता। मैं तो तेरी नस-नस पहचानती हूँ। दुनिया में बहुत सी औरतें देखी हैं, पर सब तेरे तले-तले।''

(मुसकराते हुए) ''सब मेरे तले-तले न रहेंगी तो करेंगी क्या? मेरी बराबरी कर लेना मामूली बात नहीं है। मैं ऐसी-वैसी थोड़े ही हूँ।''

''चल, चल, बहुत बड़प्पन न बघार, नहीं तो सब बड़प्पन निकाल दूँगी।''

भामा अब कुछ चिढ़ गई थी, बोली, ''बड़प्पन कैसे निकालेंगी माँ जी, क्या मारोगी?''

माँजी को और भी क्रोध आ गया और वह बोली, ''मारूँगी भी तो मुझे कौन रोक लेगा? मैं गंगा को मार सकती हूँ तो क्या तुझे मारने में कोई मेरा हाथ पकड़ लेगा?''

''मारो, देखूँ कैसे मारती हो? मुझे वह बहू न समझ लेना, जो सास की मार चुपचाप सह लेती हैं।''

''तो क्या तू मुझे मारेगी? बाप रे बाप! इसने तो घड़ी भर में मेरा पानी उतार दिया। मुझे मारने को कहती है। आने दे गंगा को, मैं कहती हूँ कि भाई, तेरी स्त्री की मार सहकर अब मैं घर में न रह सकूँगी। मुझे अलग झोंपड़ी डाल दे, मैं वहीं पड़ी रहूँगी। जिस घर में बहू सास को मारने के लिए खड़ी हो जाए, वहाँ रहने का धरम नहीं।'' यह कहते-

कहते माँजी जोर-जोर से रोने लगीं। भामा ने देखा कि बात बहुत बढ़ गई, अत: वह बोली, ''मैंने तुम्हें मारने को तो नहीं कहा माँजी! क्यों झूठमूठ कहती हो। हाँ, मैं मार तो चुपचाप किसी की न सहूँगी। अपने माँ-बाप की नहीं सही तो किसी और की क्या सहूँगी?''

''चुपचाप न सहेगी तो मुझे भी मारेगी न? वही बात तो हुई। यह मखमल में लपेट-लपेटकर कहती है, तो क्या मेरी समझ में नहीं आता।''

माँजी के जोर-जोर से रोने के कारण आस-पास की कई स्त्रियाँ इकट्ठी हो गईं। कई भामा की तरफ सहानुभूति रखनेवाली थीं; कई माँजी की तरफ; पर इस समय माँजी को फूट-फूटकर रोते देखकर सबने भामा को ही भला-बुरा कहा। सब माँजी को घेरकर बैठ गईं। भामा अपराधिनी की तरह घर के भीतर चली गई। भामा ने सुना, माँजी आस-पास बैठी हुई स्त्रियों से कह रही थीं, ''आप तो दोना भर-भर मिठाई मँगा-मँगाकर खाती है। और मैंने कभी अपने लिए पैसे-धेले की चीज के लिए भी कहा तो फौरन ही टका सा जवाब दे देती है। कहती है, पैसा ही नहीं है। इसके नाम से पैसा आ जाता है। और मेरे नाम से कंगाली छा जाती है। किसी भी चीज के लिए तरस-तरस के माँग-माँग के जीभ घिस जाती है, तब जी में आया तो ला दिया, नहीं तो कुत्ते की तरह भँका करो। यह मेरा इस घर में हाल है। आज भी दोना भर मिठाई मँगवाई है। मैंने जरा ही पूछा तो मारने के लिए खड़ी हो गई। कहती है, मेरे आदमी की कमाई है। खाती हूँ, किसी के बाप का खाती हूँ क्या? उसका आदमी है तो मेरा भी तो बेटा है, उसका १२ आने होता है तो मेरा ४ आने तो होगा ही।''

पड़ोस की दूसरी बुढ़िया बोली, ''राम, राम! यही पढ़ी-लिखी होशियार हैं। पढ़ी-लिखी है तो क्या हुआ, अक्ल तो कौड़ी के बराबर भी नहीं है। तुमने नौ महीने पेट में रखा बहन! तुम्हारा तो सोलह आने हक है। बहू को बेटा माँ के लिए लौंडी बनाकर लाता है, यह तुम्हारे पैर दबाने और तुम्हारी सेवा करने के लिए है। हमारा नंदन तो जब-तब बहू मेरे पैर नहीं दबा लेती, उसे अपनी कोठरी के अंदर ही नहीं आने देता।''

''अपना ही माल खोटा हो तो परखनेवाले का क्या दोष, बहन! बेटा ही सपूत होता तो बहू आज मुझे मारने दौड़ती?''

□

गंगा प्रसाद गाँव की प्राइमरी पाठशाला के दूसरे मास्टर की जगह के लिए उम्मीदवार थे। साढ़े सत्रह रुपए माहवार की जगह के लिए बिचारे दिन भर दौड़-धूप करते। इससे मिल, उससे मिल, न जाने किसकी-किसकी खुशामद करनी पड़ती थी, फिर भी नौकरी पाने की उन्हें बहुत कम उम्मीद थी। भामा के पास कुछ जेवर थे, जो हर माह गिरवी रखे जाते थे और किसी प्रकार काट-कसर करके घर का खर्च चला था। भामा पैसों को दाँत तले दबाकर खर्च करती। सास और पति को खिलाकर स्वयं आधे पेट खाकर पानी से ही पेट भरकर उठ जाती। कभी दाल का पानी ही पी लिया करती। कभी शाक उबालकर ही पेट भर लिया करती, रुपए-पैसों की तंगी के कारण घर में प्राय: रोज ही इस प्रकार कलह मची रहती।

जब गंगा प्रसादजी दिन भर की दौड़-धूप के बाद थके-हारे घर लौटे, तब शाम हो रही थी, आँगन में उनकी माँ उदास बैठी थीं, बेटे को देखा तो नीची आँखें कर लीं, कुछ बोली नहीं। गंगा प्रसाद अपनी माँ का बड़ा आदर करते थे। उनका बड़ा खयाल रखते थे। जिस बात से उन्हें जरा भी कष्ट होता, वह बात वे कभी न करते थे। माँ को उदास देखकर वे माँ के पास जाकर बैठ गए, प्यार से माँ के गले में बाँहें डाल दीं, पूछा, ''क्यों माँ! आज उदास क्यों है, क्या कुछ तबीयत खराब है?''

''नहीं, अच्छी है।''

''कुछ तो हुआ है माँ। आज तू उदास है।''

अब माँजी से न रहा गया, फूट-फूट के रोने लगीं, बोलीं, ''कुछ नहीं, मैं आदमी-औरत में लड़ाई नहीं लगवाना चाहती, बस इतना ही कहती हूँ कि अब मैं इस घर में न रह सकूँगी। मेरे लिए अलग एक झोंपड़ा बनवा दे, वहीं पड़ी रहूँगी। जी में आवे तो खरच भी देना, नहीं तो माँग के खा लूँगी।''

''क्यों माँ? क्या कुछ झगड़ा हुआ है? सच-सच कहना।''

''आज ही क्या? यह तो तीसों दिन की बात है। तेरी घरवाली ने मोहन से मिठाई मँगवाई। वह दोना भर मिठाई मेरे सामने लाया। मैं जरा पूछने गई, तो कहती है, 'हाँ, मँगवाती हूँ, खाती हूँ, अपने आदमी की कमाई खाती हूँ, तुम्हारे बाप का तो कुछ नहीं खाती।' जब मैंने कहा कि तेरा आदमी है तो मेरा भी तो बेटा है, उसकी कमाई में मेरा भी हक है, तो कहती है कि तुम्हारा हक जब था, तब था, अब तो सब मेरा है, ज्यादा बोलोगी तो मार के घर से निकाल दूँगी। तो बाबा, तेरी औरत है, तू ही उसकी मार सह, मैं माँग के पेट भले ही भर लूँ, पर बहू के हाथ की मार न खाऊँगी।''

गंगा प्रसाद अब न सह सके, बोले, ''वह तुझे मारेगी माँ। मैं ही न उसके हाथ-पैर तोड़कर डाल दूँगा।'' कहते हुए वे हाथ की लकड़ी उठाकर बड़े गुस्से से भीतर गए। भामा को डाँटकर पूछा, ''क्या मँगवाया था तुमने मोहन से?''

गंगा प्रसाद के इस प्रश्न के उत्तर में ''कदंब के फूल थे, भैया!'' कहते हुए मोहन ने घर में प्रवेश किया। तब तक भामा ने दोना उठाकर गंगा प्रसाद के सामने रख दिया था। दोने में आठ-दस पीले-पीले, गोल-गोल बेसन के लड्डुओं की तरह कदंब के फूलों को देखकर गंगा प्रसाद को हँसी आ गई।

मोहन ने दोने में से एक फूल उठाकर कहा, ''कितना सुंदर है यह फूल, भौजी!''

प्रभु के सहचर-रसाद्वैत संत श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार

● रेणु राजवंशी गुप्ता

'भाईजी' श्री हनुमान प्रसाद पोद्दारजी को हम प्राय: गीता प्रेस से जुड़ा हुआ या 'कल्याण' के यशस्वी संपादक के रूप में जानते हैं। 'गीता प्रेस' की स्थापना तो पूजनीय सेठजी श्री जयदयाल गोयनकाजी ने की थी, परंतु उसका पोषण एवं संवर्द्धन भाईजी ने लगभग ४५ वर्षों तक किया था। उनके ही मार्गदर्शन में श्रीमद्भगवद्गीता, रामचरित मानस एवं श्रीमद्भागवत महापुराण के साथ-साथ हिंदू वाङ्मय के अनेक ग्रंथों का प्रामाणिक प्रकाशन गीता प्रेस के द्वारा हुआ। यह इन दो संतों के दिव्य संसर्ग, आध्यात्मिक आलोक, प्रभु की अद्भुत योजना एवं मारवाड़ी वणिक की सूझबूझ का परिणाम है कि गीता प्रेस प्रतिवर्ष दो करोड़ पुस्तकें बेचती है। बिना चंदे के, बिना विज्ञापन के, यह प्रेस इतनी सस्ती पुस्तकें कैसे बेच सकती है? यह सभी के लिए आश्चर्य का विषय है। गीता प्रेस वास्तव में विश्व की सबसे बड़ी प्रेस कहलाने की अधिकारी है।

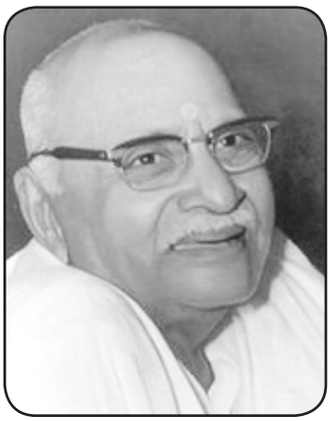

(जन्म : १८९२—महाप्रयाण : १९७१)

परंतु भाईजी संपादक एवं लेखक के अतिरिक्त एक उच्चतम कोटि के भक्त, ज्ञानरूढ़ साधक एवं वीतरागी कर्मयोगी भी थे, यह सत्य कम लोग ही जानते हैं। भाईजी की दिव्य जीवन-यात्रा बाल्यकाल से ही आरंभ हो गई थी। बालक मन्नू अपनी दादी के साथ मंदिर जाता तो पेड़ के नीचे बैठकर सहज ध्यानमग्न हो जाता था। मुफ्त बेरों के लालच में मन्नू ने पूरी गीता कंठस्थ कर ली थी। दादी रामकौरजी ने अपने प्रिय पोते को अटूट नाम जाप का अभ्यास करवा दिया था।

अन्य मारवाड़ी व्यापारियों की तरह युवक हनुमान ने धंधे के लिए कलकत्ते की ओर प्रस्थान किया। परंतु युवक हनुमान का मन एवं ध्यान आध्यात्मिक सत्संग एवं क्रांतिकारी गतिविधियों में अधिक लगता था, धंधे में न्यूनतम। इसीलिए भाईजी कभी सफल व्यापारी नहीं बन सके। भाईजी जब रोड़ा कांड के तहत अलीपुर जेल में बंदी थे तो रात्रि में अवसाद मिटाने के लिए उन्होंने नाम जाप का सहारा लिया। अपने शिमलापाल की एकांत नजरबंदी की सजा के दो वर्षों में भाईजी ने 'श्री नारायण' के चित्र पर दिन-रात ध्यान का अभ्यास इतना प्रगाढ़ एवं स्थायी बना लिया था कि बंद नेत्रों से, खुले नेत्रों से, चर या अचर जीवों में भाईजी को 'नारायण' की छवि के दर्शन होते थे। भाईजी शिमलापाल को अपनी साधना स्थली कहते थे। ऐसा दिव्य एकांत उन्हें पुन: नसीब नहीं हुआ।

भाईजी प्राय: कहा करते थे, ''यह अति सामान्य एवं साधारण जीवन ईश्वर की कृपा का प्रसाद है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मुझे प्रतिपल यही लगता है कि मेरे जीवन को प्रभु ही चला रहे हैं।''

बंगाल से निर्वासन के बाद भाईजी अपनी दादी, माता, दो बहनों एवं पत्नी का उत्तरदायित्व निभाते हुए कोई सुरक्षित व्यवसाय की खोज कर रहे थे। इसी सिलसिले में मारवाड़ी समाज के सिरमौर एवं गांधीजी के परम अनुयायी श्री जमनालाल बजाज ने भाईजी को धंधे के लिए बंबई बुलवा लिया। यहाँ भी भाईजी की अनेक सफल-असफल एवं आधे-अधूरे धंधों में भागीदारी रही। जहाँ भाईजी के समवयस्क मित्र राम कृष्ण डालमिया एवं घनश्याम दास बिड़ला व्यवसाय की ऊँचाइयों को छू रहे थे, वहीं हनुमान प्रसाद पोद्दार का परिवार दो समय की रोटी ही जुटा पा रहा था।

लंबे समय तक कांग्रेस में सक्रिय रहने के पश्चात् भी भाईजी कांग्रेसी नेताओं के विचारों से मन नहीं मिला पाए। बंबई प्रवास में भाईजी को अनेक दिव्य अनुभव हुए, जिन्हें हम प्रभु की अनुभूति या आंशिक साक्षात्कार कह सकते हैं। भाईजी ने अपने गुरुवत् मौसेरे भाई श्री जयदयाल गोयनकाजी द्वारा प्रेरित होकर प्रभु के निर्गुण-निराकार स्वरूप की दृढ साधना की। इस साधना में अपनेपन का भेद सर्वथा मिट जाता है, जो व्यष्टि में होता है, वही समष्टि में सिमट जाता है एवं मन उसी चेतनावस्था में स्थिर हो जाता है। भाईजी इस साधना में काफी आगे बढ़ गए थे, तभी एक चमत्कारिक अनुभव हुआ, उन्हीं के शब्दों में, ''एक दिन निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते-करते सहसा नारायण का सगुण स्वरूप प्रकट होने लगा। मैं बरबस प्रभु की सगुण छवि को हटाकर निर्गुण स्वरूप पर ध्यान जमाने का बरबस प्रयास करता, परंतु नारायण की छवि सामने से हटी ही नहीं। तभी एक तीव्र अनुभूति हुई कि दोनों तत्त्व एक ही हैं। सत्य एक ही है। निर्गुण रूप भी मेरा है एवं सगुण स्वरूप भी मेरा है।''

भाईजी की यह अनुभूति निर्गुण एवं सगुण पर वाद-विवाद करनेवालों का मुहँ बंद करनेवालों के लिए पर्याप्त है।

६ दिसंबर, १९२७ को बिहार के जसडीह नगर में कभी न सुनी, न देखी एवं न कही प्रभु की असीम कृपा बरसी थी। भाईजी ने जाग्रत्

अवस्था में खुले नेत्रों से मित्र समाज के बीच साक्षात् नारायण की छवि के दर्शन किए थे, उसी साक्षात्कार में अनेक ऋषि-मुनियों ने सदेह दर्शन दिए थे, जिनमें नारद मुनि एवं अंगिरा ऋषि प्रमुख थे। कलियुग में साक्षात् अवतरण का यह दृष्टांत अद्‌भुत था।

भाईजी अपने सत्य स्वरूप को यथासंभव सबके सामने छिपाकर रखते थे। परंतु भाईजी के अन्यतम सहयोगी श्री गंभीर चंद दुजारीजी उनके एक-एक शब्द एवं एक-एक लेख को बहुमूल्य खजाने की तरह सहेजकर रखते जाते थे, यह दुजारीजी के परिश्रम का ही फल था कि भाईजी द्वारा रचित सत्रह हजार पृष्ठों का अमूल्य साहित्य हमारे सामने है। दूसरी ओर भाईजी की चिन्मय देहगति एवं उनके भीतर अबाध चल रही नित्य लीला का प्राकट्य पूज्य राधा बाबा ने किया था। राधा बाबा ने रतनगढ़ प्रवास के दौरान एक रात्रि में दुजारीजी एवं चिम्मन लालजी गोस्वामी के सामने यह रहस्योद्‌घाटन किया था। बाबा के शब्दों में— ''आप विश्वास करें कि पोद्‌दार प्रभु का यह पाँच भौतिक ढाँचा पूरी तरह राधा रानी के अधिकार में है। ऊपर से वे संसार के कार्य कर रहे हैं, परंतु उनके भीतर नित्य लगातार प्रभु की लीला चल रही होती है। उनका सूक्ष्म शरीर युगल सरकार (श्री कृष्ण एवं श्री राधा रानी) को पूर्णतया समर्पित है। अत: प्रभु जब चाहें, तुम्हारे भाईजी की बाह्यवृत्तियों को लुप्त करके उन्हें अपने साथ लीला में प्रवेश कर लेते हैं। हाथ में कलम थामे या हाथ धोते हुए भाईजी स्पंदनहीन हो जाते हैं, उनकी देह निश्चल हो जाती है एवं आँखें पथरा जाती हैं। यह आपने बहुधा देखा है, भाईजी इस अवस्था को 'माथा खराब' होना कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि भाईजी का बाह्य जगत् से संबंध टूट गया है एवं अपने प्रभु से संयोग हो गया है।''

श्री चैतन्य प्रभु के समकक्ष ही भाईजी की आतंरिक अवस्था है, ऐसे उदहारण संसार में बिरले हैं।

बंबई से धंधा समेटने के पश्चात् भाईजी का मन तो संन्यास लेकर गंगाजी के तट पर अनवरत प्रभु-भजन एवं भक्ति करने का था। परंतु प्रभु का मन तो भाईजी को समाज-संसार के बीच रखकर उनके माध्यम से लोक कल्याण के अनेकों कार्य सिद्ध करवाने का था। इस प्रकार भाईजी की ट्रेन बंबई से चलकर सीधे गोरखपुर पहुँची। फलस्वरूप भाईजी ने ४५ वर्षों तक 'कल्याण' का संपादन किया। गीता प्रेस एवं कल्याण के माध्यम से भाईजी ने हिंदू समाज को बीसवीं सदी की अप्रतिम भेंट दी है।

नाम-जाप का वृहत्तर कार्यक्रम भाईजी द्वारा आरंभ हुआ, जहाँ भक्तों ने करोड़ों की संख्या में नाम-जाप का संकल्प लिया एवं मारवाड़ियों की बही में रोकड़े के हिसाब की जगह नाम-जाप का हिसाब लिखा जाने लगा। कर्म क्षेत्र में भाईजी ने नोआखली जैसी अनेक सामाजिक आपदाओं में भाईजी ने सेवा कार्य किए, गौ-रक्षा आंदोलन, कृष्णजन्मभूमि की मुक्ति एवं भगवद् भवन के निर्माण में भाईजी सबसे आगे थे। भाईजी ने विश्व हिंदू परिषद् की स्थापना में भी महत्त्वपूर्ण

सुपरिचित लेखिका। लेखन की लंबी श्रृंखला में कविता, कहानी, संस्मरण, आलेख एवं उपन्यास का सृजन। 'प्रवासी-स्वर', 'प्रवासी-मन' (कविता-संग्रह), 'कौन कितना निकट', 'जीवन-लीला' (कहानी संग्रह) एवं 'असतो मा सदगमय', 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' (उपन्यास) प्रकाशित।

भूमिका निभाई। हरे राम-हरे कृष्णा के संस्थापक श्री प्रभुपादजी भी अमेरिका जाने से पहले भाईजी का सहयोग लेकर गए थे।

इसके बावजूद भाईजी ने कभी शिष्य नहीं बनाए या कोई आश्रम स्थापित नहीं किया। भाईजी ने अंग्रेजों के राज में 'रायबहदुर' की उपाधि एवं भारत सरकार द्वारा 'भारत रत्न' की उपाधि को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। भाईजी ने कभी धन अर्जित नहीं किया। परंतु उनके द्वारा लाखों की धनराशि लोक सेवा के लिए व्यय हुई।

१७ सितंबर, १८९२ में जनमे शेखावाटी के रतनगढ़ नगर के निवासी श्री हनुमान प्रसाद पोद्‌दारजी की इस वर्ष १२५वीं जयंती वर्ष है। इस पुण्य अवसर पर हम भाईजी के जीवन से दो प्रमुख सीख एवं आदर्श ग्रहण कर सकते हैं।

प्रथम, भाईजी की आध्यात्मिक यात्रा एवं चरमोत्कर्ष अवस्था कोई दैविक चमत्कार नहीं है, वरन् पुरुषार्थ का परिणाम है। जिसे कोई भी साधक अपनी मेहनत से प्राप्त कर सकता है।

द्वितीय, भाईजी जीवन भर परिवार एवं समाज के बीच घिरे रहे, समाज की विसंगतियों से जूझते रहे। परंतु भाईजी कमल की भाँति संसार के पंक से अछूते रहे। जीवन के उत्तरदायत्वों को निभाते हुए अपने प्रभु से एकनिष्ठ जुड़े रहे।

प्रभु से यही प्रार्थना है कि इस अखंड दिव्य ज्योति की एक किरण हमें भी मिल सके।

6070 Eaglet Dr.
west chester, OH45069
USA

भाईजी पर केंद्रित पुस्तकें

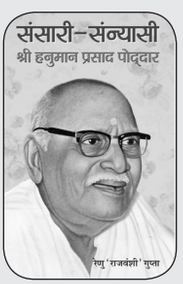

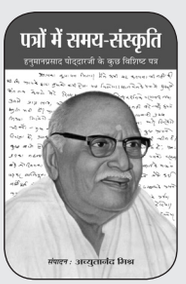

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

बुढ़ापे की डगर

● मनमोहन गुप्ता

''सुशीला! तुम्हें पता है, हमारा श्रीधर अब सेवानिवृत्त होकर घर आ रहा है। कितनी खुशियाँ छा जाएँगी अब घर में?''

''अजी, श्रीधर के पापा, मुझे पता है। वह दोनों बच्चों को बहू के साथ लेकर आज चंडीगढ़ एक्सप्रेस से सुबह दस बजे तक घर जरूर पहुँच जाएगा।''

''सुशीला! वर्षों बाद इन बूढ़ी आँखों को पोतों के साथ खेलने-कूदने का मौका मिलेगा। मैं उनके साथ बैंत से क्रिकेट खेलूँगा। लॉन में चहल-पहल होगी। होगी न सुशीला?''

झुर्रियों भरे चेहरे पर बूढ़ी आँखों से अविरल हर्षित अश्रुधारा बह निकली थी। रमाकांत आज बहुत खुश नजर आ रहे थे। बैंत के सहारे धोती-कुरते में चलते हुए बार-बार अपने चश्मे को उतारकर आँसुओं से भीगे उनके ग्लासों को साफ कर रहे थे।

उधर सुशीला भी आज फूली नहीं समा रही थी। बहू-बेटे अबकी बार स्थायी रूप से घर आ रहे हैं। अब उसे बहू के हाथ की बनी गरमागरम रोटियाँ मिलेंगी। बाजरे और मकई की हाथ की रोटी बहू प्रीति बहुत अच्छी बनाती है। मुकुल और नकुल बेटे तो उसकी आँखों के तारे हैं। दोनों पोतों को वह 'बेटा' कहकर ही संबोधित करती थी। आज उसने बहू-बेटों की पसंद की सरसों की सब्जी बनाई थी। बथुआ मिलाकर बाजरे के आलन की बनी सरसों की हरी सब्जी बहू-बेटों के साथ रमाकांतजी को भी बहुत अच्छी लगती है।

दोनों बुजुर्गों में अपूर्व उत्साह और उमंग की लहरें तैर रही थीं। प्रतीक्षा में उनकी आँखें टकटकी लगाए फाटक पर टिकी हुई थीं। कब ताँगा आए। घोड़े के गले और पैरों में बँधे घुँघरू की रुनझुन उन्हें सुनाई पड़े। वे दौड़े-दौड़े ताँगे तक जाएँ, बहू-बेटे और दोनों पोतों को पाकर निहाल हो जाएँ। यही अभिलाषा आज उन्हें और कोई भी काम करने नहीं दे रही थी। हमेशा सुबह-सुबह जैसे ही कुलदीप के पेपर डालने की खड़खड़ाहट उन्हें सुनाई पड़ती तो बूढ़े रमाकांत गेट खोलकर शीघ्रता से अखबार उठा लाते थे। उसे सूरज चढ़ जाने पर भी पढ़ते रहते थे, लेकिन आज अखबार की हैडलाइन पढ़कर ही रमाकांतजी ने उसे मूढ़े पर डाल दिया था। आज अखबार पढ़ने की ललक नहीं थी। उत्कंठा थी बहू-बेटों के इंतजार की।

रमाकांतजी के दो बेटे हैं। एक का नाम विकास है, तो जैसा बताया जा चुका है, दूसरा श्रीधर है। विकास छोटा बेटा है। किसी फैक्टरी में अकाउंटेंट है। उसकी बहू नेहा सरकारी स्कूल में प्राचार्या है। स्वयं रमाकांतजी भी इनकम टैक्स ऑफिसर थे। हमेशा जिला मुख्यावास पर ही आजीविका अर्जित करते हुए उनका सर्विसकाल व्यतीत हुआ था। विगत एक दशक पूर्व ही उनकी सर्विस-संध्या का सूर्यास्त हुआ है।

सुपरिचित कवि-लेखक। अब तक दो कहानी-संग्रह, दो कविता-संग्रह, एक उपन्यास प्रेस में तथा राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ निरंतर प्रकाशित एवं दूरदर्शन तथा आकाशवाणी जयपुर से रचनाओं का सजीव प्रसारण। नाथद्वारा में हिंदी की अग्रणी संस्था साहित्य मंडल तथा राजस्थानी ब्रज भाषा अकादमी, जयपुर द्वारा सम्मानित।

बड़ा बेटा श्रीधर रमाकांतजी के दांपत्य जीवन की प्रथम सौगात होने के कारण उनके कलेजे का टुकड़ा है। पूरे बीस वर्ष सीमा सुरक्षा बल में सेवा कर आज वह मेजर के पद से सेवानिवृत्त होकर अपने पैतृक गाँव लौट रहा है। रमाकांतजी चाहते तो सर्विस में रहकर शहर के किसी मुख्यावास पर अच्छी-खासी कोठी बनाकर रह सकते थे। लेकिन उन्हें अपना गाँव अधिक अच्छा लगता है। 'जहाँ हम पैदा हुए, पढ़े-लिखे और जिस धरा की धूल में खेलकर बड़े हुए, वह हमें जान से भी प्यारी है। मैं अपना शेष जीवन भी वहीं व्यतीत करूँगा। पूर्वजों की धरोहर है मेरा अपना घर। जो मुझे वे सौंपकर गए हैं।' रमाकांतजी हमेशा यही कहा करते थे।

''अरी श्रीधर की माँ! जल्दी आओ। ताँगा आ गया है। हमारे बहू-बेटे आ गए हैं। तुम कहाँ घुसी बैठी हो। बहू-बेटों का स्वागत करो। उन्हें अंदर लिवाकर लाओ। मैं तो ताँगे के पास जा रहा हूँ।'' इतना कह रमाकांतजी ने लंबे-लंबे डग भरते हुए गेट के पास आकर उसे खोला और बच्चों के बीच जाकर खड़े हो गए। बहू प्रीति व बेटे श्रीधर ने पिताजी के चरण-स्पर्श किए। मुकुल और नकुल ने भी दादाजी को ढोक लगाई। सबको छाती से लगाकर रमाकांतजी ने अश्रुपूरित नेत्रों से उनको अपना आशीर्वाद दिया। इतने में सुशीला भी आ गई। बूढ़ी माँ ने श्रीधर का माथा चूमा। श्रीधर माँ के चरणों का स्पर्श कर उनके हृदय से जा लगा।

श्रीधर को छाती से लगाकर माँ की आँखें भर आईं। दूसरी तरफ प्रीति बहू ने चरण-स्पर्श की परंपरा का निर्वहन कर अपनी सासू माँ

की तरफ देखा तो सासू माँ उसे सीने से लगाकर फफककर रो उठीं। ''प्रीति बहू, बहुत दिनों क्या, वर्षों तक तुम नौकरी पर श्रीधर के साथ अकेली रही हो। मैं तुम्हें कुछ भी लाड़-प्यार नहीं कर सकी। अब हम सब मिलकर एक साथ रहेंगे तो बहुत अच्छा लगेगा। बिना बच्चों के घर खाने को दौड़ता था।'' सासू माँ ने आत्मीयता के साथ कहा।

''अभी नेहा कुछ...।''

हाँ बेटा! नेहा की गोद अभी सूनी ही है। बहुत से डॉक्टरों को दिखाया है। इलाज भी महीनों चला, लेकिन सभी ने हाथ खड़े कर दिए हैं बेटा। तुम्हें क्या बताऊँ, प्रीति बेटा? अब तुम सभी पहले आराम से बैठो, चाय-पानी पियो, ये सब बातें तो बाद की हैं। अब कौन सा तुम्हें सर्विस पर जाना है?'' सुशीला ने कहा।

प्रीति रसोई में गई। उसने सभी को अदरक डालकर चाय पिलाई और सामान व्यवस्थित कर कमरों में सैट कर दिया था। दोपहर को दो बजे नेहा स्कूल से आई। प्रीति को हाय-हैलो कहा और अपने कमरे में घुस गई। शाम को विकास फैक्टरी से लौटा। घर पर भैया-भाभी को देखकर बहुत खुश हुआ। उसने अपने भाई श्रीधर से चरण-स्पर्श कर आशीर्वाद प्राप्त किया। कुशलता की बातें हुईं। भविष्य की योजनाओं पर बातचीत कर ही रहे थे, तभी बूढ़ी माँ ने एक ट्रे में तीन कप चाय व नाश्ते में नमकीन और कुछ ड्राई फ्रूट लगाकर टेबल पर रख दिए थे। ''अब तुम दोनों भाई चाय पियो और नाश्ता एक साथ बैठकर खाने का आनंद लो। ये भविष्य की बातों के लिए आगे सब समय तुम्हारा ही है।'' यह कहकर हँसते हुए वे अंदर की तरफ आँगन में कुरसी पर आ बैठी थीं। मुकुल और नकुल खेलने चले गए थे।

जब घर आए तो अपने अंकल से लिपट गए। ''अंकल, अब पहले तो आप हमारी टॉफी लाओ। उसके बाद आपसे बात करेंगे।'' अंकल की जेब में लंच में उसके दोस्त के द्वारा दी गई चार टॉफियाँ यों ही पड़ी थीं। उसने तपाक से निकाली और मुकुल और नकुल को टॉफियाँ देकर उन्हें प्यार करने लगा।

कालक्रम के अनुसार सूर्योदय और सूर्यास्त होते रहे। दिन अपने-अपने क्रम से आगे बढ़ रहे थे। आपसी स्नेह के सूत्र में परिवार झूलते-झूलते आनंद का उपभोग कर रहा था। स्नेह सूत्र के झूले में झूलते हुए समय के थपेड़ों से सूत्र में घिसाव हो गया। स्नेहसूत्र कमजोर होकर टूटने के कगार पर आ गया था। भाइयों के मध्य दूरी में जो प्रेम था, उस प्रेम-कलश में रिसाव होने लगा था। घर में सब्जी और दूध का हिसाब होने लगा था। बूढ़े माँ-बाप की सेवा के लिए श्रीधर की पत्नी अपने हाथ खींचने लगी थी। मन छोटा करने लगी थी।

आखिर रमाकांतजी ने जब देखा कि इन बूढ़ी आँखों में अब मोतियाबिंद पक गया है। इसलिए ऑपरेशन करने के लिए मन के डॉक्टर से कहना पड़ेगा। पर मन का डॉक्टर ऑपरेशन के लिए राजी नहीं था। उसका कहना था, 'अभी ये कच्चा है। पक जाएगा, तभी ऑपरेशन करना अनिवार्य होगा।'

इस मध्य कालांतर में घर में दो-दो चूल्हे हो गए। रसोइयाँ जो दो दशक से खाली पड़ी थीं, अब दोनों में अलग-अलग खाना पकने लगा था। प्रीति का माँ-बाप की सेवा के संदर्भ में स्पष्ट बयान आ चुका था कि 'वह नेहा तो मैम साहब बनकर स्कूल चली जाती है। उधर देवर भी यथा नाम तथा गुण को सार्थक कर अपना विकास करने में जुटे हैं। संतान उनके है नहीं। स्वयं दोनों मियाँ-बीवी रोज शाम को गुलछर्रे उड़ाने शहर निकल जाते हैं। अरे, माँ-बाप तो दोनों के हैं, फिर मैं अकेली इन बुड्ढे-बुढ़िया का भार कब तक ढोती रहूँगी?' नेहा ने दो-टूक जवाब देकर रमाकांतजी की अभिलाषाओं पर तुषारपात कर दिया था।

बूढ़ी माँ ने स्वयं जब अपनी आँखों के सामने कानों से स्पष्ट सुना तो वे रो पड़ीं। क्या यह दिन देखने के लिए हमने श्रीधर के सेवानिवृत्त होने पर घर आने की खुशी की आशा लगाकर एक नई सुबह की कल्पना की थी?

बसंत पंचमी का दिन आया। दोनों रसोइयों में पीले चावलों की मीठी खीर बनाई गई थी। रमाकांतजी विकास के साथ रह रहे थे। बूढ़ी माँ सुशीला भी नेहा के स्कूल जाने के बाद घर का शेष काम कँपकँपाते बूढ़े हाथों से संपन्न करती थी। बसंत पंचमी को बनाई गई खीर की गाँव में पड़ोसी भी एक-दूसरे को आदान-प्रदान करने की परंपरा का निर्वहन अभी तक कर रहे थे। लेकिन रमाकांतजी और बूढ़ी माँ सुशीला अपने-अपने हाथों में विकास के घर बनी खीर के कटोरे लेकर बैठे एक-दूसरे की तरफ मूक होकर देख रहे थे।

होलाष्टक प्रारंभ हुए। बसंत पंचमी के दिन गाँव में चौपाल के सामने बीच गाँव में डांडा गाड़ा गया, अर्थात् होली पर जो होलिका दहन होगा, उस स्थल का डांडा गाढ़कर श्रीगणेश कर दिया गया था। धीरे-धीरे होली नजदीक आ रही थी। गाँव में बालक पेड़ की डाली पर धागे में बबूल का काँटा टाँगकर राहगीरों की टोपी काँटे में फँसाकर उतार रहे थे। इधर-उधर बैठे सभी बड़े-बूढ़े हँस पड़ते थे। युवक-बालक-किशोर 'होली है भई, होली है, बुरा न मानो होली है' का शोर मचा रहे थे। आखिरकार बालक उस काँटे में फँसाई गई टोपी को इस शर्त पर लौटाते थे, जब वह टोपीवाले से रंग के लिए रुपए लेने का वचन भरवा नहीं लेते।

होली का दिन भी आया। रमाकांतजी के घर में एक होली आँगन में विकास की तरफ से रखी गई। दूसरी होली श्रीधर की बहू प्रीति ने घर के ऊपर छज्जे में एक परात में लगाकर रख दी थी। फाल्गुन की पूर्णिमा की दोपहर नेहा और प्रीति ने अलग-अलग होली का पूजन किया था।

पूर्णिमा की रात्रि में नौ बजकर चालीस मिनट पर चौपाल के सामने रखी होली में गाँव के परिवार विशेष कारिंदा के एक सदस्य द्वारा होली प्रज्वलित की गई। यह परंपरा सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है। उसी

होली में से गाँव का प्रत्येक परिवार अग्नि ले जाता है। उसी अग्नि से घरों की होली दहन की जाती है।

रमाकांतजी की बूढ़ी आँखों ने देखा कि विकास होलिका दहन के लिए चौपाल की होली से अलग अग्नि ला रहा था, दूसरी तरफ श्रीधर अलग। इस अलग-अलग के अलगाव से रमाकांतजी का वृद्ध शरीर थरथर काँप रहा था। सिसकियाँ लेकर वे रो रहे थे। दोनों ही बच्चों की बूढ़ी माँ रमाकांतजी को रोता देखकर उन्हें धैर्य बँधाते हुए स्वयं भी सिसकने लगी थीं।

''सुशीला! एक घर की चहारदीवारी में कोई किराएदार भी अलग से होली नहीं मँगवाता है। और न ही गोवर्धन पूजन का निर्वहन अलग से करता है। सब एक साथ मिलकर होलिका दहन में सम्मिलित होकर जौ और कच्चे चने भूनते हैं। उन्हें साफ कर एक-दूसरे को आदान-प्रदान कर प्रसाद के रूप में उसका उपभोग करते हैं। पर सुशीला, मैं आज यह क्या देख रहा हूँ? क्या इसीलिए तुमने बुधवार का उपवास रखकर पुत्र की याचना की थी। श्रीधर गणेशजी के बुधवार के व्रत का सुफल था। लेकिन परमात्मा ने विकास जैसा पुत्र देकर पुनः हमारी फुलवारी को सुवासित कर दिया था। सुशीला, मैं आज बहुत दुःखी हूँ। नीली छतरीवाले ने यही दिन दिखलाने के लिए मुझे साँसें लौटा दी थीं।'' रोते हुए रमाकांतजी की धोती का पल्ले का एक छोर आँसू पोंछते-पोंछते भीग गया था।

''देखो जी, श्रीधर के पापा, तुम इतना क्यों दुःखी हो रहे हो? आज घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं। सब घरों में यही लीला हो रही है। इसी को तो कलयुग कहते हैं। एक रामायण काल था। जहाँ भाई-भाई के मध्य सरसता की सरयू प्रवाहित थी। विमाताओं को भी पुत्र अपनी माँ से अधिक स्नेह करते थे। एक हम अभागे हैं, जो आज अपने ही घर में अपने पुत्रों के स्नेह से तो वंचित हैं ही, साथ ही इनके आपसी स्नेह-कलश को अपनी आँखो के सामने रिसता देखकर हमारे आँसू नहीं रुक पाते हैं।'' सुशीला ने रोते हुए आँसुओं को अपनी साड़ी से पोंछते हुए कहा।

''सुशीला, मैं चाहता तो शहर में आलीशान कोठी बनाकर चार पहियों के वाहन खरीदकर शहरी जीवन जी सकता था। लेकिन मेरे हृदय में अपने गाँव की सरसता और उस जन्मभूमि के लगाव में जो सौंधी सुगंध गाँव की मिट्टी में मिलती है, वह और स्थान पर दुर्लभ थी। इसीलिए मैंने गाँव में बच्चों के साथ रहकर सुखी जीवन की कल्पना के स्वर्णिम स्वप्न सँजोए थे। लेकिन मेरे स्वप्न मेरे ही सामने तार-तार होकर टूट गए हैं। आत्मीय स्नेह और लगाव के भाव न जाने आज हमारे परिवारों से कितनी दूर छूट गए हैं? सुशीला, मुझसे अब यह सब नहीं देखा जाता। ऐसी परिस्थिति में यहाँ रहकर जीने से तो अच्छा है कि हम दोनों हरिद्वार जाकर किसी आश्रम में रहें और ईश्वराधना में शेष साँसें वहीं विसर्जित करें तो अधिक श्रेष्ठ है।'' रमाकांतजी ने रोते हुए दृढ निर्णय की ओर संकेत करते हुए अपनी धर्मपत्नी सुशीला की रोती हुई लाल आँखों की ओर देखते हुए कहा।

''तुम्हारा कहना सोलह आने सही है, जी। विकास अपनी फैक्टरी के कार्य में उलझा हुआ परेशान होकर आता है। सीधे पलंग पर जाकर अपने कमरे में आराम करने चला जाता है। दो मिनट बूढ़े माँ-बाप की राजी-खुशी लेने को आज उसके पास भी समय नहीं है। फिर नेहा तो प्राचार्या महोदया हैं, उनकी तो शान के ही खिलाफ है बूढ़ी सास-श्वसुर की सेवा करने के लिए समय निकालना। दूसरी तरफ श्रीधर तो हमेशा सीमा सुरक्षा बल में रहा है। उसे तो बस अपनी पत्नी प्रीति और नकुल और मुकुल ही नजर आते हैं। वही उसका अपना संसार है।'' सुशीला ने दुःख भरे स्वर में कहा।

''हमने एक वर्ष में बच्चों के साथ रहकर सबकुछ देख लिया है। अब हम एक पल भी यहाँ नहीं रहना चाहते, सुशीला। ईश्वर ने पेंशन की व्यवस्था भी पूर्व में ही कर दी है। किसी के आगे हाथ भी नहीं फैलाना पड़ेगा। तुम सुबह तक अपना सामान सँभालकर बाँध लो। दो-चार साड़ी और मेरे धोती-कुरते भी रख लेना। हम सुबह की ट्रेन से चले जाएँगे। शहर जाने के लिए मैंने रामसिंह प्रजापति से कह दिया है, वह सूर्योदय के साथ ही ताँगा लेकर हमारे घर पर खड़ा हो जाएगा।'' रमाकांतजी ने दृढतापूर्वक अपने निर्णय के बारे में सुशीला को कहा।

दूसरे दिन पौ फटते ही ताँगा लेकर रामसिंह प्रजापति रमाकांतजी के घर पर तैनात खड़ा दिखाई दिया। बूढ़े माँ-बाप ने लोहे के एक संदूक में सामान रखा और एक थैला ले लिया। ताँगे में चढ़ने से पूर्व वे बच्चों को आवाज दे रहे थे—''अरे विकास और श्रीधर, आओ बेटा, अब हम दोनों स्थायी रूप से हरिद्वार हरिकीर्तन को यह घर छोड़कर जा रहे हैं। तुम दोनों भाई जैसा चाहे रहना। अब हम भार नहीं बनेंगे तुम दोनों के लिए।'' इतने में नकुल और मुकुल दोनों पोते ताँगे के पास आकर खड़े हो गए। वे दोनों दादा-दादी का हाथ पकड़कर रोते-रोते कहने लगे—''दादाजी और अम्माजी, हम आपको गाँव से दूर कहीं नहीं जाने देंगे। वर्षों से हम आपके प्यार से वंचित थे। अब अवसर मिला है तो आप हमसे दूर जा रहे हैं। आप अभी ताँगे में नहीं चढ़ पाओगे, दादाजी! नहीं चढ़ पाओगी अम्माजी। आप हमारी बात मान लीजिए। आपके जाने के बाद...।'' रोते हुए दोनों पोते ताँगे के सामने आकर खड़े हो गए।

बच्चों का आग्रह मानकर रमाकांतजी निर्णय बदल लेते, लेकिन दोनों बेटा-बहू अभिवादन करके उन्हें विदा कर रहे थे—टा-टा और बाए-बाए कहकर।

बूढ़े रमाकांतजी और बूढ़ी दादी सुशीला ताँगे में बैठकर अपने घर को देखते हुए आँखों में आँसू भर लाए। ताँगा रामसिंह हाँकने लगा था। ताँगा जब तक आँखों से ओझल नहीं हो गया, तब तक तक दोनों पोते अपने आँसुओं को पोंछते ही रह गए। उधर बूढ़े रमाकांतजी और बूढ़ी दादी माँ भी सिसकती हुई बुढ़ापे की डगर पर ताँगे में चली जा रही थी।

साअ

गुप्ता सदन, एस.बी.के. गर्ल्स हा.से. स्कूल के पास,
मंडी अटलबंद, भरतपुर-३२१००९ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९९८३४०९४५४

किशोरियों का आश्विन पर्व : भोंडला

• मालती शर्मा

कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता था कि क्यों हमारे ऋषि-महर्षियों ने बसंत-वर्षा जैसी ऋतु छोड़कर 'सौ शरद' जीने की कामना-प्रार्थना की है? मगर जैसे-जैसे लोक के ओक में पैठती गई, बैठती गई, बात खुलती चली गई। शरद ही तो धरती के वृद्धिमान ऐश्वर्य की चरम सीमा है। शरद छोड़ सृष्टि के निर्मल निष्कलुष किशोर सौंदर्य की अनूठी छटा की कोई ऋतु भी तो नहीं! तभी तो पूरे भारत में किसी अन्य ऋतु में लोकोत्सवों की ऐसी रेल-पेल धक्कम-धक्का भी नहीं। विशेषकर किशोर-किशोरियों के व्रत-पर्व, खेल-उत्सव तो जैसे अपना सारा कोटा शरद में ही पूरा कर लेते हैं। आसोज के नवरात्र में देश के किसी कोने में कोई वर्ण, कोई वय ऐसी नहीं बचती, जो विश्व पोषक माँ शाकंभरी और प्रत्येक 'दु' विनाशिनी दुर्गा की आराधना में गीत-नृत्यमय फेरे न लगाती हो। दीपक न धरती हो। शरद के फूल न चढ़ाती हो।

शारदीय नवरात्र में यदि गुजरात की किशोरियाँ गरबा नाचती हैं, बुंदेलखंड की सुअटा खेलती हैं तो महाराष्ट्र के विदर्भ खानदेश अंचल की बालिकाएँ 'भुलाबाई' और पक्षिमी अंचल के घर-घर की बालाएँ 'भोंडला' या 'हादगा' मनाती हैं। भोंडला आश्विन मास में सोलह दिन खेला जाता है। हस्त नक्षत्र लगते ही इसकी शुरुआत होती है, मगर संप्रति यह अब नौ दिनों में ही सीमित हो गया है।

भोंडला या हादगा नाम क्यों पड़ा?

भोंडला हस्त नक्षत्र की गीत, नृत्य और चित्रमय आराधना है, जिसमें कुमारी और सौभाग्यवती दोनों ही योग देती हैं। मुख्य पुरोहित तो कुमारियाँ हैं, मगर सौभाग्यवती गृहणियाँ भी नित्य नवीन नैवेद्य बना हादगा देव की पूजा करती हैं। भोंडला के गीतों में हस्त नक्षत्र का अपरिमेय महत्त्व बताया गया है। हस्त क्या है? वह तो दुनिया का राजा है। उसी की दुग्ध-धाराओं से सींची यह खेती हरी-भरी हीरे-मोती जड़ी परवान चढ़ी है। मगर प्रश्न है कि इस उत्सव का नाम हादगा और भोंडला क्यों-कैसे पड़ गया? हादगा देव तो पूजा के लिए दीवार पर और फेरी के लिए पाट पर उकेरे हाथी के चित्रों को कहते हैं, मगर भोंडला का कोई संतोषजनक समाधान लोक ज्ञाता वृद्धाओं से नहीं मिलता है। मराठी में भोंड ज्वार के दानों को कहते हैं। कृष्णाजी पांडुरंग कुलकर्णी के मराठी व्युत्पत्ति कोष में भोंड का अर्थ धान्यवृद्धि भी दिया हुआ है। वैसे यही समय होता है, जब भुट्टों में दाने पड़ने शुरू होते हैं और ज्वार-मक्का

सुप्रसिद्ध वरिष्ठ लेखिका। कविता, लोकवार्त्ता, लोक-संस्कृति, समीक्षा, बाल साहित्य तथा अद्यतन सामाजिक-राजनीतिक विषयों पर विगत अड़तालीस वर्षों से अनवरत लेखन। प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लगभग नौ सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित, विविध संग्रहों तथा शोध ग्रंथों में शामिल। छोटे-बड़े कई दर्जन पुरस्कार-सम्मानों से अलंकृत। संप्रति लेखन में रत।

का एक-एक अंकणा (तना, पेड़) सात-सात कणस (भुट्टे) देता है—

अंकणा तुझी सात कणस,
भोंडला तुझी सोला बरस।

मगर अधिक समीचीन यही प्रतीत होता है कि भोंडला मराठी की 'भोवना किया' से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है चारों ओर घूमना। लड़कियाँ हस्ति चित्रांकित पाट के चारों ओर नाचकर ही भोंडला करती हैं। कदाचित् घूम-घूमकर मनाने के कारण इसे भोंडला कहने लगे हों। नाम क्यों-कैसे भी पड़ा हो, मगर अपनी समग्रता में यह उत्सव वर्षा के देवता इंद्र और महालक्ष्मी की सुख-समृद्धि हेतु की गई पूजा है। हाथी के चित्र सबका सम्मिलित प्रतीक हैं।

हादगा गांधारी पूजित

हादगा देव की पूजा की यहाँ प्रचलित एक लोककथा महाभारत में भी प्राप्त होती है। कहते हैं, किसी समय गांधारी ने नारदजी से हस्त नक्षत्र (हादगा देव) की पूजा विधि पूछी। नारदजी के बताए विधि-विधान से पूजा की। कौरवों ने रथ बनाया। गांधारी ने उसमें बैठकर नगर भर में बायना बाँटा, दान दिया। कुंती के यहाँ भी गई और उसकी गरीबी को देखकर बहुत कुछ ले गई। कुंती ने कहा, मैं दान देने की पात्र हूँ, लेने की नहीं। गांधारी अपना सा मुँह लेकर लौट आई। मगर कुंती इस प्रसंग से बहुत दुःखी हुई। कुंती को व्यथित देख अर्जुन-भीम ने कहा, 'माँ हम तुम्हारी पूजा के लिए इंद्र का ऐरावत हाथी लाएँगे। तुम भी अगले वर्ष पूजा करना।' दूसरे वर्ष हस्त नक्षत्र लगा। अर्जुन ने इंद्र को बाण से पत्र भेजा। इंद्र का ऐरावत आया। कुंती ने प्रसन्न मन पूजा की। समृद्धि हुई। दान दिया। बायना बाँटा। गांधारी के यहाँ जब गई तो गांधारी बहुत लज्जित हुई, तभी से हादगा देव का महत्त्व है।

भोंडला के गीतों में भी यह उल्लेख बार-बार आता है कि गांधारी

हादगा पूज रही हैं। सखियों को बुला रही हैं। लौंग, सुपारी, इलायची युक्त बीड़े, दूध के पेड़े, मोटे-मोटे केले अर्पण कर रही हैं। उसी तरह मैं भी सखियों के साथ हादगा देव की पूजा कर रही हूँ। हादगा देव पाहुने आए हैं। द्वार पर शहनाई-चौघड़ा बज रहा है। तुलसी, दौना, जुही, मल्लिका, शेवंती फूल रही हैं। तरह-तरह के फूल फूले हैं। हादगा देव तुम्हारा स्वागत है। तुम दुनिया के राजा हो। तुम्हें नमस्कार है—

बाजे चौघडा रुणझुणा/आला ग हादगा पावणा
दारी तुलस दवण्गा/जाई जुई शेवती दुपारीं
फुले ग नाना परी/हादगा देव भी पूजिते
सखंयाना बोला विते/लवंगा सुपारी वेल दौड़े
करुन ठेवले विडे/आणरवीन दुधांतले दूध पेड़े
हादगा गांधारी पुजिते/सखंयाना बोलाविते।

आमचा भोंडला घुमू द्या-नृत्य गीत झनकारते आगन

यह पूजा और कुमारियों के फेरे-गाने परंपरा से घर की प्रथा और सामर्थ्यानुसार १६ दिन चलते हैं। किसी घर में १ दिन, किसी में ३-५ दिन या ७-९ दिन। ऐसे विषम संख्या दिनों तक भोंडला होता है। मगर वर्तमान की मार ने भोंडला को एक दिन में ही सीमित कर दिया है। नौ गीत नौ नैवेद्य चढ़ाकर, गा-नाचकर अब लड़कियाँ किसी भी दिन भोंडला कर लेती हैं। भोंडला के फेरे-गाने दिन-छिपे से शुरू हो रात आठ नौ बजे तक चलते हैं। पूजा के लिए घर के भीतर दीवार पर रंगों व खड़िया से आमने-सामने सूँड़ किए खड़े व सूँड़ों में माला लिये हाथी के चित्र उकेरे जाते हैं। आँगन में रखने को यही आकृति रंगोली या ऋतु के विभिन्न फल-फूलों से लकड़ी के पट्टे पर बनाई जाती है। फेरा व नृत्य के लिए यह आकृति रोज नई बनती है। पूजा के लिए सभी तरह के फूल चाहे बाग-बगीचे के हों या जंगली, जरूरी होते हैं। हाथियों के गलों में ऋतु की उपज, विविध फल, शाक-भाजी, जैसे तुरई, बैंगन, करेला, परवल, ककड़ी, मिर्ची, सीताफल, भिंडी इत्यादि की माला पहनाई जाती है। रोज सायंकाल आसपास की कुमारियाँ बड़ी संख्या में एकत्र होती हैं। गीतों में निमंत्रण का भी उल्लेख है—

गंगू रंगू तंगू या/हिलमिल हादगा गाऊँगा।

अरी! गंगा, रंभा, त्रिवेणी! आओ हिल-मिल हादगा गाएँ, फिर सभी कुमारियाँ पट्टे की आकृति के चारों ओर गोलाकार घूमती अनेक प्रकार के गीत गाती नाचती भोंडला करती हैं। कहीं-कहीं मिट्टी या लकड़ी का हाथी भी बीच में रख लिया जाता है। भोंडला को देखकर अनायास ही गुजरात का गरबा याद आने लगता है।

भोंडला में रोज एक नया गीत बढ़ाकर गाने की प्रथा है। गीतों की संख्या के अनुसार ही हाथियों के गले की मालाएँ व नैवेद्य वस्तुओं की संख्या भी बढ़ती जाती है। जिस घर भोंडला होता है, उसे तो रोज एक-एक कर बढ़ाते हुए अंतिम दिन नौ नैवेद्य तैयार करने ही होते हैं। भाग लेनेवाली हर लड़की कुछ-न-कुछ लाती है।

दमड़ीचं तेल भी आणू कशी

भोंडला के गीत बाल व किशोर खेल-गीतों के अंतर्गत आते हैं । इन गीतों की प्रकृति व विषय अन्य प्रांतों के सांझी, झांझी, टेसू आदि खेल गीतों से मिलते हैं। गीतों के चरण छोटे मगर तुकांत हैं, जैसे मांझी वेणी मोकली। सोनियाची सांखली। प्रारंभ में निरर्थक शब्द भी हैं, जैसे मतुका, यतुका, चरणी, चतुका या अरडी, बाई, परडी इत्यादि। गति व लय तेज है लेकिन मधुर। विषय और प्रकृति की दृष्टि से इनमें किशोर मन की संपूर्ण प्रवृत्तियाँ समाई हैं। दमड़ी के तेल में हाथी बह जाने जैसी असंभव असंबद्ध और विचित्र कल्पनाएँ गुँथी हैं। प्रमुखत: इसमें किशोर मानस के मायके ससुराल के जीवन के साम्य-वैषम्यमय हास्य-व्यंग्य के रंगीन चित्र हैं।

कितना अच्छा था पीहर, जहाँ खेलने को मिलता था। कितनी बुरी है ससुराल कि बंद दरवाजा और मार है। यहाँ सास की चाबुक है, मगर खेल संसार की मस्ती कहाँ उतरती है। मामाजी लाई तैलंग साड़ी पहन किशोरी बुर्ज पर खेलने चढ़ जाती है। खेल-खेल में बिछुए खो जाते हैं। सास चाबुक दिखा उतरने को कहती है, मगर उसका बेफिक्र मन तो रत्नागिरी की खुल-खुल बजती चूड़ियों में खोया है। बुर्ज पर से वह अपना मायका पंढरपुर और ननसाल रत्नागिरी देखने में डूबी है। किशोर वय में घर-संसार भी खेल ही है। भोंडला का पहला गीत निर्विघ्न खेल संपन्न होने के लिए गणेश को अर्पित है—

एलमा पैलमा गणेश देवा
माँ झा खेल मांडून दे करीन तुझी सेवा।

किसी गीत में पागल पति की पत्नी के बेहाल हालचाल हैं, जिसका पागल पति गुझियों को नाव की तरह पानी में तैरा देता है। श्रीखंड को भस्म समझ शरीर में पोत लेता है और जलेबियों को चूड़ियों की तरह हाथ में पहन लेता है। यहाँ तक तो खैर है, हद तो तब होती है जब दोपहर को सोती पत्नी को मरी हुई समझ वह जला डालता है। किस्सा खत्म। पैसा हजम।

किसी कौवे द्वारा आँगन में डाली धान की बाली का गीत भी बहुत मनोरंजक है। इसी तरह से है दमड़ी के तेल की कहानी। सास की चोटी हो गई। ससुर की दाढ़ी बन गई। ननद का सिर बँध गया। बचा तेल ढककर रख दिया कि मोरनी का पैर लगा और तेल लुढ़ककर बहने लगा। बहता-बहता गाँव की सीमा पर पहुँचा। उसमें हाथी, घोड़ा, बैल सब बह गए।

भोंडला के प्रत्येक गीत की लय इतनी मधुर-मोहक होती है कि आश्विन का चाँदनी लिपा आकाश भी खिलखिला उठता है। सारा वातावरण स्वरों की मादकता में डूब जाता है।

खिरापत

मगर भोंडला में गीतों से भी कहीं अधिक कौतूहलपूर्ण एवं नाटकीय प्रसंग है खिरापत बताने-पहचानने का। भोंडला में सम्मिलित होनेवाली कुमारियाँ जो नैवेद्य लाती हैं, उसे 'खिरापत' कहते हैं। खिरापत के लिए खाने योग्य कोई भी चीज हो सकती है। लड़कियाँ यह खिरापत डिब्बा, थैला या कागज की पुड़िया में लपेट अपने परकर (लहँगा) में छुपाकर खड़ी हो जाती हैं। अपनी बारी पर प्रत्येक लड़की शेष से पूछती है—

बताओ हम क्या लाए? बाकी लड़कियाँ भोज्य वस्तुओं के ज्ञान, अनुमान और सुगंध आदि से पहचानकर बताने की चेष्टा करती हैं। यदि किसी ने कहा, बड़े तो पूछा जाता है कौन सा बड़ा? आलू बड़ा! साग बड़ा कि दाल बड़ा! जब कोई नहीं बता पाता तो वह लड़की खिरापत खोल देती है और तब उपस्थित समुदाय विस्मयाविभूत रह जाता है। जब बड़े सुंदर ढंग से लिपटे बंडल या डिब्बे में उबले चने, भुने मटर इलायची दाने, बेर या ऐसी ही कोई वस्तु निकलती है, जिसकी सहज ही कल्पना नहीं होती।

इस तरह पूछने-बताने में कभी-कभी तो २-२ घंटे लग लाते हैं। यह खिरापत योजना एक ओर जहाँ गृहणी की पाक कुशलता और रोज अपरिचित व्यंजन तैयार करने की सामर्थ्य की कसौटी है, वहीं दूसरी ओर बालिकाओं के पक्ष में यह व्यंजनों के ज्ञान-अनुमान की परीक्षा है। खेल-खेल में मौसम, वातावरण, सुगंध वगैरह से चीजों को भाँपने-पहचानने की क्षमता विकसित करने का मनोरंजक आयोजन है।

जब सारे खिरापत खुल जाते हैं तो उपस्थित सभी को एक पंक्ति में बिठा केले के पत्तों पर बाँट दिए जाते हैं। हस्त की मूसलधार वर्षा से परिपुष्ट हुए केले के पत्ते भी तो हस्त नक्षत्र का ही वैभव हैं। यह हस्त नक्षत्र की ही वर्षा है, जो जंगली पौधों, कँटीली झाड़ियों तक के माथे रंगीन फूलों के तुर्रे सजा देती है। न जाने कितने प्रकार के चिटक्या-मिटक्या करंड फूल खिल उठते हैं, जो मानो हादगा देव के माथे सजा मोतियों का तुर्रा हैं। बालिकाओं की याद में हादगा देव की यही कलंगी वर्षभर चलती रहती है—

हतुका मतुका चरणी चतुका। चिटक्या मिटक्या करंड फूल
ते बाई फूल भी तोड़ील। हादगा देवा वाही ल
हादगा तुझा तुरारा मोतीयांचा भुरारा।

१०३४/१ मॉडल कॉलोनी, कैनाल रोड
पुणे-४११०१६ (महा.)
दूरभाष : ०२०-२५६६३३१६

जियो और जीने दो सबको...

कविता

● आर.एस. पांडेय

किसान

प्रात: वेला में आँखें खोल,
परिंदों का सुन मोहक बोल।
निरख प्राची स्वर्णिम आँचल,
चला कृषक खेतों की ओर।

कंधे पर हल साथ बैलों की जोड़ी,
चारों ओर फैली है खेतों की क्यारी।
मुनि सा किसान कठिन तप करने,
धरती को तृप्त कर जग उदर भरने।

वसुधा को सींच रहा निज श्रम-बूँदों से
मंदिर की घंटियाँ सी बजती वृषभ कंधों से।
कभी तन्मय से गीत मुखर होते हैं,
मनो भूमि रानी का गुणगान करते हैं।

हिंद के किसान की तपस्या कहाँ खत्म हुई
कभी हरित क्रांति कभी श्वेत है लगी हुई
क्रांति संकल्प को ज्येष्ठा से ओत-प्रोत।
श्रम-वीर बनके बढ़ाए आज अन्न स्रोत।
पर देख दशा दीनहीन अपने किसान की
व्याकुल तड़प उठती है भारत की भारती।

कृष्ण विरह

मानस-पटल तिरोहित था
प्रेयसी की विरह व्यथा से
चेतन मन झंकृत होता था
कालिंदी कूल हवा से।

गोकुल का प्रेमी पुरुष
विकल मन से बैठा था,
नहीं आई वृषभानुजा
पल क्षण सोचा करता था।

कहीं पुलिनों से झींगुर झनकते
चौंक उठता उसे पायल समझ के,
शीतल हवा के झोंके जो आते
भूल में रहता वृषभानुजा के।

बाँसों के झुरमुट में सीटी सी बजती
कोमल कला की वह माधुरी सी,
जीवंत होकर वंशी बजाती
वह श्याम होकर वह श्याम की सी।

तंद्रा से आकुल गोपाल का मन
चकित देखता अज्ञात शिशु सा,
गई कहाँ आज वृषभानु तनुजा
व्याकुल है तन-मन जल बिनु मीन सा।

आँखें उठीं देखा क्षितिज पर
मधुचंद्रमा की बाँकी छटा पर,
मनोनील अंबर का घूँघट उठाए
राधे चली जा रही श्यामा तट पर।

अभी कुछ और सोचते श्याम
दिखाई दी लताओं बीच,
रती की मंजुलता सी काम
राधिका इतर गोपियों बीच।

जीवन

काँटे पहले मिले सृष्टि से बाद फूल का जन्म हुआ,
प्रकृति प्रगति धारा प्रवाह से जीवन पथ हुआ।

जन्म-मरण संगम की दूरी, जीवन पथ की विस्तृति माप,
जिओ और जीने दो सबको, सत् पथ पर चलते चुपचाप।
कहीं-सुनाई दे इस पथ पर दुग्ध धवल झरनों की वीणा,
कल-कल बहती सरिता लहरें कहीं-कहीं करती हैं क्रीड़ा।

तुमुल घोष कर दु:ख के बादल कहीं-कहीं मँड़राते हैं,
वीराने गम जदा मरुस्थल कहीं-कहीं बरसाते हैं।

सत्य धर्म की पहन पादुका कर्म-कवच से ढके शरीर,
कर्म-योगियों की गलियों से जीवन-पथ पर बढ़ते वीर।

गाँव : मामपुर, पो. : लंभुआ
जिला : सुल्तानपुर-२२२३०२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ७५२३८९६४२३

वे अध्यापक, जिनके ममता भरे स्पर्श ने मुझे गढ़ा

● प्रकाश मनु

कबीर ने गुरु को 'गोविंद' से बड़ा बताया, इसलिए कि गुरु ने गोविंद से मिलवाया। वे बड़ी हिम्मत से कहते हैं—और जहाँ तक मेरा खयाल है, हमारे पूरे वाङ्मय में पहली बार यह कहा जा रहा था, इतने सीधे, खरे और दो टूक शब्दों में कि गुरु और गोविंद दोनों खड़े हों तो मैं पहले गुरु के चरण छुऊँगा, क्योंकि गुरु न मिले होते तो भला मैं गोविंद से कैसे मिलता? गुरु ने ही अच्छे-बुरे का बोध कराकर जीवन जीने का, साधना का सही मार्ग बताया और यों उन्होंने गोविंद से मिलवाया तो उनका दर्जा पहले है। यानी अच्छे गुरु का मिल जाना ही जीवन का सबसे बड़ा प्राप्य है। अच्छे गुरु के मिलते ही जीवन धन्य और सार्थक हो जाता है।

यह बात कहते हुए मुझे अपने अध्यापक याद आ रहे हैं। सोचता हूँ, मेरे अध्यापकों ने मुझे न गढ़ा होता तो भला आज मैं कहाँ होता?

मैं कोई कबीर नहीं, एक मामूली आदमी और एक मामूली लेखक हूँ। पर जैसा इनसान मैं हूँ, जैसा लेखक मैं हूँ, एक नहीं, बहुतों का कृतज्ञ हूँ। इसलिए कि बहुतों का बनाया हुआ हूँ। कुछ ने पीठ ठोंकी, कुछ ने कंधा थपथपाया। कुछ ने उस समय हिम्मत बँधाई, जब मैं पूरी तरह हिम्मत छोड़ चुका था। इनमें मित्र भी हैं, परिवारीजन भी, मुझसे बड़े और बहुत आदरणीय भी, और बहुत से ऐसे भी, जिन्हें मैं ठीक से जानता तक नहीं, पर रास्ता चलते मुझ पर अनुकंपा की। किसी ने मुझ खुद में खोए हुए कतई गैर-दुनियादार शख्स को ऐन सामने या बगल से आनेवाली बस या ट्रेन के बारे में बताकर सावधान किया, बल्कि एक-दो ने तो तेजी से हाथ पकड़कर खींच लिया!...किसी ने यों ही बातों-बातों में, अयाचित कोई ऐसी सीख दे दी कि मैं भटकते-भटकते आखिर सही राह पर आ गया। बहुत से हैं, जिनका नाम भी याद नहीं है। पर शक्ल याद आती है, चेहरा याद आता है तो मैं हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम कर लेता हूँ।

पर सच में जिन्होंने यह जीवन बनाया, मुझे अपने हाथों से गढ़ा, एक बेहतर इनसान और लेखक बनाया, मेरे अंत:करण को निमज्जित किया और मुझे सही मानी में आदमी बनाया, उनमें सबसे पहला नंबर तो मेरे अध्यापकों का ही आता है। उनमें कच्ची और शुरुआती कक्षाओं के अध्यापक हैं, तो बड़ी कक्षाओं के अध्यापक भी, जिन्होंने मुझे प्यार से ठोंक-पीटकर इनसान बनाया और जाने-अनजाने लेखक भी, जिससे अक्षरों की एक निराली दुनिया मेरे आगे खुलती चली गई।

□

अपने अध्यापकों को याद करता हूँ तो सबसे पहले चश्मेवाले मास्टरजी याद आते हैं। मेरे नर्सरी के अध्यापक। हालाँकि तब नर्सरी कौन जानता था? पहले दर्जे के नए-नए आए बच्चों को अलग बैठा लिया जाता था, ताकि वे थोड़ा-बहुत पट्टी पर लिखना सीख लें। क ख ग और थोड़ी गिनती वगैरह। उसे शायद कच्ची क्लास कहा जाता था। तो उसी कच्ची क्लास का यह किस्सा है।

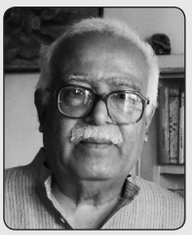

वरिष्ठ कवि-कथाकार। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास चर्चित हुए। 'एक और प्रार्थना', 'छूटता हुआ घर' कविता-संग्रह तथा 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'अरुंधती उदास है' समेत ग्यारह कहानी-संग्रह। शिखर साहित्यकारों से मुलाकात, संस्मरणों और आलोचना की कई पुस्तकें। साहित्य अकादमी के पहले बाल-साहित्य पुरस्कार, उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल-साहित्य भारती' पुरस्कार तथा हिंदी अकादमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित।

हमारे स्कूल का नाम था—पालीवाल विद्यालय, पर हम उसे बोलते थे, छोटा पालीवाल स्कूल। बाद में छठी से पढ़ाई पालीवाल इंटर कॉलेज में हुई, जिसे हम लोग बड़ा पालीवाल स्कूल कहते थे। चश्मेवाले मास्टरजी का मजेदार किस्सा छोटे पालीवाल स्कूल का है। और स्कूल में वह मेरा पहला ही दिन था। स्कूल में कच्ची क्लास में मेरा दाखिला हुआ, पर शायद दाखिले से पहले ही मैं स्कूल जाने लगा था। मुझे याद पड़ता है, मेरी दीदी कमलेश दूसरी कक्षा में पढ़ती थी। रोज-रोज उसे तख्ती और बस्ता लेकर स्कूल जाते देखता तो मुझे अच्छा लगता था। वह स्कूल के किस्से सुनाती थी और अच्छा लगता था। लिहाजा मैंने भी उसके साथ ही स्कूल जाने की इच्छा प्रकट की।

कमलेश दीदी ने बड़े भाईसाहब से बात की कि कुक्कू भी स्कूल जाना चाहता है। इस पर कुछ-कुछ मुझे खयाल है कि भाईसाहब ने कहा था, ''अच्छा, तो अभी कुछ दिन ऐसे ही चला जाए। बाद में मैं नाम लिखवा दूँगा।'' स्कूल के हैडमास्टर साहब और बाकी अध्यापक भी हमारे घर के लोगों को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए कोई मुश्किल न थी।

वहाँ लंबूतरे चेहरेवाले एक अध्यापक थे। लंबे, दुबले और प्यारे। आँख पर भारी-सा चश्मा। मैं नया-नया क्लास में पहुँचा, तो उन्हें स्वाभाविक उत्सुकता हुई। वैसे भी मेरा खयाल है, मैं जरूरत से कहीं ज्यादा सीधा और अबोध बच्चा था। एकदम बुद्धू सा। उन्होंने शायद यह देख लिया हो। तो उन्होंने इशारा करके मुझे पास बुलाया और पूछा, ''तुम्हारा नाम क्या है?''

तब घर में मुझे सब कुक्कू बुलाते थे। वही पता था। लिहाजा मैंने धीरे से जवाब दिया, ''कुक्कू।''

''क्या कहा?'' मास्टरजी ने एकाएक होंठ फैलाकर कहा, ''घुग्घू··?'' चश्मे के पीछे से उनकी शरारती आँखें चमक रही थीं। होंठों पर आनंद-भाववाली अजब सी हँसी।

इस पर उनकी गलतफहमी को दूर करने के लिए मैंने और भी जोर से चिल्लाकर कहा, ''कुक्कू, कुक्कू···!''

सुनकर दोबारा वे अपने होंठों को गोल-गोल फैलाकर बोले, ''क्या कहा, घुग्घू... ? अरे भई, यह कैसा नाम है?''

मैंने उनकी गलतफहमी दूर करने के लिए कुछ और जोर से चिल्लाकर कहा, ''नहीं, घुग्घू नहीं, कुक्कू···कुक्कू!''

मगर वे फिर उसी लहजे में बोले, ''क्या कहा, घुग्घू··?'' चश्मे के पीछे से उनकी शरारती आँखें झप-झप कर रही थीं।

अब तो मेरा धैर्य जवाब दे गया। मैं बोला, ''जरा रुकिए।'' मैं दौड़ा-दौड़ा गया और हाथ पकड़कर अपनी कमलेश दीदी को बुला लाया, जो मुझसे दो बरस बड़ी थी और कक्षा दो में पढ़ती थी। कहा कि ''मेरा नाम पूछते हैं, जरा तुम बता दो।''

जब कमलेश दीदी मेरे साथ पहुँची तो मास्टरजी ने पूछा, ''तुम इसकी बहन हो?'' दीदी ने कहा कि ''हाँ।'' मास्टरजी ने पूछा, ''इसका नाम क्या है? यह तो पता नहीं, क्या बता रहा है।''

कमलेश दीदी बड़ी थी। उसे पता था, घर पर चाहे कुक्कू कहते हों, पर मेरा बाहर का, यानी स्कूलवाला नाम तो चंद्रप्रकाश है। सो उसने कहा, ''मास्टरजी, इसका नाम चंद्रप्रकाश है।''

पर आश्चर्य! इस पर फड़कती मूँछोंवाले वे चश्माधारी अध्यापक पहले की ही तरह अपने होंठों को खूब फैलाकर बोले, ''क्या कहा? संटपरकास··! अरे भई, यह कैसा नाम है?''

उनकी इस विचित्र नाटकीय अदा से हम दोनों भाई-बहन हतप्रभ थे और हँस भी रहे थे। साथ-ही-साथ क्लास के और बच्चे भी हँस रहे थे। उस वक्त तो समझ में नहीं आया था, पर आज कह सकता हूँ कि यह उन अध्यापकजी की बड़ी प्यारी-सी कोशिश थी, मुझे संकोच मुक्त करने की! और सच में कुछ दिनों बाद ही मैंने पाया कि यही मास्टरजी मुझे सबसे ज्यादा प्यार करते हैं।

उन्होंने मोंटेसरी शिक्षा के बारे में पता नहीं, कुछ पढ़ा था या नहीं, पर हाव-भाव और अंदाज वही कि क्लास में डर का क्या काम? खूब हँसो, खूब गप्पें लगाओ, खेलकूद और गपशप में ही खूब पढ़ भी लो।

□

अगर स्कूली अध्यापकों की बात करूँ, तो सबसे पहले कच्ची कक्षा, जिसे आजकल नर्सरी कहते हैं—के इन्हीं खुशदिल और हँसोड़ मास्टरजी की मुझे याद आती है, जिनका नाम भी मुझे नहीं पता। बस इतना याद है कि वे मुझे बेहद प्यार करते थे। बच्चे अबोध होते हैं। उनके पास भाषा की सामर्थ्य बहुत नहीं होती। पर न जाने कैसा अज्ञात पैमाना उनके पास होता है, जिससे वे ठीक-ठीक जान लेते हैं कि कौन मुझे कितना प्यार करता है, या फिर नहीं करता? स्कूल में वह मेरा पहला ही दिन था, जब उन चश्मेवाले अध्यापक ने मेरे घर के नाम 'कुक्कू' को लेकर मेरा खासा मजाक उड़ाया। पर अब याद करता हूँ तो लगता है, यह उनकी बड़ी ही प्यारी-सी अदा थी।

उन 'घुग्घूवाले अध्यापक' की मुख-मुद्रा और चेहरे-मोहरे को इतने बरसों बाद भी मैं भूल नहीं पाया। शायद इसलिए कि जो प्रिय होते हैं, वे बरसों-बरस तक हमारे भीतर इस धरती के देवी-देवताओं की तरह आसन जमाए रहते हैं। और वे इस मानी में तो 'अमर' होते ही हैं कि बरसों-बरसों गुजरते जाते हैं, मगर वे कभी फेडेडआउट नहीं होते। मुझे अच्छी तरह याद है कि उनकी आँखों पर मोटे लैंस और भारी फ्रेम का चश्मा था और फड़कती हुई मूँछें। मूँछों में फुरफुराती हँसी। पता नहीं, क्यों वे मुझे बहुत प्यार करने लगे थे और खूब हँसाते थे। शायद मेरे बुद्धूपन पर वे रीझ गए हों। यों पढ़ाई में तो मैं होशियार था ही। वर्णमाला, गिनती सब मैंने जल्दी ही सीख लिये। पहली में उन्हें फिर से पढ़ना ही था। तो थोड़े दिनों बाद उन्हीं मास्टरजी की सिफारिश पर मुझे प्रमोट करके अगली क्लास, यानी पहली में भेज दिया गया। उन दिनों शायद यह तरीका था, कि अगर बच्चा अच्छा है तो एक साल में दो कक्षाएँ भी पास कर सकता है। कम-से-कम कच्ची से पहली में तो जा ही सकता है।

पर मेरे लिए शुरू-शुरू में यही चीज मुसीबत बन गई। वहाँ जो थोड़े सख्त चेहरे और रूखे स्वभाववाले रमेश अध्यापक थे, उनसे मुझे डर लगता था। इस कारण जो मुझे याद था, वह भी मैं भूल जाता था। रमेश अध्यापक गुस्सा करते और खीजते थे कि क्यों मुझ सरीखे बुद्धू छात्र को प्रमोट करके पहली में भेज दिया गया, जबकि मुझे तो कुछ आता-जाता ही नहीं। वे जिस कड़ाई से गिनती या पहाड़ा सुनाने को कहते, उससे मेरी रूह काँपती थी और मैं कुछ भी सुना नहीं पाता था। तब बीच-बीच में मेरे वही पुराने मास्टरजी संकटमोचक बनकर क्लास में आ जाते और हँसते हुए कहते, ''ओहो कुक्कू, क्या बात है? तुम्हें तो सबकुछ आता है ना!'' और रमेश मास्टरजी से कहते, ''हमारा यह कुक्कू बड़ा होशियार है। इसका खयाल रखना आप।''

मुझे लगता, उन मास्टरजी के सामने आते ही, जो कुछ भूला हो, वह भी मुझे खुद-ब-खुद याद आने लगता है। कुछ दिनों बाद मैं जो ज्यादा लाड़-प्यारवाले माहौल में पला था, धीरे-धीरे दूसरे माहौल में भी ढल गया। रमेश मास्टरजी का डर कुछ कम हुआ, तो मैं खुद-ब-खुद चल निकला और मुझे पाठ याद होने लगे। पर मैं मन-ही-मन अपने आप से यह तो जरूर कहता था कि 'काश, सारे अध्यापक, उन बड़ी-बड़ी मूँछों और चश्मेवाले मास्टरजी सरीखे ही होते तो कितना अच्छा था!' और उनके पहले दिन की अदा को याद करके मैंने उनका नाम रख लिया था, 'घुग्घूवाले अध्यापक'।

कहना चाहिए कि मेरे कच्ची कक्षावाले मास्टरजी न सिर्फ मुझे बहुत ज्यादा प्यार करते थे, बल्कि उन्होंने मेरे भीतर यह चीज पैदा कर दी कि जो तुम्हें प्यार नहीं करता, वह अच्छा टीचर नहीं हो सकता। इसीलिए

बहुत से अध्यापकों की याद है, जो शायद इतने बुरे न थे, पर मैं उन्हें अध्यापक मान ही नहीं पाया। जब आगे चलकर मैं खुद प्राध्यापक बना, तो भी औरों से तो शायद अलग ही था। साथी अध्यापकों से मेरे संबंध इतने सहज और दोस्ताना नहीं थे, जितने अपने विद्यार्थियों से।

अपने इन कच्ची क्लास के स्नेहिल मास्टरजी पर पिछले दिनों ही मैंने एक कहानी लिखी है, 'चश्मेवाले मास्टरजी'। पर मुझे लगता है, वह इतनी अच्छी नहीं बनी, जितने अच्छे वे अध्यापक थे, जो अपने स्कूली जीवन की शुरुआत में मुझे किसी वरदान सरीखे मिले थे।

इसके अलावा छोटी कक्षाओं के जिन अध्यापकों की याद आती है, उनमें कुरता-धोतीधारी तिवारीजी भी हैं, जो पालीवाल विद्यालय के हैड मास्टर थे। उनकी दो बातें नहीं भूलतीं। एक तो उन्होंने पाँचवीं कक्षा के लगभग आखिरी दिन रामचरित मानस से लिया गया पाठ 'परशुराम-लक्ष्मण संवाद' पढ़ाया था और इतना रस लेकर और इतने नाटकीय ढंग से पढ़ाया था कि मैं रस से सराबोर हो गया था। उस समय मैं भूल ही गया था कि क्लास-रूम में बैठा हूँ। लगता था कि रामलीला के मैदान में बैठा हूँ और अपने सामने होती रामलीला को देख रहा हूँ। बल्कि कहना चाहिए कि रामलीला में भी वह आनंद मुझे कभी न आया था, जो उस दिन तिवारीजी से राम-लक्ष्मण संवाद वाला पाठ पढ़कर आया था।

अहा, लक्ष्मण और परशुरामजी के वे तुर्की-ब-तुर्की संवाद भी क्या खूब थे! एकदम फड़कते हुए, और उनमें तुलसी का एक अलग ही रूप है। पर उनमें छिपे जादू की पहली झलक तिवारीजी के कारण मैं देख सका। 'इहाँ कुम्हड़बतियाँ कोउ नाहीं, जे तरजनी देख मुरझाहीं...!' जैसे संवादों के भीतर कैसा विट छिपा है, कैसा तीखा व्यंग्य-कटाक्ष, पहलेपहल तिवारीजी की बदौलत ही मैं जान पाया। तब बहुत छोटा था, पर पहली बार तभी मैं समझ पाया कि तुलसीदास कितने बड़े कवि हैं, और मन-ही-मन मैंने पहली बार उनकी काव्य-प्रतिभा को प्रणाम किया।

हालाँकि उस समय मुझे थोड़ी हैरानी भी हुई थी, ऐसे बढ़िया ढंग से तिवारीजी ने पहले क्यों नहीं पढ़ाया या कि वे हमेशा ऐसे ही क्यों नहीं पढ़ाते? मैं पूरी तरह से उनके जादू की गिरफ्त में था और पछता रहा था कि पहले उनकी इस कला से क्यों नहीं परच पाया? अगर ऐसा होता तो तिवारी मास्टरजी से जुड़े कुछ और भीगे हुए लम्हे मेरी स्मृतियों की पिटारी में सुरक्षित होते। हालाँकि तिवारीजी उस दिन कैसे लगे थे और उनका वह लक्ष्मण-परशुराम-संवाद पढ़ाना कितना अद्‌भुत था, इसकी एक छवि मैंने अपनी किसी कहानी या उपन्यास में 'मास्टर इतवारीलाल' के रूप में दर्ज की है।

तिवारी मास्टरजी से जुड़ी दूसरी बात यह है कि उसी दिन उन्होंने एक बड़ी मार्मिक बात कही थी, जिसे मैं आज तक नहीं भूला। उन्होंने कहा था कि अध्यापक के जीवन की एक बड़ी अजब-सी पहेली है। वह यह कि अध्यापक तो वहीं रह जाता है, जबकि उसके पढ़ाए विद्यार्थी कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाते हैं। फिर हलके कटाक्ष के साथ हमारी ओर इशारा करते हुए बोले, ''कहीं तुम लोग भी ऐसे ही तो नहीं हो? क्या तुम भी कुछ हो जाओगे तो हमें भूल जाओगे कि अब कौन मास्टरजी और कहाँ के मास्टरजी! रास्ते में मिलोगे तो दूसरी ओर मुँह करके निकल जाओगे कि कहीं नमस्ते न करनी पड़ जाए!''

उनके मुँह से यह बात सुनकर मैं विगलित हो गया था और भीतर-ही-भीतर बड़ी कचोट-सी महसूस की थी। बस, आँसू ही नहीं उमड़े, लेकिन मैं पूरी तरह हिल गया। आज भी मैं यह सोचकर परेशान हो जाता हूँ कि एक अध्यापक की यह कैसी नियति, कैसी विडंबना है, जिसकी ओर उन्होंने बड़े ही चुभते हुए शब्दों में इशारा किया था। मुझे निश्चित रूप से लगता है कि वह समाज जो अपने अध्यापकों को सम्मान नहीं कर सकता, कभी बड़ा समाज नहीं बन सकता। और तो और, उसे जिंदा समाज भी क्या कहा जाना चाहिए?

कहना न होगा कि मैं छोटे पालीवाल स्कूल से बड़े पालीवाल स्कूल में पढ़ने गया तो तिवारीजी के यही शब्द मेरे साथ थे, बल्कि पीछा कर रहे थे।

□

अब मुझे बड़े स्कूल यानी पालीवाल इंटर कॉलेज के अध्यापकों का जिक्र करना चाहिए। इसकी शुरुआत कला अध्यापक कृश्नचंद्र मुंदा से करने का मन है, जिन्होंने हमें छठी, सातवीं और आठवीं क्लास में कला और पुस्तक-कला पढ़ाई थी। पर शुरुआत मुंदाजी से ही क्यों? इसका कारण संभवत: यह है कि कला में मैं कच्चड़ था, यानी ड्राइंग या चित्रकला मेरी कमजोर नस थी। पुस्तक-कला में तो मैं फिर भी कुछ ठीक-ठाक था, लेकिन कला यानी ड्राइंग में एकदम कच्चड़ था। पुस्तक-कला में पोस्टकार्ड, लिफाफा, पुस्तक-चिह्न यानी बुक मार्क आदि बनाने होते थे, दफ्ती का गुलदस्ता या घर वगैरह भी। पर ये चीजें घर से बनवाकर ले जानी होती थीं, इसलिए मुझे ज्यादा मुश्किल नहीं आती थी। सत्ते, मेरा दोस्त जो पड़ोसवाले घर में रहता था, इस मामले में मेरी काफी मदद कर देता था। कुछ श्याम भाईसाहब की भी मदद मिल जाती थी।

मगर ड्राइंग तो वहीं क्लास-रूम में बनानी होती थी और मेरी फूहड़ता यहाँ पूरी तरह खुल जाती थी। मेरे आकार असहनीय रूप से भद्दे होते थे, रेखाएँ मोटी-मोटी और बुरी। अगर रबर का इस्तेमाल

पुस्तक-कला में तो मैं फिर भी कुछ ठीक-ठाक था, लेकिन कला यानी ड्राइंग में एकदम कच्चड़ था। पुस्तक-कला में पोस्टकार्ड, लिफाफा, पुस्तक-चिह्न यानी बुक मार्क आदि बनाने होते थे, दफ्ती का गुलदस्ता या घर वगैरह भी। पर ये चीजें घर से बनवाकर ले जानी होती थीं, इसलिए मुझे ज्यादा मुश्किल नहीं आती थी। सत्ते, मेरा दोस्त जो पड़ोसवाले घर में रहता था, इस मामले में मेरी काफी मदद कर देता था। कुछ श्याम भाईसाहब की भी मदद मिल जाती थी।

होता तो कागज की चमड़ी उधड़ जाती। और रंग भरने में तो मैं एकदम माशा अल्लाह था। रंग कुछ इस बेरहमी से बाहर निकले होते थे कि देखनेवाले का जी खराब हो जाए। और कोई आश्चर्य नहीं कि किसी कक्षा में—शायद सातवीं में यों तो मेरे नंबर काफी अच्छे थे, पर ड्राइंग में मैं एक नंबर से फेल था। यानी जैसा कि तब कहने का रिवाज था, मैं कृपांक यानी 'ग्रेस मार्क्स' से या तरक्की से पास हुआ था!

मैं रोता हुआ घर आया था। मेरी ममतामयी माँ ने यह सुना तो विगलित हुईं। उन्होंने तत्काल श्याम भाईसाहब को प्रिंसिपल रामगोपाल पालीवाल के पास भेजा और प्रिंसिपल साहब ने एक नंबर बढ़ाकर मुझे 'क्लियर' पास कर दिया। हालाँकि इसका अफसोस मुझे आज भी है कि कला में मुझे एक रियायती नंबर लेना पड़ा। और मुंदाजी की इस बात के लिए मैं आज कहीं ज्यादा तारीफ करूँगा कि कितना ही होशियार विद्यार्थी हो, अगर उसकी ड्राइंग अच्छी नहीं है, तो उसे फेल करते उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता था। अलबत्ता आज मैं जिन चीजों के लिए खुद को शर्मिंदा महसूस करता हूँ, उनमें प्रिंसिपल रामगोपाल पालीवाल की ओर से ड्राइंग में मिला वह एक अदद रियायती नंबर भी है।

हालाँकि खुदा का लाख-लाख शुक्र है कि बाद में मेरे ही दो सहपाठियों ने, जो एक ही गाँव के थे और शायद भाई-भाई थे, दया करके अच्छी ड्राइंग बनाने और खासकर बढ़िया रंग भरने के गुर मुझे बताए और वे मेरे बहुत काम आए। उसके बाद तो यही मुंदाजी थे, जिन्होंने खुश होकर कई बार मुझे 'गुड' और 'वेरी गुड' दिए। और तब मुझे अपने जीवन में जो खुशी मिली—जो सच्ची, एकदम सच्ची खुशी थी, उसे आज भी बरसों बाद छू और टटोलकर बता सकता हूँ कि देखो, ये थी वो चीज!

□

यों पालीवाल इंटर कॉलेज के अध्यापकों में जिनकी सबसे ज्यादा याद आती है और मैं सबसे ज्यादा जिनके प्रभाव की गिरफ्त में था, वे थे हमारे अंग्रेजी के अध्यापक राजनाथ सारस्वत! और वे सचमुच 'महान्' अध्यापक थे। एकदम विलक्षण और अद्वितीय। वैसा कोई दूसरा और हो ही नहीं सकता था। उनके बारे में कोई एक वाक्य कहना हो तो मैं कहना पसंद करूँगा कि पूरी दुनिया में राजनाथ सारस्वत तो सिर्फ एक राजनाथ सारस्वत ही हो सकते थे! उन जैसा कोई दूसरा शख्स बना पाना तो शायद खुद ईश्वर के लिए संभव न हो। पढ़ाते थे तो बिल्कुल डूब जाते थे। और ऐसे नाटकीय अंदाज में पढ़ाते थे कि पूरी क्लास पर उनका जादू तारी हो जाता था। कई बार उनकी नाटकीय मुद्राएँ देख-देखकर हम मानो अवाक् और हक्के-बक्के से रह जाते थे। इसलिए कि हमारे स्कूल की पारंपरिक पढ़ाई से उसका कोई मेल ही नहीं था। उनका पढ़ाया हुआ पाठ 'अंकल पोजर हैंग्स अ पिक्चर' अब भी याद है। और 'अब भी' क्यों कह रहा हूँ? इसलिए कि इसे तो जनम-जिंदगी तक भूल पाना मेरे बस की बात नहीं है।

उफ, उन्होंने किस कदर पूरी क्लास में नाच-नाचकर यह पाठ पढ़ाया कि किस तरह अंकर पोजर तसवीर टाँगने के लिए एक स्टूल पर चढ़ते हैं और फिर क्या-क्या तमाशे होते हैं। कभी स्टूल नीचे गिरता है तो कभी अंकल पोजर लड़खड़ाकर गिरते हैं, कभी कील दूर जा छिटकती है, कभी हथौड़ा या फिर हथौड़े की मार से टूटकर गिरा दीवार का पलस्तर। पूरे घर में हड़कंप मच जाता है कि देखो, अंकल पोजर तसवीर टाँग रहे हैं। यों वह स्कूली पाठ तो कम, नाटक में नाटक था। ऐसा गजब नाटक कि तौबा-तौबा!

याद पड़ता है, क्लास-रूम में बिल्कुल असली जैसा प्रभाव लाने के लिए हमारे अलबेले अध्यापक राजनाथ सारस्वतजी ने आवाज और चेहरे की ढेर-ढेर सी भंगिमाओं का सहारा लिया था। और फिर क्लास में कुछ ऐसा जादुई दृश्य निर्मित हो गया था कि उसकी याद से मैं आज भी चकित और विस्फारित रह जाता हूँ कि क्या यह सचमुच हुआ था! और वह भी पालीवाल इंटर कॉलेज के धीर-गंभीर वातावरण में कि एक नाटकीय पाठ को उसके असल और पूरे नाटक के साथ यों पढ़ाया गया कि मानो आप क्लास रूम में नहीं, मंडी हाउस में बैठे हैं!

राजनाथ सारस्वतजी से जुड़ा एक प्रसंग और है, जिसे मैं आज तक नहीं भूल पाया और शायद इस जिंदगी में तो कभी नहीं भूल पाऊँगा। हुआ यह कि सारस्वतजी ने क्लास में ग्रामर का पाठ पढ़ाया और उसी में से कोई काम सब बच्चों को दिया था घर से करके लाने के लिए। उनका काम हम बच्चे सबसे पहले करते थे, इसलिए कि उनके गुस्से और इससे भी अधिक उनके भाषणों से बड़ा डर लगता था। सच पूछो तो कभी-कभी हमें वे अंग्रेजी वाले 'जाइंट' लगते थे, दैत्य! लेकिन इस दफा हुआ यह कि उन्होंने होमवर्क दिया, फिर कुछ दिनों की छुट्टियाँ हो गईं। लिहाजा किसी को भी याद नहीं रहा।

छुट्टियों के बाद हम क्लास में आए तो सारस्वतजी ने काम के बारे में पूछा। पूरी क्लास में इक्का-दुक्का को छोड़कर किसी ने होमवर्क नहीं किया था, लिहाजा उनका गुस्सा सातवें आसमान पर जा पहुँचा और उन्होंने पूरी क्लास को 'मुरगा' बनने का आदेश दे दिया।

सभी सन्न! सभी जानते थे कि सारस्वतजी का कहा पत्थर की लकीर है। इसे माने बगैर कोई उपाय नहीं। यह भी हो सकता है कि अनखने पर वे गुस्से में सजा और बढ़ा दें। तो एक-एक कर सभी बच्चे सामने आते गए और मुरगा बनते गए। रह गया मैं, जो सारस्वतजी का बहुत सम्मान करता था, पर सोचता था कि ईश्वर ने जब अच्छा खासा बंदा बनाया है, तो मुझे मुरगा बनाने का हक तो किसी को नहीं है—राजनाथ सारस्वतजी को भी नहीं। अलबत्ता मैं मुरगा नहीं बना।

सारस्वतजी ने बहुत धमकाया। क्लास से निकल जाने और हफ्ते भर तक क्लास में न आने को कहा। मैं इस पर भी तैयार नहीं था और उनकी हरेक धमकी और भयानक दैत्यनुमा क्रोध का जवाब मेरे पास सिर्फ यही था कि ''सर, आप मार लीजिए। आप कितना ही मारिए, मैं चूँ नहीं करूँगा, पर नहीं, मुरगा मैं न बनूँगा।''

एक पीरियड पूरा निकल गया इसी चक्करबाजी में। सारस्वतजी कभी शांत होकर मुझे समझाते कि ''मि. विग, मुरगा तो तुम्हें बनना पड़ेगा, इसके बगैर कोई चारा नहीं है।'' कभी आगबबूला होकर डाँटने

लगते। अंत में पीरियड खत्म होने की घंटी बजी, तो मुझे कुछ चैन पड़ा। सारस्वतजी क्लास से जाने लगे तो उन्होंने निर्णायक स्वर में कहा कि ''देखो विग, तुम्हारी वजह से पूरा पीरियड खराब हो गया। पूरी क्लास का बहुत नुकसान तुमने कराया है। अब अगले पीरियड में या तो मेरे पीरियड में आना मत या फिर पीरियड शुरू होते ही यहाँ आकर मुरगा बन जाना। अच्छी तरह सोच लो कि तुम्हें क्या करना है, वरना मुझे सख्त कदम उठाना पड़ेगा।''

उसके बाद एक-एक करके कई पीरियड आए-गए। मुझे कुछ होश नहीं था। मैं तो जैसे कीलित कर दिया गया होऊँ! मेरा सारा ध्यान तो उस कत्ल की घड़ी पर था, जो अंग्रेजी के अगले पीरियड यानी आठवें पीरियड में आनेवाली थी। तो आखिर, जैसे-तैसे राम-राम करके आठवाँ पीरियड शुरू हुआ। मेरी ऊपर की साँस ऊपर, नीचे की साँस नीचे। डर के मारे प्राण निकले जा रहे थे कि पता नहीं क्या हो! पर मुरगा मैं न बना। सारस्वतजी ने बहुत डर दिखाया, गुस्से के मारे उनकी भी हालत खराब थी। अपने तरकश के सारे तीर वे चला चुके थे। पर क्या करते! वे मुझे प्यार भी बहुत करते थे। लिहाजा एक बीच का रास्ता उन्होंने यह निकाला कि कहा, ''अच्छा, इतना ही तुम कहते हो तो एक तरीका है कि अगर क्लास के बच्चे कहेंगे कि विग को छोड़ दीजिए, तो हम छोड़ देंगे।''

ओह, ईश्वर का लाख-लाख धन्यवाद! उनकी बात अभी पूरी भी न थी कि पूरी क्लास एक साथ चीख पड़ी, ''छोड़ दीजिए सर, छोड़ दीजिए···छोड़ दीजिए!'' और यों मामला बमुश्किल खत्म हुआ। हालाँकि खत्म हुआ तो भी अंतरतम में बुरी तरह 'थर-थर···थर-थर' हो रही थी। आँखें जैसे आँसुओं से उमड़ उठना चाहती हों और आँसू निकल भी न रहे हों!

खैर, उस दिन पूरी छुट्टी होने पर स्कूल से निकला, तो मैं क्लास के सारे बच्चों का 'हीरो' था, क्योंकि एक बच्चे ने पहली बार किसी नचिकेता की तरह अपनी विनम्रता से एकदम एक गुस्सैल अध्यापक पर विजय पाई थी···और कहिए कि एक सही मुद्दे पर विजय पाई थी। यह विजय उस अध्यापक पर थी, जिसका गुस्सा हमें यमराज से कम भयानक नहीं लगता था!

राजनाथ सारस्वतजी भी पिछले दिनों मुझ पर छाए रहे और कुछ अरसा पहले ही उन पर एक कहानी 'जोशी सर' मैंने लिखी है, जिसे कुछ मित्रों ने बहुत पसंद किया। इसे पढ़कर बहुत से मित्रों ने कहा कि ''आपके जोशी सर तो भूलते नहीं हैं।'' तब हँसकर मैंने यही कहा कि ''काश, आप असली जोशी सर, उर्फ हमारे राजनाथ सारस्वतजी से मिले होते। तब आपको पता चलता, यह दुनिया कितने अद्‌भुत लोगों से भरी पड़ी है।''

पालीवाल इंटर कॉलेज में अंग्रेजी के एक और अध्यापक थे मि. खुराना, जिनकी बड़ी मधुर स्मृति मेरे मन में है। खुरानाजी ने इंटरमीडिएट में हमें अंग्रेजी पढ़ाई थी। उनका नाम मैं भूल गया, पर अंग्रेजी पढ़ाने का उनका अंदाज अब भी याद है। वे इस कदर मुसकराते हुए, बहुत अनौपचारिक अंदाज में खुशदिली से अंग्रेजी पढ़ाते थे कि बस मजा आ जाता था। और लगता था कि क्या ही मजा आए, अगर हम पूरी जिंदगी बस अंग्रेजी लिटरेचर पढ़ते गुजार दें! अंग्रेजी साहित्य पढ़ने में मुझे इतना मजा कभी नहीं आया, जितना तब आता था।

इंटरमीडिएट में पहले ही दिन जब वे अंग्रेजी पढ़ाने आए, उन्होंने सबसे पूछा, ''हाईस्कूल में तुम्हारे अंग्रेजी में कितने नंबर थे?'' जब मैंने बताया कि हाईस्कूल में अंग्रेजी में मेरी डिस्टिंक्शन थी तो उन्होंने कुछ हैरान होकर पूछा था, ''तुम क्रिश्चियन हो क्या?'' मेरे 'न' कहने पर वे चौंके।

उन दिनों हमारे यहाँ अंग्रेजी डिस्टिंक्शन का रोब कुछ ऐसा था। मुहावरेदार अंग्रेजी बोलने का सुख क्या होता है, यह मैंने उनसे ही जाना। वे ऐसे अध्यापक थे, जो अंग्रेजी अच्छी पढ़ाते ही नहीं थे, बल्कि अंग्रेजी में लिखने-पढ़ने को भी प्रेरित करते थे।

जब मैं इंटरमीडिएट में था, तभी लोहियाजी के 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन से प्रभावित होकर मैंने अंग्रेजी के खिलाफ शिकोहाबाद शहर में आंदोलन किया था और रात-रात भर जागकर नारे लिखे थे। लेकिन अंग्रेजी साहित्य का आनंद लेना भी मैं न भूला। अपने देश में अंग्रेजी की तानाशाही से हमारा विरोध था, अंग्रेजी साहित्य से हर्गिज नहीं। यह फर्क हम बराबर करते रह सकें, इसका श्रेय उन्हीं खुराना सर को जाता है! और सच तो यह है कि मेरे मन में आदर्श अध्यापक की जो सुंदर छवि है, वह बहुत कुछ खुराना सर से मिलती-जुलती है। इसका सबसे सुंदर लक्षण यह है कि उनसे हमें डर बिल्कुल नहीं लगता था और मन उनके पढ़ाए हुए में खुद-ब-खुद रमता जाता था। हमेशा एक मंद-मंद मुसकराहट उनके चेहरे पर हमेशा रहती थी और वह मुझे बहुत लुभाती थी। लगता था, एक अच्छे अध्यापक को ऐसा ही होना चाहिए।

□

फिर गिरीशचंद्र गहराना, जिन्होंने इंटरमीडिएट में हमें गणित पढ़ाया था। वे सही मायनों में गणित के जादूगर थे। बल्कि कहना चाहिए, गणित उनकी उँगलियों के पोरों पर नाचता था। मुझे लगता है, उन्हें जरूर हवा में अपने चारों ओर गणित की संख्याएँ लिखी हुई नजर आती होंगी। इसीलिए ब्लैकबोर्ड के पास आते ही वे इतनी तेजी से बोलते थे, जैसे कहीं सामने लिखा हुआ पढ़ रहे हों। और फिर उतनी ही तत्परता से उनकी उँगलियाँ तेजी से ब्लैकबोर्ड पर दौड़ने लग जातीं। वे खेल-खेल में गणित के सवाल हल करते थे और हमारी बड़ी-से-बड़ी समस्याओं को बस एक मामूली इशारे से ही, चुटकी बजाते हवा में उड़ा देते थे।

यों गिरीशजी अपने ढंग के निराले अध्यापक थे। बेहद मेहनती इनसान। उनसे ज्यादा मेहनती अध्यापक भी कोई हो सकता है, कम-से-कम मैं इसकी कल्पना करने में खुद को असमर्थ पाता हूँ। उनकी एक खासियत यह थी कि वे क्लास में एक मिनट तो क्या, एक सेकेंड भी बरबाद नहीं करते थे। क्लास के बाहर से ही जैसे बोलते हुए आते थे और भीतर घुसते ही विषय की थोड़ी प्रस्तावना के बाद सीधा ब्लैकबोर्ड पर लिखना शुरू कर देते थे। मैंने देखा कि बड़े-से-बड़े बदमाश और महा ऊधमी लड़के भी उनकी क्लास में चुप और आतंकित होकर बैठे रहते

थे। कहीं एक हलकी चूँ भी नहीं। यों तो ऐसे लोग अंग्रेजी पढ़ानेवाले सारस्वतजी से भी डरते थे। पर नहीं, वहाँ तो फिर भी कभी-कभार हँसी-मजाक की भी गुंजाइश थी, पर यहाँ तो निपट गंभीरता थी, जैसे सारा गणित रटा पड़ा हो और मौका आते ही वह उँगलियों की पोरों से फूट पड़ता हो! मुझे सचमुच इस बात का गर्व है कि मुझे गिरीशजी ने पढ़ाया है। वे सही मायने में पालीवाल इंटर कॉलेज के गौरव थे और शिकोहाबाद के भी।

गिरीशजी के साथ ही याद आते हैं, भौतिक विज्ञान वाले शर्माजी! यानी अध्यापक समाज में हमारे धीरोदात्त किस्म के नायक श्री लक्ष्मणस्वरूप शर्मा! जैसे गिरीशजी कड़ी मेहनत के पर्याय थे, ऐसे ही शर्माजी सख्त अनुशासन के। वे सच में अपने कई विलक्षण गुणों के कारण 'किंवदंती-पुरुष' बन चुके थे।

यों हमारे कॉलेज में गिरीशजी और शर्माजी की जोड़ी थी। बड़ी ही विलक्षण जोड़ी। कॉलेज के ये दो सिरमौर अध्यापक थे, जिनकी दूर-दूर तक कीर्ति थी। पता नहीं, कहाँ-कहाँ तक लोग उनकी अद्‌भुत शिक्षण कला का बखान किया करते थे, जिसके कारण पढ़ाई और हर वर्ष निकलनेवाले परीक्षा-परिणाम को लेकर हमारे कॉलेज का बड़ी दूर-दूर तक नाम था। उनके शिष्य भी ऊँचे-ऊँचे पदों पर थे। पर आपको यह जानकर हैरानी होगी कि हमारे अध्यापकों की यह अमर जोड़ी, विभिन्नताओं का एक विचित्र संगम भी थी। इसलिए कि गिरीशजी के विपरीत, भौतिक विज्ञान के हमारे ये धीर-गंभीर अध्यापक शर्माजी बिल्कुल ट्यूशन नहीं करते थे और इस चीज को कतई पसंद भी नहीं करते थे।

बाहर से जो अध्यापक विज्ञान की प्रैक्टिकल परीक्षा लेने आते थे, उनके लालच की अनंत कथाएँ वे हमें सुनाया करते थे। कभी गुस्से में, तो कभी मजाक में भी। उस क्षण उनके पूरे मुखमंडल पर एक आदर्श और स्वाभिमानी अध्यापक की सी उजली कांति देखकर मैं विभोर और कुछ-कुछ गर्वित सा होता था कि सचमुच हम कितने भाग्यशाली हैं, हमारे अध्यापक इतने अच्छे, इतने आदर्श अध्यापक हैं! उनका स्वाभिमान कुछ-कुछ हम शिष्यों का भी अभिमान बन जाता था।

दोनों अध्यापकों में एक फर्क और था। गिरीशजी बोलते ज्यादा थे और बहुत तेज-तेज बोलते थे। अपनी क्लास में काम करके न लाने या फिर त्रिकोणमिति के फॉर्मूले याद न करनेवाले छात्रों को दूर से बस एक कटाक्ष से ही ऐसा काटते कि उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लग जातीं। आवाज उनकी तीखी-धारदार थी। खड्‌ग जैसी। उस हिसाब से शर्माजी बहुत कम बोलते थे। बड़े शांत थे और बहुत धीरे बोलते थे। ज्यादातर थोड़ा-बहुत समझाने के बाद बोर्ड पर सवाल लिख देते थे और फिर चुपचाप अलग खड़े हो जाते थे, ताकि हम अच्छी तरह नोट कर लें। बस बीच-बीच में जब जरूरी होता था, तभी बोलते थे। कभी-कभी समझाने और व्याख्या करने पर आते थे तो बड़े सरल शब्दों में और बीच-बीच में थोड़ा रुककर, बहुत अच्छी व्याख्या करते थे।

□

पर मेरे प्रिय और विलक्षण अध्यापकों की बात अभी खत्म नहीं हुई। मैंने इंटरमीडिएट में गणित पढ़ानेवाले गिरीशजी का जिक्र किया। पर हाईस्कूल में गणित पढ़ानेवाले लालाराम शाक्यजी को कैसे भूल सकता हूँ? ठीक है, उन्होंने हमें कुछ ही दिनों तक पढ़ाया और फिर चले गए। पर उनके जाने को कितनी उदासी और तकलीफ के साथ हमने झेला, यह भी बताना मुश्किल है। लालाराम शाक्य बड़े ही कलाकार तबीयत के और खुशदिल अध्यापक। थोड़ा श्यामल वर्ण, माथे पर हर वक्त थिरकनेवाले गहरे काले बालों के गुच्छे और हर पल होंठों पर नाचती मुसकान। ब्लैक बोर्ड पर कुछ लिखते-लिखते अचानक वे पलटकर मुसकराते हुए हमारी ओर देखते तो लगता, जैसे पूरी क्लास को उन्होंने प्यार की डोर से बाँध लिया हो। याद पड़ता है कि बस, कुछ ही दिन उन्होंने पढ़ाया था। फिर वे चले गए। कहाँ, क्यों... ? मैं नहीं जानता। पर उनका जाना हमें बेहद अखरा। इसलिए कि गणित को भी वे कविता वाले लास्य के साथ पढ़ाते थे। एकदम सरल, सुबोध बनाकर। इससे अच्छा पढ़ाने का ढंग भला और क्या हो सकता है?

शाक्यजी की कई बातें याद आती हैं। इनमें सबसे बढ़कर है, उनकी मोहिनी मुसकान। तुलना करनी हो तो कहूँगा, एकदम कृष्ण कन्हैया की सी मोहक मुसकान थी वह। उन्हें देखकर लगता था, जैसे साहित्य या कला का कोई अध्यापक भूल से गणित पढ़ाने चला आया हो। वे थे भी कुछ कलाकार ही! हाथ में चॉक लेकर ब्लैकबोर्ड पर ऐसी गजब की फुरती के साथ गोला खींचते थे कि बस देखते ही बनता था। और वह गोला इतनी पूर्णता लिये हुए होता था, इतना मुकम्मल, इतना सही कि उस पर दोबारा हाथ लगाने की उन्हें जरूरत नहीं थी। जैसे वृत्त खींचनेवाला बहुत बड़ा परकार लेकर किसी ने खींचा हो।

याद है कि एक झटके में ऐसा बढ़िया गोला खींचने के बाद वह पहले एक नजर ब्लैकबोर्ड को देखते थे, एक सुरीली मुसकान के साथ, और फिर कुछ आत्ममुग्धता भरी बाँकी अदा से हमारी ओर देखते थे, दाद चाहनेवाले अंदाज में! जैसे कवि-सम्मेलन का कोई कवि बढ़िया गीत सुनाने के बाद थोड़ा रुककर बाँकी अदा से श्रोताओं की ओर देखता है, कि अरे भई, अब थोड़ी तारीफ तो करो!

पूरी क्लास मंत्रमुग्ध। हम सभी कुछ ऐसे चकित से कि जैसे कोई जादू दिखाया जा रहा है! अपने इस जादू पर वे खुद भी मंद-मंद हँसते थे और उनके साथ-साथ हम सब भी हँस पड़ते थे। पूरी क्लास में आनंद और प्रसन्नता की एक लहर दौड़ जाती थी। क्या यह गणित का जादू था? नहीं, शायद गणित और कला का मिला-जुला जादू!

साहित्य में तो यह हो सकता है और सच्ची पूछो तो अकसर होता ही है, पर गणित में भी हो सकता है, यह हमने शाक्यजी से ही सीखा। ऐसे बढ़िया अध्यापक क्यों कॉलेज छोड़ गए, कहाँ गए, कुछ पता नहीं। बाद में उनकी जगह जो अध्यापक आए, वे उतने ही 'नीरस' थे, जितना कोई गणित का अति साधारण अध्यापक हो सकता है! और यों शाक्यजी के साथ-साथ गणित का आनंद भी चला गया। गणित में हाईस्कूल में मेरे सौ में पंचानबे नंबर थे। पर इसका श्रेय अगर किसी को देना

हो तो मैं लालाराम शाक्यजी को देना चाहूँगा, जिन्होंने सिर्फ कुछ दिनों के अध्यापन से ही गणित को मेरे लिए कविता सरीखा आनंददायी बना दिया।

मैंने जीवन में पहली बार जाना कि ''अरे, गणित तो आनंद की वस्तु है, उससे क्या डरना? उससे तो प्यार करना आना चाहिए!'' और मेरे भीतर यह बड़ा परिवर्तन हुआ शाक्यजी के कारण, जिसने मुझे बहुत बल दिया और आत्मविश्वास से भर दिया।

इसके साथ ही पालीवाल इंटर कॉलेज के हिंदी के दो अध्यापकों का जिक्र तो होना ही चाहिए, जिनके बगैर यह वृत्त पूरा नहीं हो सकता। इनमें एक थे साहित्यप्रकाश दीक्षित और दूसरे जगदीशचंद्र पालीवाल। दोनों कविमना व्यक्ति और हम छात्रों में भी साहित्यकार होने की उत्कट कामना जगानेवाले। मुझे याद है कि इन दोनों ही अध्यापकों में कुछ अलग-सी कविताई ठसक थी, जो बाकी के अध्यापकों में न थी। यह चीज मुझे मोहती थी और मैं कुछ-कुछ चकित हुआ सा, चुपके-चुपके उनके व्यक्तित्व के ऐसे कोणों और रेखाओं का अध्ययन किया करता था।

यों गिरीशजी अपने ढंग के निराले अध्यापक थे। बेहद मेहनती इनसान। उनसे ज्यादा मेहनती अध्यापक भी कोई हो सकता है, कम-से-कम मैं इसकी कल्पना करने में खुद को असमर्थ पाता हूँ। उनकी एक खासियत यह थी कि वे क्लास में एक मिनट तो क्या, एक सेकेंड भी बरबाद नहीं करते थे। क्लास के बाहर से ही जैसे बोलते हुए आते थे और भीतर घुसते ही विषय की थोड़ी प्रस्तावना के बाद सीधा ब्लैकबोर्ड पर लिखना शुरू कर देते थे। मैंने देखा कि बड़े-से-बड़े बदमाश और महा ऊधमी लड़के भी उनकी क्लास में चुप और आतंकित होकर बैठे रहते थे।

□

पालीवाल इंटर कॉलेज में दो अध्यापक ऐसे थे, जिन्होंने हमें कभी पढ़ाया नहीं, पर उनकी इतनी गहरी छाप मन पर पड़ी कि मैंने उन्हें अन्य अध्यापकों से कहीं अधिक ऊँचे आसनों पर बैठाया और बड़े मन से उनका आदर किया। आज भी करता हूँ। इनमें एक हिंदी के आचार्य किस्म के शांतिस्वरूप दीक्षित थे और दूसरे अंग्रेजी के शांतमना ओंकारनाथ अग्रवाल।

शांतिस्वरूप दीक्षित हमारे दौर के काफी पढ़े-लिखे अध्यापकों में थे। हिंदी भाषा और साहित्य के बड़े भारी विद्वान्। मेरे साहित्य के बहुत से संस्कार उनकी पुस्तक 'भाषा भास्कर' पढ़कर बने। यह हिंदी की अनोखी सहायक पुस्तक थी, जिसे शिकोहाबाद के ही एक प्रकाशक कृष्णा बुक डिपो ने छापा था और भारत में दूर-दूर तक इस किताब की माँग थी। एक सहृदय साहित्यकार ही ऐसी पुस्तक लिख सकता था, जो यों तो एक सहायक पुस्तक ही थी, पर ऐसी रसमय और साहित्यिक कि किसी को भी लेखक बना दे।

सच तो यह है कि हिंदी के दिग्गज लेखकों को जानने की मेरी शुरुआत दीक्षितजी द्वारा लिखी पुस्तक 'भाषा भास्कर' से ही हुई। हिंदी के प्रसिद्ध कवियों की इतनी अच्छी पंक्तियाँ इस किताब में इतने सलीके से और उनके वास्तविक 'मर्म' को उद्घाटित करते हुए उद्धृत की गई थीं कि मैं अकसर सुबह उठकर तड़के ही याद किया करता था और उस समय कितना आनंद आता था, हृदय में रस की कैसी धारा बहती थी, क्या कहूँ! दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, जयशंकर प्रसाद, निराला, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' समेत कई कवियों की कविताएँ, जो तब 'भाषा भास्कर' में पढ़ी थीं, आज भी जस की तस मुझे याद हैं और उन्हीं से एक तरह से मेरा साहित्यिक संस्कार भी बना!

यों मैं निस्संकोच कहूँगा कि मुझे लेखक बनाने में शांतिस्वरूप दीक्षितजी का भी बड़ा हाथ है और उनकी किताब 'भाषा भास्कर' आज भी एक मॉडल की तरह से मेरे सामने है कि साहित्य की दुनिया में हम काम करें तो कैसे करें और कैसे पाठकों के एक बड़े वर्ग को रसात्मक ढंग से साहित्य से जोड़ें! हमारे कल के पाठक ही नहीं, लेखक भी यहीं से जन्म लेंगे।

इसी तरह ओंकारनाथ अग्रवाल की लिखी पुस्तक 'डिलाइट्स ऑफ इंगलिश ग्रामर' बड़ी अच्छी किताब थी, जिसे हमने दसवीं कक्षा में बड़े ही आनंद के साथ पढ़ा। यह पुस्तक भी हमारे शहर के ही उन्हीं प्रकाशक कृष्णा बुक डिपो ने बड़े सुंदर ढंग से छापी थी। इससे ओंकारजी की एक प्रिय छवि मन में अंकित हुई। पर फिर उनसे मिलना हुआ, तो उनके चुंबकीय व्यक्तित्व से मैं खिंचता ही चला गया। वे आदर्श अध्यापक तो थे ही। पर उन्होंने इससे भी आगे बढ़कर बड़े भाई और गाइड की तरह कदम-कदम पर मेरा बौद्धिक और भावनात्मक ढंग से मार्गदर्शन किया।

उस समय एक मैं विद्रोही जैसा था, जिसके भीतर हर क्षण एक ज्वालामुखी सा धधकता रहता था। साथ ही एक साथ बहुत कुछ कर डालने का नशा था। हालाँकि दुनिया और दुनियादार लोगों की कोई व्यावहारिक समझ तो थी नहीं। इसलिए मेरी किशोरावस्था और तरुणाई में ऐसे बहुत मौके आए, जब मेरे कदम भटक सकते थे। उस समय ओंकारजी का शांत और संयमित चेहरा मेरे लिए बड़ा संबल बना।

ओंकारनाथ अग्रवाल के निकट रहकर मेरे जीवन में आस्था और विश्वास की नींव मजबूत हुई। तैश में कोई निर्णय लेने के बजाय, आगा-पीछा सोचकर काम करने का ढंग मैंने उनसे सीखा। साथ ही विपरीत स्थितियों में भी अपने निर्णय पर टिकने की दृढ़ता मैंने उनसे सीखी। ओंकारजी के प्रशांत व्यक्तित्व में एक शीतलता थी, जिसने मुझे भी शांत किया। यों उनके निकट आकर मैं भीतर-बाहर से बदला। मेरी अच्छी चीजों को वे बराबर प्रोत्साहित करते थे। इससे आगे कुछ करने की उम्मीद बँधी। नए सपने देखने मैंने शुरू किए। वे स्वयं अध्ययनशील थे, इसलिए शिक्षा से इतर बहुत से सामाजिक-सांस्कृतिक कामों में

शामिल होते हुए भी, उनका पढ़ना-लिखना नहीं छूटा। मुझे यह बात अच्छी लगी। तब से जीवन में और बहुत सारे काम करते हुए भी बरसों से मेरा लिखना-पढ़ना अविकल रूप से जारी है। इसका बहुत कुछ श्रेय ओंकारजी को ही जाता है। उनमें एक अध्यापक का मैंने ऐसा रूप देखा था, जिसमें माँ की सी ममता, गुरु का सा गुरुत्व और किसी दिग्दर्शक जैसा गंभीर, प्रशांत और धीरजवान व्यक्तित्व था।

पता नहीं मैंने पहले कहीं इस बात का जिक्र किया है कि नहीं, किसी सभा में या मंचों पर मेरे बोलने की शुरुआत पालीवाल इंटर कॉलेज से हुई थी। अगर मैं भूल नहीं रहा तो ग्यारहवीं कक्षा से। वह पंद्रह अगस्त का कार्यक्रम था, जिसमें मैं खूब तैयारी के साथ बोला था और तभी से एक जोरदार वक्ता के रूप में मेरी धाक जम गई थी। इसके बाद न सिर्फ निरंतर वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में बोलने की शुरुआत हुई, बल्कि मेरे व्यक्तित्व में भी उल्लेखनीय परिवर्तन आया। मेरा संकोच और भीरुता कम हुई और मैं धीरे-धीरे मानो बहिर्मुखी होने लगा। छात्रों के बीच जो मुझे लगातार प्रसिद्धि मिल रही थी, वह भी मानो एक तरह से मेरी शक्ति ही थी।

पंद्रह अगस्त के मेरे भाषण को सबसे अधिक सराहा ओंकारनाथ अग्रवाल ने। बोले, ''बहुत प्रभावी था तुम्हारा भाषण। मैं तो बहुत हैरान होकर सुन रहा था। जानना चाहता था कि यह कौन सा विद्यार्थी है, जो देशप्रेम से जुड़ी इतनी बातें कह रहा है।'' शायद उन्होंने ही सबसे पहले पहचाना कि मेरे अंदर छिपी कोई चीज है, जो औरों से अलग। वे हर जगह इसका जिक्र करते और मुझे आगे बढ़ाने की कोशिश करते।

ओंकारजी ने कभी पढ़ाया नहीं, पर जो मेरे लिए 'गुरुओं से बढ़कर गुरु' थे। वे उस आंदोलनकारी समय में जब मेरे भीतर बड़ी भयानक उथल-पुथल चल रही थी और मैं कुछ कर गुजरने के लिए बेचैन था, बमुश्किल मुझे सँभाला और यथासंभव पथ-प्रदर्शन किया। मेरे भीतर एक तरह के 'आदर्श' की छवि गढ़ने में उनकी सचमुच बड़ी भूमिका है।

ओंकारजी के जीवन के आखिरी दिनों में ने मेरी उनसे मुलाकात नहीं हो सकी। उनको पारकिंसन की बीमारी ने काफी परेशान किया हुआ था, जिससे उनके हाथ काँपते थे, जबान में भी कुछ लड़खड़ाहट आ गई थी। एक बार उन्होंने मिलने के लिए बुलाया था। पर तब दुर्भाग्य से मैं किसी काम में बुरी तरह फँसा हुआ था। नहीं जा सका। और फिर सुना कि वे गुजर गए। अंतिम समय में उनसे न मिल पाने का बहुत गहरा अपराध-बोध मेरे भीतर है।

□

और हाँ, पालीवाल इंटर कॉलेज के प्रधानाचार्य रामगोपाल पालीवालजी का जिक्र तो छूट ही गया! उन्हें भला कैसे याद न करूँ? वे अपने आप में एक खास शख्सियत थे, जिनका कोई जोड़ नहीं था। कोई सानी नहीं। अपने आप में वे एक किंवदंती पुरुष थे और उन्होंने एक तरह से अपना पूरा जीवन ही इस कॉलेज के लिए होम कर दिया था। उनसे जुड़ी कई यादें आज भी मन की स्लेट पर एकदम ताजा हैं। इनमें एक तो यही कि उन दिनों कॉलेज की बिल्डिंग बन रही थी और पालीवालजी दिन में कई चक्कर वहाँ लगाते और राज मिस्त्री, मजदूर सभी को खूब प्रोत्साहित करते थे। कभी-कभी तो उत्साह में आकर वे खुद भी एक मजदूर की तरह ईंटें पकड़ाने के काम में लग जाते थे।

हम लोग कॉलेज की उस अधबनी इमारत में मिस्त्रियों को अकसर दीवारें बनाते या छत डालते देखा करते थे। चारों ओर ईंटें और दूसरा सामान भी बिखरा पड़ा रहता था। पर इस हालत में भी हमारी पढ़ाई में कभी कोई व्यवधान नहीं आया। जरूरत पड़ने पर बरामदे की दीवारें खड़ी करके वहाँ छप्पर तानकर हमारी क्लासों की व्यवस्था कर दी जाती।

कभी-कभी मदद के लिए बड़ी कक्षाओं के छात्रों को भी बुला लिया जाता और सभी उत्साह से इस निर्माण कार्य में शामिल हो जाते। ईंटें पकड़ाने के काम में तो छठी-सातवीं कक्षा के विद्यार्थियों की बालसेना भी बड़े उत्साह से शामिल हो जाती थी। कॉलेज में बड़े घरों के बच्चे भी थे। खूब धनवान और संपन्न परिवारों के बच्चे। पर इस श्रमदान में कभी किसी ने नाक-भौं नहीं सिकोड़ी। उलटे हम सभी को मजा आता था, जैसे यह भी किसी खेल का हिस्सा हो। बाद में केले, अमरूद या चने बँटते और हम लोग परम आनंद से खाते थे। आज सोचता हूँ, रामगोपाल पालीवालजी का समर्पित व्यक्तित्व हमारे सामने न होता तो भला यह सुख और प्रेरणा हमें कहाँ से मिलती? हम इतने आनंद से इस काम में कैसे जुटते?

आश्चर्य, इसके बावजूद हमारा कॉलेज दूर-दूर तक पढ़ाई में अव्वल माना जाता था। दूसरी एक शासियत उसकी यह थी कि अमीर और गरीब बच्चों में कोई फर्क, कोई भेदभाव नहीं था। अध्यापक भी उन्हीं बच्चों को दिल से चाहते और पूरी क्लास में उनकी तारीफ करते थे, जो पढ़ाई में होशियार और मेहनती थे। कई बार तो उनमें गाँव के ऐसे गरीब बच्चे भी होते थे, जिनके पास पहनने के लिए ढंग के कपड़े तक नहीं होते थे। पर अध्यापक अमीरों के बच्चों से ज्यादा उन गरीब बच्चों को पसंद करते थे और उनकी दिल खोलकर तारीफ करते थे। इससे जाने-अनजाने एक बात सब बच्चों के मन में जम जाती थी कि इस संसार में विद्या से बड़ा कोई गुण नहीं है, विद्या से बड़ा कोई खजाना नहीं है। यह ऐसी सीख थी, जिसे हम आज बरसों बाद भी नहीं भूले।

प्रधानाचार्य रामगोपाल पालीवालजी की चर्चा के साथ ये सारी बातें भी इसलिए याद आ गईं, क्योंकि हमारा कॉलेज रामगोपाल पालीवालजी के लिए ईंट और सीमेंट से बनी इमारत नहीं, बल्कि उनकी सर्वोत्तम कृति थी, जिसके चप्पे-चप्पे में उनकी छाप नजर आती थी। वे ऐसे बड़े और समर्पित 'कृतिकार' थे, जो अपनी रक्त और मज्जा से कृति की रचना करता है और अपना सर्वस्व उसे देकर निःशेष हो जाता है। आज मैं जो कुछ भी हूँ, उसे बनाने में रामगोपाल पालीवालजी और उनके द्वारा निर्मित कॉलेज का बड़ा और मूल्यवान् योगदान है, मैं इसे भला कैसे भूल सकता हूँ!

५४५ सेक्टर-२९,
फरीदाबाद-१२१००८ (हरियाणा),
दूरभाष : ०९८१०६०२३२७

माटी कहे कुम्हार की···

• तुलसी देवी तिवारी

खड़···खड़···खड़···स्ट्रेचर की कानफोड़ू आवाज सुनकर स्नेहा की नींद उचट गई, उसका सारा शरीर काँपने लगा। पेट में उथल-पुथल होने लगी। सेमी प्राइवेट रूम का एक बिस्तर खाली था, उसी पर कोई नई पेशेंट आ रही थी लेबर ओटी से। पेशेंट तो बेहोश थी, वार्ड ब्वॉय और हाउस कीपर ने मिलकर उसे उतारा और खाली बिस्तर पर लेटा दिया। वह कराह रही थी बेहोशी की हालत में। उसके पीछे-पीछे गोद में बच्चा लिये एक उम्रदराज महिला ने कक्ष में प्रवेश किया। अटेंडर के खाली पड़े बिस्तर पर बैठ गई थी वह, बच्चे को लिये-लिये।

''क्या हुआ?'' उसने अनायास ही उस महिला से पूछ लिया।

''बेटी है।''

''पहली है?''

''नहीं, चौथी।''

''चौ···ऽ···ऽ···थी ऽ···ऽ··· ? जाँच नहीं करवाए क्या?''

''क्या करते जाँच करवाकर? प्रसाद समझकर ले लिया, जो मिला।'' महिला की आवाज गंभीर थी, लग रहा था जैसे कुछ कामना के विपरीत हो गया हो, वह अपने आप को सँभाले हुए थी।

''आप बहुत दु:खी हो रही हैं?'' उसके स्वर में स्वत: सहानुभूति घुल गई।

''मेरा भगवान् जानता है, मुझे बच्ची होने का कोई गम नहीं है, देखिए न, तीन बच्चियाँ नॉर्मल हो गईं, इसके समय ऑपरेट करना पड़ा, वह तो भगवान् का लाख-लाख शुक्र है कि मेरी दोनों बच्चियाँ सही सलामत हैं।'' उसने लंबी साँस ली। नवजात बच्ची सो रही थी, सद्य: प्रसूता की कराह धीमे-धीमे बिखर रही थी कमरे में।

''ये आप की कौन··· ?''

''मेरी बेटी है सबसे छोटी, यह पुरातत्त्व अधिकारी है, दामाद भी ऊँचे पद पर हैं, इसकी बड़ी बेटी कॉलेज में पढ़ रही है। इस उम्र में बच्चा चाहने का कोई सवाल ही नहीं था, किंतु आनेवाले को कौन रोक सकता है! आ ही गई।''

''स्नेहाऽ···ऽ! आँखें बंद करके सो जाओ, तुम्हारे लिए नींद आवश्यक है।'' इस खटर-पटर में देवकी की भी नींद खुल गई, अस्पताल में वैसे भी कौन सो पाता है! पाँचवें दिन स्नेहा की तबीयत थोड़ी ठीक थी, सो देवकी भी जरा आराम करना चाहती थी। अब तक तो जैसे गले पर तलवार लटक रही थी। यदि स्नेहा को कुछ हो गया होता तो सारी बदनामी उसी की होनी थी। सास-ससुर तो थे नहीं, दोनों जेठ अपनी-अपनी नौकरी पर गाँव से दूर रहते थे, पुस्तैनी मकान में वही तो रहती थी अपने पति-बच्चों के साथ। सारे रिश्तेदारों की आव-भगत, नेवता-हँकारी, सबकुछ उसी की जिम्मेदारी। ननदों का क्या, जरा सा ससुराल में जी ऊबा, चलो पाँड़ेपुर, भाभी सबकुछ करेगी ही। यह स्नेहा तो और! ससुराल में इसके पैर टिकते कहाँ हैं! जब मायके में किसी की नहीं सुनती तो ससुराल में क्या सुनती होगी? लगी आधी रात को चबड़-चबड़ करने, ससुरालवालों को छोड़कर सारी दुनिया इसकी सगी है। वह मन-ही-मन बड़बड़ाई। अब उसने स्नेहा की ओर मुँह कर लिया। नई पेशेंट को अभी डीप चढ़ रहा था, लाइट तो बुझने से रही! स्नेहा ने कंबल खींचकर मुँह ढक लिया और नींद को बुलाने लगी, परंतु उचटी नींद फिर आती कहाँ है! उसकी आँखों के आगे सोना-मोना के चेहरे नाचने लगे। कितनी प्यारी बच्चियाँ हैं! बात करती हैं तो लगता है, जैसे फूल झड़ रहे हों! अभी आठ वर्ष की ही तो है सोना और मोना पाँच की, दुनिया-जहान की बातें सुन लो! ऐसी ही तो वह भी होती! वही जो छोटे-छोटे टुकड़ों में दिखी थी, जिन्हें पहचानना मुश्किल था···नहीं···नहीं मुझे अपना बीता हुआ कल याद करने की आवश्यकता नहीं है, जो शेष है, उसे ही समेटना है अब तो, वह न जाने किस जन्म की दुश्मन थी? किस पाप का बदला लेने आई थी उसकी कोख में? रोज हजारों औरतें ऐसा करती हैं, जैसा उसने किया, किसी को पता भी नहीं, सारा बखेड़ा उसी के साथ होना था। उसने अपनी पीड़ा में आराम पाने के लिए सारा दोष उस अजन्मी बच्ची के सिर मढ़ दिया, जो स्वयं उसकी क्रूरता की शिकार थी।

हाँ, अब तो दूसरों के साथ वह भी स्वयं को डाँटने के लायक ही रह गई है। बी.एस-सी. पास किया था उसने, अच्छे मार्क्स आए थे, वह कॉम्पटीशन की तैयारी करना चाहती थी अपनी सहेलियों की तरह।

''जा, वहीं जाकर करना, जो कुछ करना हो! हमारी और भी

सुपरिचित कथाकार। अब तक सात कहानी-संग्रह, दो यात्रा-संस्मरण, वृहद उपन्यास-१, दस बालोपयोगी पुस्तकें, 'पुकार जगन्नाथ की' (यात्रा-संस्मरण) प्रकाशित। छत्तीसगढ़ी राजभाषा सम्मान, न्यू कबीर सम्मान, राज्यपाल शिक्षक सम्मान, छत्तीसगढ़ रत्न, राष्ट्रपति पुरस्कार, साहित्य मंडल, नाथद्वारा से मानद उपाधि।

लड़कियाँ हैं, रिटायर होने के पहले सभी को निपटाना है हमें। अच्छे ब्राह्मण हैं, दस बीघे खेत हैं, पढ़ा-लिखा लड़का है, सास बिजनेसवाली है, माँग-जाँच कुछ है नहीं, चार आदमी का छोटा सा परिवार रहेगा, और क्या चाहिए तुझे?'' पापा ने डाँट दिया था।

सबकुछ सच ही निकला, दस बीघे खेत में जाओ, गेहूँ उगाओ! कमी क्या है, सास की नर्मदा के किनारे जबलपुर के रामघाट पर माला-फूल की दुकान है। ससुर गाँव में खेत-खार घर-द्वार देखते हैं। पढ़े-लिखे पति को आज तक कोई ढंग की नौकरी नहीं मिल सकी। आज यहाँ तो कल वहाँ, हजार-दो हजार महीने के लिए बारह से पंद्रह घंटे रोज झख मारता रहता है। बिना नागा पढ़े-लिखे होने का ताना सहो। डोकरिया न जाने कहाँ से हाथ देखना सीख आई है, लोग भीड़ लगाए रहते हैं दुकान में। आँख के अंधे गाँठ के पूरे लोगों की कमी कहाँ है अपने देश में? न जाने कैसे जोड़-तोड़ करके जबलपुर में एक छोटा सा मकान खरीद लिया है, बस वही सोलह आना है, दुकान का भी बहाना ही है, छाती पर मूँग दलती यहीं जमे रहने का। बेटा तो हई है लल्लूलाल, पल्लू पकड़े रहता है माँ का। अब तो सोना-मोना भी दादी-दादी करती घूमती रहती हैं, नाश्ता दादी के हाथ से, खाना दादी के हाथ से, बाल वे ही अच्छा बनाती हैं। स्कूल उन्हीं के साथ जाना है, लोग उनकी इज्जत करते हैं। सोना रात में उन्हीं के साथ सोती है, वे कहानियाँ सुनाती हैं।

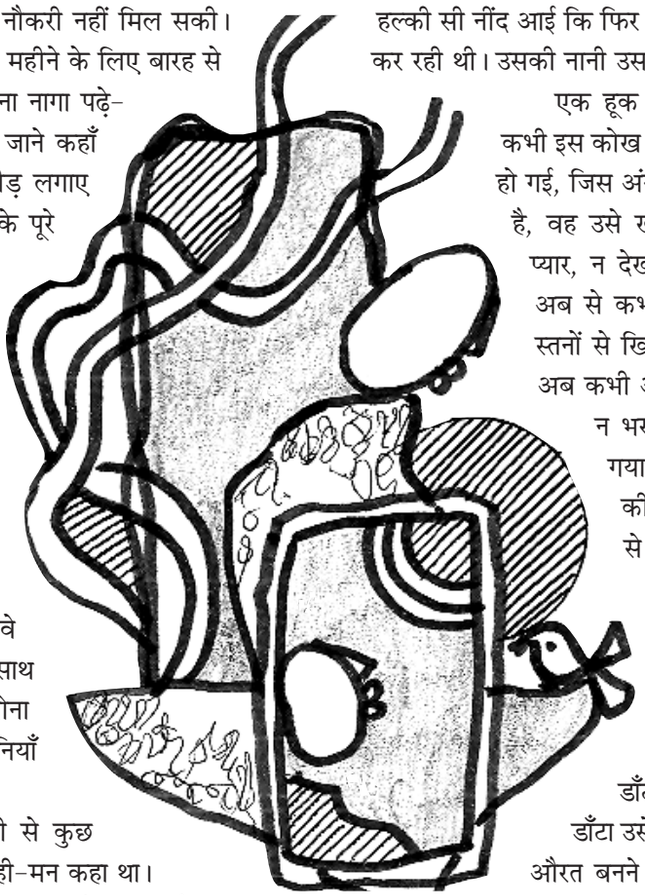

'जाओ तुम लोग भी, उसे किसी से कुछ लेना-देना नहीं है।' चिढ़कर उसने मन-ही-मन कहा था।

एक मुट्ठी भात के लिए मैके में भारी नहीं है स्नेहा, माँ-बाप की जायदाद में बेटी का इतना तो हक बनता ही है। रहो तुम लोग दादी-पापा के साथ, पढ़ो-लिखो, चाहे जहन्नुम में चली जाओ! जब अपना मन परेशान रहता है, तब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। बड़ी गोड़धरिया के बाद एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी भी लगी तो सारा कस-बल निकल गया। सुबह सात से दोपहर तीन बजे तक स्कूल में पढ़ाओ, बाद में पालकों से संपर्क करो, रात में मूल्यांकन की कॉपियों की जाँच! अपना जीवन तो रह ही नहीं गया हो जैसे। बच्चियों को देख-देखकर तो वह और चिड़चिड़ाती, उनके सिवा और था भी कौन, जिस पर वह अपनी खीज निकालती? ऐसे में वे और दादी के निकट होती गईं। जैसे ही स्कूल की छुट्टी हुई, वह निकल गई पाँड़ेपुर के लिए, इस बार तो जाते समय बताया भर था कि वह जा रही है, और नहीं तो क्या? दस साल हो गए शादी हुए, कब तक कहीं आने-जाने के लिए रिरियाती रहे! अपना भी कोई वजूद है या नहीं?

उसका पाँड़ेपुर पहुँचना हुआ कि देवकी भाभी का अपने मायके जाना हो गया। उनके भतीजे की शादी पड़ी थी। यह तो वैसे ही हो गया, जैसे कोई नमाज बख्शाने जाए और रोजे गले पड़ जाएँ। गाँव में इन दिनों काम की भरमार रहती है। फसल की कटाई-मड़ाई, मजदूरों का दाना-पानी सबकुछ सुरक्षित रखना, भाई बेचारे की सालभर की कमाई थी, भाभी को समझ में नहीं आया तो क्या वह भी नासमझ बन जाए? हल्की सी नींद आई कि फिर खुल गई, बगल में बच्ची काँय-काँय कर रही थी। उसकी नानी उसके कपड़े बदल रही थी।

एक हूक सी उठी उसके दिल में। अब कोई कभी इस कोख में पैर नहीं पसारेगा, वह अधूरी औरत हो गई, जिस अंग के कारण औरत मर्द से भिन्न होती है, वह उसे खो चुकी है। न नौ माह का लाड़-प्यार, न देख-भाल, न घर के कामों से छुट्टी, अब से कभी कोई अपने नन्हे-नन्हे हाथ उसके स्तनों से खिलवाड़ नहीं करेंगे, उसके आँचल से अब कभी अमृत नहीं झरेगा। उसका जीवन एक न भरनेवाले सूनेपन से सदा के लिए घिर गया। उसने पेट से आग का गोला गले की ओर चढ़ता अनुभव किया। आँखों से गरम-गरम आँसू बह चले। उसने सिसकी रोकने के लिए अपना मुँह दबाया, बनावटी दोषारोपण, सत्य के प्रकाश में अँधेरे की भाँति नष्ट हो गया। जाग जाएगी देवकी भाभी तो फिर दस बातें सुनाएगी। जब डाँट की जरूरत थी, तब किसी ने नहीं डाँटा उसे, हो सकता था शायद तब वह अधूरी औरत बनने से बच जाती। उसने नाभि के नीचे हाथ फेरा। दस-बारह टाँके लगे थे, पूरे पेट पर पट्टी बँधी थी। डॉक्टर कहते हैं, धीरे-धीरे खाली जगह भर जाएगी, भर तो जाएगी, पर क्या वह पुनः माँ बन सकेगी? भले ही जरूरत न हो, हैं न उसकी दो-दो बेटियाँ सोना और मोना, उनके बाद उसे और नहीं चाहिए था कुछ, इसीलिए तो···।

ऐसा तो नहीं था, स्वयं से झूठ बोलने से क्या फायदा? उसे वह नहीं चाहिए था, जो उसके पेट में था, उसे वह चाहिए था, जिसकी कमी थी उसके जीवन में।

हजार सावधानियों के बाद भी होनी को कौन टाल सका है? भले ही लांछन किसी को भी लगे। वह फोन पर कैसे कहे कि पुनः उसके पाँव भारी हैं। दोनों लड़कियों की पढ़ाई का खर्च उठाने में ही राजेश्वरी के दाँतों पसीना आ रहा था, एक और लड़की···ऽ···ऽ! आगे-पीछे सोचते-सोचते दिन निकलते गए। मायके में अकेली थी, वह खाट पकड़ लेती

तो घर कौन सँभालता! देवकी भाभी जब तक आई, सुरक्षित मुक्ति का समय बहुत दूर जा चुका था। सोनोग्राफी की रिपोर्ट देखने के बाद उसकी खोपड़ी भक्क से उड़ गई; उसे एक ही बात समझ में आई थी कि चाहे जैसे हो, इस कलंक को धो डालना चाहिए।

''जो लगेगा, दूँगी मैडम, मुझे इस भार से मुक्त कर दीजिए!'' उसने अपनी शादी का कंगन डॉक्टर के हाथ में रख दिया था।

''देखिए, आपकी प्रॉब्लम मैं समझ गई हूँ, परंतु रिस्क लेना संभव नहीं है। मैं दवाई दे देती हूँ, अपने आप साफ हो जाएगा। आप हमारा नाम किसी से नहीं बताएँगी, दवा लेने की बात आप स्वयं भी भूल जाएँगी।'' डॉक्टर ने सरगोशी की थी। वह इसी तरह की सेवा के लिए जानी जाती थी, बहुत माल बनाया था उसने थोड़े ही समय में। कल तक जहाँ उसका अस्पताल किराए के एक कमरे में लगता था, आज उसका तीन मंजिला सर्व सुविधा युक्त अस्पताल है। उसने राजनैतिक सुरक्षा प्राप्त करने में सफलता पाई है। स्नेहा जैसे मामले में ही एक महिला की मौत होने के कारण वह विशेष चर्चा में आ गई थी, किंतु वाह रे जुगाड़! आठवें दिन वह जेल से बाहर थी, अस्पताल का काम यथावत् चलने लगा था।

सबकुछ मालूम था उसे, आखिर करे क्या? और किसी ने घास जो नहीं डाली उसके आगे। और कोई ले न ले, उसे तो रिस्क लेना ही पड़ा। चार दिन तक वह दर्द से तड़पती रही। इंतजार करती रही कि रक्त के रेले के साथ वह पिंड भी बाहर आ जाएगा, जो उसके जीवन में हजार समस्याएँ लेकर आनेवाला है। भाभी ने जब सबकुछ समझा, तब सिर थामकर बैठ गईं।

''अब क्या जवाब दूँगी तुम्हारी सास को? बड़ा पाप हो गया। कहेंगी, तुम्हारी लापरवाही से बच्चा खराब हो गया। कुछ किया तो नहीं तुमने? मुझे ठीक-ठीक बताओ!'' उन्होंने उसे झिंझोड़ दिया था।

''कुछ नहीं किया, भाभी! अपने आप दर्द शुरू हो गया।'' उसने दाँतों पर दाँत चढ़ाकर दर्द बरदाश्त किया था। उसके माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं।

''हमें तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है—क्या करें क्या न करें, तुम्हारी ससुराल फोन कर देते हैं।'' भाभी एकदम से घबरा गई थीं।

''नहीं भाभी, वहाँ फोन मत करो! मैं ठीक हो जाऊँगी, हो सके तो मुझे अस्पताल ले चलो!'' कहते-कहते वह चक्कर खाकर गिर पड़ी। उसके दोनों पैरों के बीच जमीन पर चमकीला लाल रक्त फैल गया था। देवकी ने जबलपुर फोन कर दिया। दूसरे ही दिन राजेश्वरी पाँड़ेपुर पहुँच गई। कैवल्य रह गया बच्चियों के पास।

धुलाई करके उसकी कोख की सफाई कर दी गई, वह घंटों बेहोश रही।

''माँजी, आप लोग भी गजब करता है। मेल बेबी का चाह में पाँच महीने के फिमेल बेबी को मार दिया! उसका सब अंग बन चुका था। काट-काटकर निकालना पड़ा। सड़ गया था बच्चा पेट में ही। कम-से-कम एक सप्ताह पहले गोली खिलाया है आप लोग। धिक्कार है ऐसी औरत लोगों को, जो पेट में लड़की को मार देता है। मन तो हो रहा है, पुलिस बुलाकर आप लोगों को जेल भेज दूँ।'' साउथ इंडियन डॉक्टर राजेश्वरी को दरवाजे पर खड़ी देख उसी पर बरस पड़ी। वह हाथ जोड़े सबकुछ सुन रही थी।

''मैडम! मैं बहुत आभारी हूँ आपकी, आपने मेरी बहू को बचा लिया।''

''ठीक है, ठीक है।'' डॉक्टर बुरा सा मुँह बनाए असीम व्यस्तता के भाव प्रदर्शित करती चली गई थी।

कुछ नहीं पूछा था उस समय राजेश्वरी ने, घर आने पर अच्छी खबर ली—''बहुत मजा आया न मुझे हत्यारी साबित करके? तुमसे किसने कहा था बच्चा गिराने के लिए? तुम पालती क्या उसे? नहीं लेना था तो पहले से होशियार रहती! तुम्हारे पापा यदि गेहूँ न बेचे होते तो तुम्हें बचाने के लिए किसी पराए के आगे हाथ फैलाना पड़ता हमें। न कुछ सोचना न समझना, बैग उठाई और मायके! रहो यहीं अब, मैं बच्चियों को सँभालूँगी या तुम्हारी सेवा करूँगी?'' वह दूसरे ही दिन उसे छोड़कर चली गई थी जबलपुर।

स्नेहा के शरीर से बहुत सारा खून बह गया था, उसकी रंगत हल्दी के समान पीली पड़ गई थी। दवाई चल रही थी। इस बीच कैवल्य का कई बार फोन आया। वह भी उससे सख्त नाराज था, बस एक ही बात रटे जा रहा था, ''तुमने ऐसा क्यों किया? जैसे दो पल रही हैं, वैसे ही तीन भी पल जातीं।''

''तुमने भी तो दो-दो बार मुझे गोलियाँ खिलाईं, तब कुछ नहीं हुआ? और जब मैंने स्वयं खा ली तो पाप हो गया?''

''सप्ताह-दो सप्ताह और पाँच महीने में तुम्हें कोई अंतर ही नहीं लगता? अब तो मेरा मन भी तुम्हारी ओर से उचट गया है, जब तुमने इतने बड़े फैसले में मेरी राय जानने की जरूरत नहीं समझी, तब अकेले जीवन भी जी सकती हो।'' उस दिन की बात ने तो स्नेहा के आत्मविश्वास को जैसे तोड़कर रख दिया। आँसू बहाने के सिवा अब और क्या रह गया था उसके जीवन में? कभी मन होता, दवाइयाँ खाना बंद कर दे, जीवन वैसे ही समाप्त हो जाएगा या फिर नींद की ढेर सारी गोलियाँ खाकर सो रहे, रोज हिम्मत जुटाती, लेकिन कुछ कर नहीं पाती। कभी बेटियों का भोला चेहरा आँखों के सामने झूल जाता, कभी पति का, कभी मन होता सबकुछ छोड़कर कहीं दूर चली जाए, फिर लगता, घर से बाहर एक जवान औरत को नोचनेवाले अनेक भेड़िए हैं, वह कैसे बचेगी उनसे? और भी दुर्गति हो जाएगी।

भाभी के व्यवहार में भी वह अंतर देख रही थी। अब पहले सब लोगों को खिला-पिला लेती, तब उसका ध्यान स्नेहा की ओर जाता। ठीक है भाई, बाहर जानेवालों का इंतजाम तो पहले करना ही होगा। वह न उसकी जिम्मेदारी थी और न ही उसके दिल में स्नेहा के लिए प्रेम था। उसे तो लगने लगा था कि अपने मन का करके इसने अपनी जिंदगी तबाह कर ली। इसके माँ-बाप इतना तो नहीं छोड़ गए कि इसे जीवन भर ढोया जा सके।

उसके शरीर में एक अनोखा परिवर्तन आने लगा, उसके उदर

में कुछ बढ़ने लगा। पेट में जानलेवा दर्द के साथ जब-तब बदबूदार रक्तस्राव होने लगता। उसके चीखने-चिल्लाने से त्रस्त होकर भइया एक दिन उसे अस्पताल ले गए, डॉक्टर ने साधारण जाँच-पड़ताल के बाद कुछ दवाइयाँ देकर विदा कर दिया। उसका पेट लगातार बढ़ रहा था, छूने पर ऐसा लगता, जैसे तीन महीने का भ्रूण हो, वह बेहद हैरत में थी। बराबर रक्तस्राव हो रहा था, फिर क्या बिना बीज के फल लग सकता है। उसे चलने-फिरने में भी परेशानी होने लगी थी।

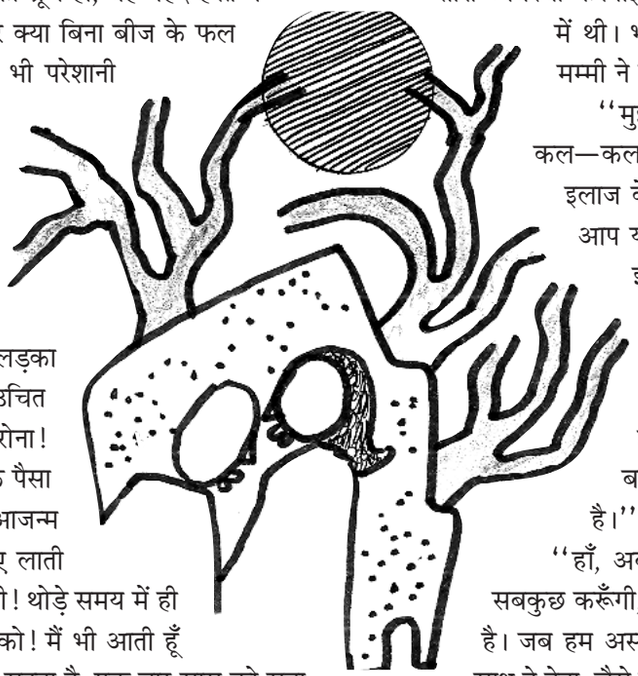

एक दिन वह बहुत देर तक अपने स्त्री-जीवन पर आँसू बहाती रही, ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण सरकार ने हर जगह पीछे कर रखा है उन्हें, आरक्षण के कारण सरकारी नौकरी मिलती नहीं। लड़का हो तो जैसे-तैसे जी ले, लड़की की उचित व्यवस्था न हो तो जिंदगी भर का रोना! जैसे-तैसे पढ़ाओ-लिखाओ, एक-एक पैसा जोड़कर शादी करो, ससुराल में भी आजन्म दासता। कौन सा सुख भोगने के लिए लाती अपनी बेटी को इस संसार में? जा बेटी! थोड़े समय में ही मुक्त हो गई! माफ करना अपनी माँ को! मैं भी आती हूँ तेरे पास! उसने सोच लिया, और नहीं सहना है, एक बार सास को सुना दे खरी-खरी, बस अलविदा इस संसार से।

उसने राजेश्वरी का नंबर मिलाया।

''हलो!'' उधर से राजेश्वरी की आवाज सुनाई दी।

''मैं बोल रही हूँ, मम्मीजी, प्रणाम करती हूँ।''

''भगवान् तुम्हें सद्बुद्धि दे!'' राजेश्वरी के स्वर का रूखापन महसूस किया उसने।

''मम्मी! आप बहुत नराज हैं न मुझसे! आज तक मैं कभी आप को संतुष्ट नहीं कर पाई। आप मेरी इतनी खराब हालत देखकर गईं और एकदम भूल गईं, शायद मेरी जगह आपकी बेटी होती तो आप ऐसा न करतीं। ठीक है, जो आप ने किया, अच्छा ही किया। मुझे मेरी बच्चियों से दूर किया, पति से दूर किया, अब निकल जाती हूँ आप की दुनिया से।'' उसकी सिसकी निकल गई, गला भर आया ।

''अरे सुनो तो! मैंने तो तुम्हें आराम करने के लिए वहाँ छोड़ा है। मेरी सेवा से तुम भी तो कभी संतुष्ट न हो सकी! नहीं तो बार-बार मायके ही क्यों भागती? बेवकूफी की बातें मत सोचो, जो भी पहली गाड़ी मिले, उससे तुरंत निकल लो जबलपुर के लिए। गाँव में क्या इलाज होगा? हम जाएँगे, फिर तुम्हें लेकर वापस आएँगे, इससे कोई फायदा तो है नहीं! पुरानी बातें भूल जाओ! जो गया, वह वापस तो आ नहीं सकता!'' उनके मुँह से एक नि:श्वास खारिज हुई।

राजेश्वरी ने मुरली को भी फोन किया कि स्नेहा को तत्काल पहुँचा जाओ।

देवकी के लिए तो यह आदेश मुँह माँगे वरदान से कम नहीं नहीं था। ''चलो-चलो जो लगता है, लगने दो, ट्रेन से ले जाना तो बहुत मुश्किल है, किराए की कार ले आओ।'' उसने मुरली भइया को भेजकर सारी व्यवस्था करवाई। दूसरी सुबह तक वह अपनी ससुराल में थी। भइया तो पहुँचाकर चले गए। भाभी को मम्मी ने जाने नहीं दिया।

''मुझे किसी का भरोसा नहीं रह गया, कल—कल को आप कह सकती हैं कि 'बिना इलाज के हमारी ननद को मार डाला सास ने'। आप यहीं रहो, जब तक तबीयत नहीं सुधरती इसकी।''

''ऐसी बात नहीं है, मम्मीजी, आप की बहू है, जैसा चाहें वैसा करें, रही बात रहने की, तो आप जानती ही हैं, घर में करने-धरनेवाली मैं ही हूँ, बच्चे पढ़ रहे हैं, मेरा वहाँ रहना आवश्यक है।'' भाभी ने दबे स्वर में कहा था।

''हाँ, अब सही कहा आपने, मेरी बहू है, मैं ही सबकुछ करूँगी, मुझे आप के सहयोग की आवश्यकता है। जब हम अस्पताल चले जाएँगे, तब सोना-मोना का साथ दे देना, जैसे ही ये थोड़ी ठीक हो जाए, चली जाना।'' मम्मी की मैत्रीपूर्ण वाणी सुनकर भाभी रुक गई थीं।

फिर तो जो प्रारंभ हुआ, इस अस्पताल से उस अस्पताल का चक्कर तो अघा गया स्नेहा का मन। कोई कुछ बताता कोई कुछ। निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि गर्भाशय में बच्ची के सिर की हड्डी छूट गई थी, वह बढ़ने लगी है जिससे पेट में दर्द हो रहा है। वही आँतों को दबा रही है। गर्भाशय में गंभीर संक्रमण हो चुका है, यदि तुरंत ऑपरेशन करके गर्भाशय निकाल नहीं दिया गया तो स्नेहा का बचना नामुमकिन है। वैसे तो राजेश्वरी को वह फूटी आँख नहीं सुहाती, किंतु जाँच के परिणाम को सुनकर उसका चेहरा धुआँ-धुआँ हो गया। मन की व्याकुलता चेहरे पर छलक आई। 'हो सकता है, इलाज में लगनेवाले खर्च से डर रही हो। डॉक्टर ने खर्च भी तो तीन लाख बता दिया है, कहाँ रखी होगी डुकइया इतना रुपया? झूठी शान को बनाए रखने में तो लगी रहती है जी जान से।' जब कभी अपनी पीड़ा से किंचित् आराम पाती, तरह-तरह की बातें सोचा करती स्नेहा। कैवल्य अब एकदम शांत था। घर के काम में माँ की मदद करता, बच्चियों को तैयार कराकर स्कूल भेजता, जहाँ-जहाँ स्नेहा जाँच के लिए जाती, साथ-साथ लगा रहता। इतना लगाव अब से पहले कभी अनुभव नहीं किया था उसने अपने पति से। उसे लगता था, ससुराल के सारे रिश्ते-नाते स्वार्थ के हैं, वह मरे या जीए, इन्हें कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है, किंतु अब इनके चेहरे पर छाई मुर्दनी कोई और ही कहानी कह रही है। एक बार जब कैवल्य को चोट लग गई थी, तब भी

इसके चेहरे का नक्शा ऐसा ही था। इसी तरह बेचैन थी। तो क्या उसे भी ये लोग प्यार करते हैं?

'कहीं ये लोग मँजे हुए कलाकार तो नहीं? शायद सोच रहे होंगे, इसे मरना तो है ही, क्यों न अपने किए पर पछताती मरे? किंतु मन इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं होता, नाटक कोई घड़ी, दो घड़ी करेगा, लगभग पूरा महीना हो गया पाँड़ेपुर से आए, माँ-बेटे लगे हैं सेवा में, कभी आँखें लाल रहती हैं तो कभी खाना रखा रह जाता है। रोते हैं, लगता है उसके लिए या फिर इलाज के लिए रुपयों का जुगाड़ न हो रहा होगा, चाहे जो हो, इनकी परेशानी का कारण तो वही है न ऽ ऽ?'

'अरे! ये क्या? सोना-मोना को क्या हुआ? ये खून से लथपथ कैसे हो गईं? मम्मी-पापा सिर पटक-पटककर रो रहे हैं अपनी पोतियों के लिए, हमारा तो वंशनाश हो गया भगवान्! हमारी बहू अब कभी माँ नहीं बन सकती। सोचा था, चलो दोनों पोतियों को देखकर जी लेंगे, सत्यानाश हो उस ट्रकवाले का, जिसने इनकी ऑटो को टक्कर मार दी। अब हम क्या करें भगवान्? किसके सहारे जीएँ? मम्मी को रोते उसने पहली बार देखा था, बड़ी कड़क औरत हैं, आँसू की इतनी मजाल कहाँ कि उनकी पलकों की दहलीज लाँघ सकें? वह रोना चाहती थी अपनी सोना-मोना के लिए, किंतु कंठ से आवाज ही नहीं निकल रही थी। उसने पूरा जोर लगाया, 'हाय मेरी बच्चियाँ ऽ··· ऽ! अब मैं किसके लिए जिऊँगी? भगवान् मुझे उठा ले!' उसने अपने ही हाथों से कसकर अपना गला दबाने का प्रयास किया, किंतु कुछ न हो सका।

'सोना-मोना के लिए तो इतना रो रही है, और जिसे गर्भ में ही मार दिया उसका क्या? ले भोग बेटी को मारने की सजा! अब इस जन्म में तुझे कोई माँ नहीं कहेगा!' किसी की आवाज गूँजी थी उसके कानो में।

'हाँ! मैंने पाप तो बहुत बड़ा किया, परंतु इसमें उनका क्या दोष? मुझे क्षमा कर दो हे ईश्वर! मेरी सोना-मोना को जीवन-दान दे दो!' वह हाथ जोड़कर विनय कर रही थी।

''स्नेहा! स्नेहा! ये क्या कर रही हो?'' उसने चौंककर आँखें खोल दीं। राजेश्वरी उसकी आँखें पोंछ रही थी। ''कोई डरावना स्वप्न देखा क्या?''

''हाँ मम्मीजी, बहुत डरावना! सोना-मोना कहाँ हैं?'' उसने काँपती आवाज में पूछा, उसकी आँखें भय से फैली हुई थीं।

''ये देखो! संडे के कारण इनकी छुट्टी है आज, लेती आई तुमसे मिलाने।'' राजेश्वरी ने नहाई-धोई साफ-सुथरी बच्चियों को धीरे से उसकी बाँहों में सरका दिया।

''तुम्हारी भाभी कहाँ गई अकेली छोड़कर?'' उसने कमरे में चारों ओर निगाहें दौड़ाईं। देवकी हाथ में चाय का गिलास लिये आ रही थी।

''ये क्या देवकी! मैंने तुम्हारे भरोसे छोड़ा है अपनी बहू को, तुम उसे अकेली छोड़कर···!'' राजेश्वरी ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

''रातभर सोई नहीं थी आज, सुबह-सबेरे जरा सी आँख लगी थी इसकी। मैंने सोचा, सो रही है तब तक एक कप चाय ले आऊँ अपने लिए, बस अस्पताल के दरवाजे तक गई थी।'' वह सकपका गई थी।

प्रात: के आठ बज रहे थे। नई पेशेंट सो रही थी, स्नेहा अपनी बेटियों को सीने से लगाए धार-धार रो रही थी।

'मेरी सोना, मेरी मोना, भगवान् तुम्हें सलामत रखे! मेरी उमर भी लग जाए तुम्हें, मेरे पापों की छाया भी न पड़े तुम्हारे ऊपर!' वह अस्फुट स्वर में बुदबुदा रही थी।

''क्या देखा सपने में? बड़ी भावुक हो रही हो!'' राजेश्वरी ने पूछा।

''जबान से नहीं कह सकती, मम्मीजी, मैंने जो देखा, वह हद से ज्यादा भयानक था। यह तो अच्छा हुआ, जो आज आप इन्हें लेती आईं, वरना न जाने मेरी क्या हालत होती?''

''जो कुछ देखा हो, भूल जाओ! अंदर से टाँके अभी हरे होंगे, उनमें तनाव नहीं आना चाहिए, वैसे भी इस समय देखे गए सपने का कोई मतलब नहीं होता, यों ही जो दिमाग में रहता है, सपने में दिखने लगता है।'' राजेश्वरी ने बड़ी सहजता से स्नेहा को सँभाला।

आज पाँच दिन हो गए उसका ऑपरेशन हुए, गर्भाशय निकाल दिया गया उसका, 'तो क्या वह औरत नहीं रह गई? अधूरा हो गया उसका जीवन?'

यही बात बार-बार उसे उद्वेलित कर रही थी।

''यहाँ लेटे-लेटे न जाने क्या-क्या सोचती रहती हो, स्नेहा? जो हुआ उसे भूलने की कोशिश करो! एक अनावश्यक पड़ा अंग, जो सड़कर तुम्हारी जान लेने पर आमादा था, शरीर से निकाल दिया गया, अब तुम हमेशा निरोग रहोगी। अब तो संकट टल गया। दो-तीन दिन में तुम्हें घर ले जाएँगे यहाँ से छुट्टी कराकर।''

''क्या आपने अपना फैसला बदल दिया? आप तो मुझे अपने घर में नहीं रखना चाहती थीं नऽ···ऽ? मेरी भूल भी वैसी ही थी, आप की कोई गलती नहीं, मम्मीजी, मैंने अपनी बेवकूफी से आप सबको कितनी परेशानी में डाल दिया।'' वह पीड़ा भरे स्वर में बोली, उसके होंठों पर एक दर्दभरी मुसकान थी।

''फैसला नहीं बदला बेटा, घर ही बदल दिया, यहाँ से तुम सीधे अपने नए घर चलोगी।'' वह राजेश्वरी की बात का अर्थ न समझ सकी।

''ममा! उस पुराने घर को दादी ने बेच दिया, अब हम किराए के नए घर में शिफ्ट हो गए हैं।'' सोना ने चहककर बताया। उसे धक्का लगा, एक मकान ही तो था संपत्ति के नाम पर, और उसे भी बेच दिया मम्मी ने।

''यह क्या किया आपने, मुझ जैसी नालायक बहू के लिए बेघर हो गईं?'' स्नेहा ने आश्चर्य से नजरें उठाकर अपनी सास को देखा; उसकी सीपी सी आँखों से मोती झरने लगे—क्या करती, बेटी और घर में से एक को चुनना था मुझे।''

बी-२८ हरसिंगार, राजकिशोर नगर
बिलासपुर (छ.ग.)
दूरभाष : ०९९०७१७६३६१

भाषा का दर्द

● राहुल

भाषा के पीकदान में
हिंदी की पौध रोपकर
वे मना रहे हैं 'महोत्सव'

अंधी माँ के लँगड़े भविष्य का
स्वप्न सँजोकर
कुछ चालाक सुराजिए बताते हैं—
'हिंदी हमारी माँ के समान है,
इसका सम्मान करना चाहिए'
उनका खयाल है कि
हिंदी में सामाजिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की
अभिव्यक्ति की पूरी क्षमता है।

मगर आजादी के सत्तर साल बाद भी
वह अपने ही घर में उपेक्षित है,
अंग्रेजी रानी के सामने उसे
दासी की तरह देखा जाता है,
समुचित सम्मान दिलाने के वास्ते
कितनी नीतियाँ बनी-बिगड़ीं
बदलीं, नारे गूँजे—'यह राष्ट्रीय एकता का
सबसे मजबूत सूत्र है।'

परंतु सब बेकार
संसद् के गलियारे में बैठे मुखौटे
बड़ी हेकड़ी से यकीन दिलाते हैं
थोड़ा और करो इंतजार···
अचानक भीड़ में से एक तमतमाता चेहरा
खनककर जमीन पर गिर पड़ा।
मैं हूँ 'राष्ट्रभाषा'
ऐ राष्ट्रवादियो! नहीं मिला मुझे
अपने ही संविधान में कोई स्थान
न कोई नाम, न पहचान,
रोज होती है हमारी हत्या
अपनी ही बोली-भाषा के लोग
हमारी अस्मिता से करते हैं खिलवाड़
चिढ़ाते हैं काले पट्ट पर लिखकर 'अ'
दिखाते हैं बैलमुत्ती की तरह दुर्गंधी
बाँहों को उठाकर—अँगूठा···

कुछ भाषाविद् तोंदियल आचार्य
व्याकरण से हाथ मिलाकर
वर्तनी का मतलब समझाते हैं
और सिखाते हैं दिन के उजालों में
सहवास का ढंग।

भइ देखे पके बालवाले
पिचके गालवाले
धँसी-धँसी आँखोंवाले
कितने हैं ब-द-रं-ग

देश में चोरी, हत्या, आतंक,
आगजनी के लिए
कितने कानून बने, मगर
मेरा मजाक बनानेवालों के खिलाफ
एक भी काररवाई नहीं
छिह-छिह! धिक्!

कुछ कलाबाज सौदागर
रंगीन बालू से भरे कटोरे में
गुलदस्ते की तरह सजाकर
बाँट रहे हैं, मेरे जन्म दिवस (१४ सितंबर)
के बहाने अपनों को ताम्रपत्र
कहते हैं, हिंदी का शृंगार राष्ट्र का शृंगार है
यह हमारी शान है, संस्कृति का आधार है
अगर हम कला-संस्कृति-राजनीति में
एक रहना चाहते हैं तो अपनानी होगी हिंदी
यह है भारत माँ के माथे की बिंदी।
हिमालय से कन्याकुमारी तक
व्यवहार में आनेवाली भाषा है हिंदी
कोई नहीं देखता
हमारी वैज्ञानिक लिपि की खास खूबी
अंग्रेजी की खाल ओढ़े कुछ नौसिखिए
जिनके चेहरे काले हैं
जो अपने को पश्चिमी लिबास में ढाले हैं
वे भाषा की जगह भूख को रखकर
नापते हैं पेट का आयतन
जीभ के स्वाद से लगा रहे हैं
कार्यान्वयन का अंदाज
चिल्ला रहे हैं, तुम जरा करो गौर
हिंदी है अभी विकास की ओर
समर्थ शब्दों के लाले हैं
दरअसल वे नहीं जानते हिंदी का भाषा विज्ञान

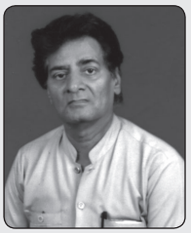

जाने-माने आलोचक-कवि। 'प्रजातंत्र, कहीं अंत नहीं', 'जंगल होता शहर', 'महानायक सुभाष', (कविता-संग्रह), 'युगांत' (प्रबंध काव्य) चर्चित; कई संपादित कृतियों के साथ-साथ दर्जन भर बाल-साहित्य और राजभाषा हिंदी से संबंधित पुस्तकें। हिंदी अकादेमी एवं अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्मान प्राप्त।

उन्हें नहीं है इसका लिपि ज्ञान
उन्होंने नहीं देखा है हिंदी बृहत्कोश
उनकी आँखों में जाले हैं!

ये भाषा नहीं, मुहावरे गढ़ते हैं
भाषा की तरक्की का तरकीब बताते हुए
वैश्वीकरण का मंत्र समझाते हैं—
मत करो इन पर यकीन
उत्तेजना में मत बहो
भाषाई एकीकरण के नाम पर जितने इश्तहार
फड़फड़ा रहे हैं, जिन पर मोटे हरफों में लिखा है—
'Language is a City
To the Building of Which
Every Human Being Brought a Stone'
तुम साफ पढ़ सकते हो
अंग्रेजी अतिथि की तरह रह रही है यहाँ
इसे हटाओ, इसे मिटाओ
अंग्रेजी के विरोध में
अब तक जितने भी आंदोलन हुए
एक और आवाज बुलंद करती है
'अंग्रेजी के रहते भारतीयों का
मानसिक विकास संभव नहीं'
(सेठ गोविंद दास)
कैसे यकीन दूँ—आज
भाषा पर चमगादड़ों का डेरा है
तुम अपना दर्द छिपाने के लिए
अपनी उँगलियाँ मत चबाओ
यहाँ चारों तरफ घोर अँधेरा है।

साहित्य कुटीर साइट-२/४४
विकास पुरी, नई दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ०९२८९४४०६४२

भारत को विकसित राष्ट्र बनाने में हिंदी का विज्ञान में प्रयोग अत्यावश्यक

• दुर्गादत्त ओझा

पूर्व प्रधानमंत्री श्रीयुत् अटल बिहारी वाजपेयी ने सही कहा था कि जब तक हिंदी विज्ञान, प्रौद्योगिकी और अनुसंधान की भाषा नहीं बनती, देश का विकास अधूरा ही रहेगा। क्योंकि आगामी सदी विज्ञान की होगी और देशवासियों में जब तक वैज्ञानिक चेतना का संचार नहीं होगा, पूर्वरूपेण शोध लाभ भी नहीं होगा।

विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन-जिन देशों ने अपनी-अपनी भाषा को देश के हर क्षेत्र में बढ़ावा दिया है, उन-उन देशों ने न केवल प्रगति की है, वरन् देशवासियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण व चेतना भी जाग्रत् की है। क्योंकि वैज्ञानिक शोध का परिणाम जब तक आम जन की भाषा में नहीं होगा, तब तक वैज्ञानिक प्रगति केवल संस्थान की चहारदीवारी और तकनीकी शोध पत्रिकाओं (जर्नल्स) में ही रहेगी। इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण इजराइल, फ्रांस, जापान, जर्मनी तथा चीन आदि देश हैं। हमसे एक वर्ष पश्चात् स्वतंत्र हुए देश इजराइल ने हिब्रु में सभी कार्य कर आज संपूर्ण विश्व को अपनी वैज्ञानिक प्रगति से चकित कर रखा है। अनेक देशों के प्रतिनिधि प्रतिवर्ष उनके द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों को सीखने वहाँ जाते रहते हैं। यही हाल जर्मनी, फ्रांस, जापान तथा चीन का है।

यद्यपि भारत एक महादेश है तथा सदियों से विश्व का विज्ञान के क्षेत्र में गुरु रहा है। भारतीयों के विज्ञान के क्षेत्र में दिए गए अक्षुण्ण योगदान से विश्व का वैज्ञानिक समुदाय भी कृतज्ञ है। हमारे देश के संविधान निर्माताओं तथा महात्मा गांधी एवं अन्यान्य विद्वानों ने बड़े ही गहन विचार-मंथन, विवेक पूर्ण निर्णय लेकर देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को राजभाषा का स्थान दिया। इसके पीछे अनेकानेक तथ्य हैं, यथा—देश की एकता, अखंडता को कायम रखने में इसकी सामयिकता, सहजता तथा इसका उद्‌भव संस्कृत भाषा से होने से समृद्ध व्याकरण, जैसा बोला जाता है, वैसा लिखा जाता है, देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता आदि ऐसे कारण हैं, जो अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं। आज विश्व स्तर पर भाषाविदों द्वारा किए गए भाषा विषयक शोध आँकड़े दरशाते हैं कि विश्व की सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा हमारी हिंदी बन चुकी है। चीन की मैंडरिन भाषा भी दूसरे स्थान पर है। परंतु भारत जैसे देश में अभी भी विज्ञान के क्षेत्र में इसका प्रयोग आशान्वित नहीं हैं। यद्यपि सरकार की तरफ से सुप्रयास किए जा रहे हैं।

पुरातन एवं अद्यतन विज्ञान विषयों पर हिंदी में ५० से अधिक कृतियाँ, सहस्राधिक विज्ञान आलेख एवं शताधिक शोध-पत्र प्रकाशित। डॉ. ओझा अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों एवं सम्मानोपाधियों से अलंकृत हैं।

क्या हमने कभी सोचा है कि हमें स्वतंत्र हुए ७० वर्ष हो रहे हैं, परंतु बावजूद इसके हमारी वैज्ञानिक प्रगति के और देश के अथक सुप्रयासों से हम भारतीयों के जीवन में विज्ञान के प्रति कितनी जागरूकता बढ़ी है। कितने अंधविश्वासों का उन्मूलन हुआ है। स्वास्थ्य और पर्यावरण के संरक्षण, प्रदूषणजन्य रोगों, व्यवसायजन्य व्याधियों आदि के बारे में हम कितने जागरूक हुए हैं? इसका आधारभूत कारण देशवासियों की बोली न समझी जानेवाली भाषा में विज्ञान साहित्य की कमी और विज्ञान का लोकप्रियकरण का आशान्वित नहीं होना है। स्वतंत्रता के पश्चात् इस दिशा में तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में देश में अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थानों की स्थापना हुई, वैज्ञानिकों को अभिप्रेरण भी मिला। इस दिशा में प्रो. दौलतसिंह कोठारी का सर्वेक्षण एवं संस्तुति भी मार्मिक रही कि भारत में देशवासियों को विज्ञान की शिक्षा प्रादेशिक अथवा हिंदी भाषा में दी जाती है तो विज्ञान चेतना जाग्रत् होने का प्रतिशत अधिकाधिक होगा। क्योंकि हमारी सोच हिंदी या प्रादेशिक भाषाओं में ही है, अंग्रेजी में तो हम केवल अनुवाद करके बोलते हैं। अत: अनुवाद की भाषा कभी हृदयंगम नहीं हो सकती।

विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए सरकारी और संस्थागत स्तर पर भी प्रयास किए जा रहे हैं। इसमें विज्ञान परिषद् प्रयाग, जो १९१३ में स्थापित संस्था है, ने बहुत योगदान दिया है, इसके अलावा सी.एस.आई.आर. की नियमित मासिक विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' एन.आर.डी.सी. की आविष्कार पत्रिका 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' आदि अनेक वर्षों से हिंदी के इस विज्ञान-यज्ञ में अपनी समिधाएँ

देकर आहुतियाँ दे रही हैं।

भारत सरकार का गृह मंत्रालय भी सतत प्रयासरत है। एक विशेष बात इस दिशा में यह रही कि हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री श्रीमान नरेंद्र मोदी ने हिंदी के उन्नयन में बहुत योगदान दिया है, जो प्रेरणास्पद है। वे न केवल स्वदेश, वरन् विदेशों में जाकर अपनी हिंदी भाषा का सम्मान कर इसके उपयोग को बढ़ावा दे रहे हैं। सितंबर २०१५ में भोपाल में आयोजित दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि पहली बार ऐसे विश्वस्तरीय सम्मेलन में तकनीकी एवं वैज्ञानिक क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को लेकर त्रिदिवसीय सत्र आयोजित हुए, जिसमें हमारे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय एवं जैव प्रौद्योगिकी विभाग के माननीय मंत्री डॉ. हर्षवर्द्धन ने निरंतर अपनी उपस्थिति देकर हिंदी में विज्ञानप्रेमियों, लेखकों का न केवल उत्साहवर्द्धन किया, वरन् यह स्वीकार किया कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने की नितांत आवश्यकता है।

अपनी भाषा के प्रति हीन मानसिकता की प्रवृत्ति हमारी सबसे बड़ी कमी है। हमारे वरेण्य वरिष्ठ वैज्ञानिक हिंदी में विज्ञान के विषयों को संभाषित करने-लिखने में हीन भावना महसूस करते हैं। अत: हमें अंग्रेजी के उच्च प्रासादों को छोड़कर भारत को विकासशील से विकसित राष्ट्र बनाने हेतु हिंदी के प्रति हीन भाषाई मानसिकता का त्याग कर इसे विज्ञान की भाषा बनाने में अपना योगदान देना होगा। वैज्ञानिकों को विज्ञान के हिंदी अथवा प्रादेशिक भाषाओं में लोकप्रिय बनाने हेतु प्रयास करने होंगे। अच्छे प्रकाशकों को भी सुधी पाठकों हेतु विद्वान् हिंदी-विज्ञान लेखकों की कृतियों का प्रकाशन करना होगा। सरकार द्वारा भी हिंदी में रचित विभिन्न विज्ञान विषयक साहित्य की विपुल खरीद करनी होगी तथा नवोदित लेखकों को प्रोत्साहन देना होगा। ऐसे सुप्रयासों से ही हम प्रधानमंत्री के 'मेक इन इंडिया', 'हेल्दी, हैप्पी एंड क्लीन इंडिया' के स्वप्न को साकार कर सकेंगे।

हिंदी को वर्षपर्यंत, माहपर्यंत, दिनपर्यंत की भाषा बनानी होगी तथा इसके प्रभावी प्रयोग के प्रयासों को मात्र सितंबर माह की औपचारिकता को छोड़ हृदय से अपने-अपने वैज्ञानिक क्षेत्र में अपनाना होगा। तभी हम भारत को एक विकसित राष्ट्र बना सकेंगे। इसे व्यष्टि रूप न देकर समष्टि रूप देने का संकल्प लेना होगा।

ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा
जोधपुर-३४२००१

कंटकों से परहेज क्या?

कविता

• संकटा प्रसाद मिश्र

कविता का गौरव 'निराला'

कविता के गौरव! हे सुमेरु!
'बादल का राग' तुमने ही पहचाना था
कोमलांगी जुही को अपनाया था
जागरण का अमर गीत गाया था
जागो, फिर एक बार।

राम की शक्ति को
पूजा की भक्ति दी
असत् पर सत् की विजय दी
निराशा पर आशा की
अनास्था पर आस्था की दीप्ति दी
तुम ही तो थे राम
रावणत्व पर रामत्व का शंखनाद।

प्राण फूँक दिए प्राणों में
झंझावातों में बढ़ते रहे, हटे नहीं
टूटे, पर झुके नहीं
हलाहल पीकर नीलकंठ हो गए
यही था तुम्हारा प्राणत्व
जीवन का अमर घोष।

कभी हार नहीं मानी जीवन में
आन-बान-शान पर मिट गए
जीवन से महान् है स्वाभिमान
यह था तुम्हारा मूलमंत्र अमर गान
बच्चों का तुमको शत-शत प्रणाम।

पंथ का मुसाफिर

पंथ पर चलना, मुसाफिर!
जीवन का मंत्र है, पाथेय है।
रुकें नहीं चरण तेरे,
चलते रहो-चलते रहो, सतत आगे बढ़ो
यही अमरत्व का मनुज को वरदान है।
ठिठक जाना मृत्यु है, अभिशाप है,
वेदों का, पुराणों का यही शंखनाद है
जीवंत जीवन का शाश्वत सिद्धांत है,
कंटकों से परहेज क्या,
शूलों की चुभन का आभास क्या,
शूर कर्मवीर की जाति क्या, धर्म क्या
माटी की चादर ओढ़े हुए मुसाफिर का नीड़ क्या
मंदिर क्या, मसजिद क्या, गुरुद्वारा क्या,
गिरजाघर क्या, सभी तीर्थ हैं, वंदनीय हैं।
उस मुसाफिर के लिए, मन ही देवता है,
जिसकी आरती उतारता संसार है।
शूल ही पथ के थका दें
कष्टकों की चुभन उसको सुला दे
कर्मवीर शूर नहीं
आँधियों में, बिजलियों में जो रहे अविचल,
नन्हे दीप सा जलता रहे
जब तक न आ जाए सूरज
वही जीता है, जो माँ के चरणों का लाल है
हर सिपाही इस देश का सिपहसालार है
झंझावातों से, आँधियों-तूफानों से
तब तक, जब तक रात्रि का संहार हो न जाए
यही जवान का संदेश बन जाए।

ए-२५२, सेक्टर-४७
नोएडा-२०१३०३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९७११२०३४२२

तिरानबे वर्ष निरंतर खिला एक गुलाब

● हरीश नवल

महाकवि गुलाब खंडेलवाल को पढ़ा था, उनके बारे में सुना था, परंतु तब तक देखा नहीं था, जब तक 'कल्पांत' के संस्थापक संपादक साहित्यिक श्री मुरारीलाल त्यागी ने उनसे मिलवाया नहीं था।

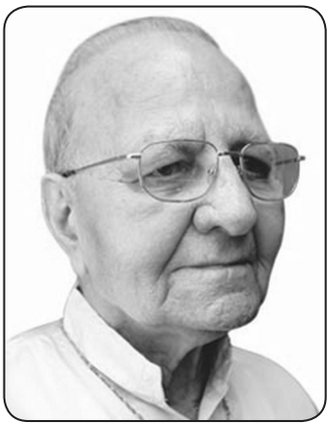

(२१ फरवरी, १९२४—२ जुलाई, २०१७)

त्यागीजी का आदेशात्मक अनुरोध आया कि 'शाम को छह बजे मेरे स्कूल में आ जाओ, किसी विभूति से मिलवाना है।' मैं और सुधा शाम को लॉरेंस रोड 'त्यागी पब्लिक स्कूल' पहुँच गए। बाहर लगे बैनर से ज्ञात हो गया कि श्री खंडेलवाल का अभिनंदन है। भीतर पहुँचे और जो सबके केंद्र में थे, समझ में आ गया कि यही वे विभूति हैं। जैसा नाम वैसा ही खिले गुलाब सा खिला चेहरा, गुलाबी-श्वेत वर्ण, वह भी दमकता हुआ, सुनहरी फ्रेम के चश्मे के नीचे से झाँकती सुंदर आँखें, जिन्हें 'क्वीन आईज' कहा जाता है, चेहरे पर तेज, एक भी झुर्री नहीं। आँखें भले ही रानी जैसी हों, पर श्री गुलाब खंडेलवाल लग रहे थे बिल्कुल राजा। बचपन में 'चंदामामा' पढ़ते हुए जो शंकर और चित्रा के बने चित्र होते थे, बिल्कुल वैसे ही लगे महाकवि।

मैंने उनके चरण-स्पर्श किए, उनके गुलाबी चरणों की ज्योति चप्पलों में से उभरकर आ रही थी। एक अति प्रभावी सुदर्शन व्यक्तित्व! जब उनसे बातचीत शुरू हुई, उनके सरल स्वभाव, विनम्रता, शालीनता और सबसे अधिक उनकी प्रतिभा ने अत्यंत प्रभावित किया। समारोह में उनके विषय में बहुत कुछ सुना, स्वयं गुलाबजी ने भी कुछ संस्मरण और तीन गीत सुनाए। समारोह की समाप्ति तक उनसे आत्मीय संबंध जुड़ गया, जिसमें एक बड़ा सहयोग मिला श्रीमती खंडेलवाल से, वे भी एकदम गुलाबानुरूप हैं। वैसा ही खिला हुआ गौर वर्ण, सुंदर नैन-नक्श और व्यक्तित्व में अति संभ्रांतता।

मैं और सुधा जब उस पहली मुलाकात के बाद घर की ओर लौटे, खंडेलवाल युगल की ही चर्चा करते हुए लौटे। तीसरे दिन ही श्री खंडेलवाल का फोन आया कि नोएडा में हम आमंत्रित हैं, उनके यहाँ कोई गोष्ठी है। जो तारीख उन्होंने बताई, उस दिन हम जा नहीं सकते थे। हम जा तो नहीं पाए, परंतु यह सुखद लगा कि हम उनकी सूची में आ गए हैं।

पहली मुलाकात में गुलाबजी ने अपनी कविताओं की दो पुस्तकें भेंट की थीं, अकसर मैं उन्हें खोलकर उनका आचमन कर आनंदित होता था। एक ओर उनका काव्य छायावाद की घनीभूत छाया से प्लावित था तो दूजी ओर खैयाम का गजब रंग भी दे रहा था। हिंदी और उर्दू दोनों ही भाषाओं पर महाकवि का अधिकार मुझे वशीभूत करता रहा।

दो महीने बाद ही पुनः श्री मुरारीलाल त्यागी का संदेश आया कि स्कूल में आओ, गुलाबजी का अभिनंदन है। मैं चौंक उठा, मैंने पूछा, ''त्यागीजी कितनी बार अभिनंदन करेंगे? अभी तो किया था, अवसर को कोई और नाम दे दीजिए।''

वे बोले, ''भई, अभिनंदन का अवसर ही है। तब गुलाबजी अमरीका से आए थे और अब अमरीका वापस जा रहे हैं। पहला स्वागताभिनंदन था, अब···

मैंने वाक्य पूरा कर दिया, ''समझ गया, अब विदात्मकाभिनंदन है।'' हम दोनों इस विदाई अवसर पर पहुँच गए। श्रीमती व श्री खंडेलवाल को पुनः देखकर बहुत अच्छा लगा। मौसम बदल चुका था, सर्दी का आगमन था, खंडेलवालजी ने बंद गले का हलके नीले रंग का कोट और पैंट पहना था तथा श्रीमती खंडेलवाल सूती धोती में। तब भी धज निराली थी, अब भी सजधज निराली थी।

समारोह आरंभ हुआ, त्यागीजी ने मंच थामा हुआ था, तभी एक अति सुदर्शन गौरांग प्रभु, यानी एक अंग्रेज ने प्रवेश किया। त्यागीजी तनिक रुके, अंग्रेज के अभिवादन का उत्तर हाथ के संकेत से दिया। अंग्रेज ने एक कुरसी सँभाल ली। सबकी नजरें उस हैंडसम पर टिक गई थीं। त्यागीजी ने भ्रम तोड़ते हुए उस अंग्रेज का परिचय देते हुए बताया कि ये गुलाब खंडेलवालजी के पुत्र हैं और ठेठ देसी पुत्र हैं, उन्हें अंग्रेज या अमरीकन न समझें, ये अपने माता-पिता के साथ अमरीका जा रहे हैं, हमने निवेदन किया तो यहाँ पधारे हैं।

वे सज्जन खड़े हो गए और उन्होंने शुद्ध हिंदी भाषा में अपना परिचय दिया व सबका अभिवादन किया।

गुलाबजी अमरीका के प्रांत ओहायो के खूबसूरत शहर मदाइना में रहते हैं, जिसे लोग 'मदीना' भी कहते हैं। दरअसल गुलाबजी के

वहाँ होने से वह शहर हिंदी साहित्यकारों और हिंदी-प्रेमियों के लिए मक्का-मदीना ही है।

समारोह समाप्ति के बाद उस दिन भी मैं और सुधा घर लौटते हुए सारे रास्ते, सरे राह खंडेलवाल दंपती और उनके पुत्र के विषय में ही बात करते रहे। गुलाबजी ने एक आश्चर्य और दिया था, आज उन्होंने अपनी लिखी दो अंग्रेजी कविताओं की बानगी स्वरूप एक पुस्तक दी थी, जिसमें उनकी अंग्रेजी की भी रचनाएँ थीं। घर जाकर जब पुस्तक पलटी, उसमें हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी के साथ बँगला में भी लिखी कविताएँ थीं। सभी भाषाओं पर समान अधिकार, हमारी नजरों में गुलाबजी का कद और अधिक ऊँचा हो गया था।

वक्त करवटें बदलते-बदलते गुजरता जा रहा था, कभी धीमे और कभी तेजी से। त्यागीजी के सौजन्य से उक्त समारोह के दो वर्ष बाद फिर एक 'महाकवि विषयक' आयोजन हुआ। इस बार यह आयोजन रोहिणी के एक बैंक्वट हॉल में था और मुझे त्यागीजी ने संचालक की भूमिका निर्वाह करने का आग्रह किया। संचालन करना हो और वह भी व्यक्तिपरक गोष्ठी का, तब तो उस व्यक्ति विशेष का पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व जाने बिना उचित व सार्थक संचालन नहीं हो पाता। अत: मैंने दायित्व समझते हुए गुलाबजी के विषय में खँगालना आरंभ किया। उनकी जो-जो पुस्तकें मिली थीं, आद्योपांत देखीं। खोजबीन की, उनपर की गई एक शोधपुस्तक भी मिल गई। कुछ वरिष्ठ साहित्यकारों से फोनादि चर्चाएँ कर उनके विषय में और जाना। त्यागीजी ने भी कई अन्य बातें गुलाबविषयक मुझे सौंपी।

गोष्ठी अत्यंत सफल रही। राजधानी तथा फरीदाबाद, मेरठ आदि के बहुत से रचनाकार, पत्रकार वहाँ उपस्थित थे। खंडेलवाल दंपती की जितनी प्रशंसा-अनुशंसा हो रही थी, मुझे कम लग रही थी, क्योंकि मैं तब तक जान चुका था कि गुलाब खंडेलवालजी एक अति विशिष्ट व्यक्तित्व हैं, जिनका लेखन प्रथम श्रेणी का है। जिनकी गजलों का साप्ताहिक स्तंभ 'आज' में छपता था, जिसे भाव से पढ़ा जाता था। वह हिंदी गजल की दुष्यंतपूर्व शुरुआत थी। स्वयं दुष्यंत कुमार ने कहा था कि उन्हें गजल लिखने की प्रेरणा श्री गुलाब खंडेलवाल की 'आज' में प्रकाशित होनवाली गजलों से भी मिली थी।

प्रचारित है कि हिंदी में सोनेट (चतुष्पदियाँ) सबसे पहले कवि त्रिलोचन ने लिखे, जबकि तथ्य यह है कि उनसे भी पहले सन् १९४१ से कवि खंडेलवाल सोनेट लिखना आरंभ कर चुके थे। कवि खंडेलवाल यों ही नहीं 'महाकवि' कहलाए। उन्होंने छायावादी शैली में कविता लिखना पंत और निराला के साथ ही शुरू कर दिया था। निरालाजी उनके प्रेरक थे और बेढब बनारसी उनके गुरु थे। रामकृष्ण दास भी उनकी प्रतिभा को पहचानते व उन्हें उत्साह देते थे।

यही नहीं, बनारस में पढ़नेवाले किशोर गुलाब का संपर्क जयशंकर प्रसाद से भी था। उनके आशीर्वाद के हाथ भी गुलाबजी पर रहते थे। रोहिणीवाली गोष्ठी चर्चित हुई। 'कल्पांत' ने उसपर केंद्रित अंक प्रकाशित किया। दिल्लीवासी महाकवि के और करीब होने लगे।

प्रख्यात व्यंग्यकार। अब तक छह व्यंग्य-संकलन, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें, नौ संपादित ग्रंथ और बावन ग्रंथों में सहयोगी रचनाकार के रूप में रचनाएँ तथा एक हजार से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बागपत के खरबूजे' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा तेरह राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक व्यंग्य अंग्रेजी, बल्गारियन, मराठी, उर्दू, बँगला, पंजाबी और गुजराती में भी अनूदित।

फिर एक लंबा समय गुजरा, गुलाब-मंचन उनके साहित्य के माध्यम से यदा-कदा होता रहा। वे अमरीका में ही ज्यादा समय रहने लगे थे। वहाँ भी उनका वर्चस्व बढ़ रहा था। हिंदीसेवी के रूप में भी उन्होंने उल्लेखनीय कार्य इस बीच किया। वे अमरीका की 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' के अध्यक्ष मनोनीत हुए, जिसकी शाखाएँ अमरीका के अनेक नगरों में हैं।

भारतभूमि पर उनसे मिलना उस रोहिणी गोष्ठी के बाद नहीं हुआ। अलबत्ता सन् २००८ और सन् २०१० में अमरीका में उनसे वेब कैमरा से मुलाकातें हुईं। मेरी बेटी-दामाद वर्जीनिया में रहते हैं। उनके यहाँ हमारा जाना साल-दो साल में एक बार हो ही जाता है। सन् २००८ में ओहायो में कोई कार्यक्रम था, गुलाबजी को हरि बिंदलजी से पता चला कि मैं अमरीका में हूँ, उन्होंने मुझे फोन करके आमंत्रण दिया। मैं बहुत आह्लादित था कि उनका फोन आया, परंतु दूरी और देर तथा अमरीकी डॉलर के तेवर की वजह से हम ओहायो नहीं जा सके।

सन् २०१० में जब हम फिर वर्जीनिया में थे। मैंने महाकवि को फोन किया। उनसे तथा श्रीमती खंडेलवालजी से घना व मधुर फोनालाप हुआ। उन्होंने जब मेरी बेटी आस्था का नाम सुना तो कहा, ''अरे, आस्था नवल? वह तो हिंदी समिति से जुड़ी हुई है, वह तो गोष्ठियों में कविताएँ पढ़ती है, बोलती भी अच्छा है।''

उस बार भी हम लोग ओहायो नहीं जा सके थे, मजबूरियाँ लगभग वही पूर्ववत् थीं। सन् २०१२ में मैं सेवानिवृत्त हुआ और मेरे चार माह बाद सुधा। प्रोविडेंट फंड का खजाना हमारे लिए खुल गया था। हमने जुलाई में अमरीका जाने से पहले ही निश्चय कर लिया था कि इस बार हम बहुत से साहित्यकारों के घर जाएँगे, भले ही वे टैक्सास, न्यूजर्सी या ओहायो में रहते हों, हवाई यात्रा करने से हर दूरी कम हो जाएगी, पर सबसे पहले जाएँगे श्री खंडेलवाल के घर।

ऐसा ही हुआ, हम अमरीका में तीन माह रहे और सितंबर के सुहावने मौसम में ओहायो की ओर रवाना हुए। एयरपोर्ट पर गुलाबजी ने किसी को हमें लिवा लाने के लिए भेज दिया था। ओहायो में पहला रुकाव हुआ अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति की वर्तमान अध्यक्ष श्रीमती सुशीला मोहनका के घर, जहाँ समिति की ढेरों फाइलों से वे जूझ रही थीं। सुशीलाजी हमें लेकर पहुँचीं अपने समधी गुलाब खंडेलवालजी की विशाल छोटे महल जैसी कोठी में। कोठी के चारों ओर वृक्ष ही

वृक्ष देखकर मन उमंग से भर गया। सफर की थकान का हरण प्रकृति ने कर दिया। सुरम्य वातावरण देखकर बरबस मुझे महादेवी वर्माजी का घर-परिवेश याद आने लगा।

कोठी के भीतर जाने के लिए विशालकाय द्वार से गुजरना हुआ। एक विशाल अंग्रेजीदां बैठक, एक खुली, बृहत् अल्ट्रामॉडर्न रसोई, रसोई के आगे बहुत खुला डाइनिंग स्थल, जहाँ डाइनिंग टेबल के आगे हमें प्रस्तुत कर सुशीलाजी ने कहा था, ''लीजिए, खातिर करें अपने दिल्ली के मेहमानों की।''

परिचारिका शरबत ले आई। श्रीमती खंडेलवाल छड़ी के सहारे दाखिल हुईं, पीछे-पीछे मुसकान बिखेरते हुए गुलाबजी प्रकट हुए। वंदन शृंखला आरंभ हुई। भवन में सबसे आकर्षक लगा, 'सन रूम' यानी 'सूर्य कक्ष'। शीशे की दीवारों से युक्त खुला एक कक्ष, जहाँ छत पर शीशा लगा था, जहाँ से भगवान् भास्कर अपनी रश्मियों को नीचे बैठनेवालों तक भेजते हैं। एक बड़ा फोटो लगा था सन रूम में, जिसमें हिंदी जगत् के छायावादी युग के बड़े-बड़े सितारे थे, जिनमें गुलाबजी भी खिल रहे थे।

खंडेलवाल दंपती ने हमें पुत्र व बहूवत् रखा। हम दो रात, तीन दिन उनके आश्रम में रुके। ऊपर का एक शयनकक्ष हमें सौंप दिया गया। खंडेलवालजी के दो पुत्र वहीं उनके साथ ही सपरिवार रहते हैं। खूब रौनक है उस घर में। हिंदुस्तान से दूर एक 'मिनी हिंदुस्तान' गुलाबजी ने बना दिया है।

बेसमेंट में हिंदी संगोष्ठियाँ आयोजित होती हैं। समस्त प्रबंध है खान-पान, फर्नीचर आदि का। बेसमेंट में दो-ढाई सौ लोगों के बैठने की व्यवस्था है। बेसमेंट का एक बाहरी मनोहारी रास्ता भी है, जहाँ से प्राकृतिक सौंदर्य और भी अधिक घनीभूत हो उठता है।

हम तेरह सितंबर को पहुँचे थे। अगले दिन ओहायो की अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति ने हिंदी दिवस का भव्य कार्यक्रम आयोजित किया हुआ था। वहीं ज्ञात हुआ था कि गुलाब खंडेलवालजी के नाम से अमरीकी सरकार ने अमरीका में 'एक दिन' घोषित किया था।

हिंदी दिवस का कार्यक्रम एक बड़ा व्यापक कार्यक्रम था। श्री गुलाब खंडेलवाल के सान्निध्य में हम विशिष्ट अतिथि हो गए थे। यह कार्यक्रम घर पर न आयोजित कर एक बड़े सभा-स्थल में किया गया था, जहाँ दूर-दूर से भारतीय हिंदीप्रेमी बड़ी संख्या में पधारे थे। खंडेलवालजी की कविताओं की भारी माँग हुई। सभी ने जी भरकर उनकी कविताएँ सुनीं, तब भी मन न भरा था।

मन तो भरता ही नहीं था। खंडेलवालजी के अध्ययन कक्ष में सुधा का मन बहुत लगा। ढेरों किताबों के बीच गुलाबजी का पलंग, छोटी कुरसी, बड़ी कुरसी और आरामकुरसी तथा साथ में दो मिनी और एक तनिक बड़ी टेबल पर पत्र-पत्रिकाओं की भीड़। वहाँ उनके मध्य कहीं भी खंडेलवालजी लिखते-पढ़ते दिखते। हम दोनों कई घंटे उनके साथ इस कक्ष में बैठे उनसे बतियाते रहे, उनके दुर्लभ संस्मरण सुनते रहे। हमने सच में वहाँ महाकवि गुलाब खंडेलवाल को सही में जीया।

मन तो भरता ही नहीं था। खंडेलवालजी के अध्ययन कक्ष में सुधा का मन बहुत लगा। ढेरों किताबों के बीच गुलाबजी का पलंग, छोटी कुरसी, बड़ी कुरसी और आरामकुरसी तथा साथ में दो मिनी और एक तनिक बड़ी टेबल पर पत्र-पत्रिकाओं की भीड़। वहाँ उनके मध्य कहीं भी खंडेलवालजी लिखते-पढ़ते दिखते। हम दोनों कई घंटे उनके साथ इस कक्ष में बैठे उनसे बतियाते रहे, उनके दुर्लभ संस्मरण सुनते रहे। हमने सच में वहाँ महाकवि गुलाब खंडेलवाल को सही में जीया।

हमने देखा, सात खंडों में गुलाब ग्रंथावली, जिसका संपादन गत युग के महान् श्री नारायण चतुर्वेदी और डॉ. विश्वनाथ सिंह ने किया। हमें पता चला कि बेढब बनारसी को गुलाबजी 'मास्टर साहब' कहा करते थे। बेढबजी का बहुत सम्मान था। बकौल गुलाबजी 'प्रेमचंद जो लिखते थे, बेढबजी को दिखाकर लिखते थे। बेढबजी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद और सीताराम चतुर्वेदी बनारस में सुबह के समय बेनिया पार्क में घूमते थे, सब आस-पास रहते थे। गुलाबजी भी कई बार सबके दर्शन करने के लिए वहाँ पहुँच जाया करते थे।

और भी खूब-खूब बातें गुलाबजी से हमारे उस अल्पकालीन प्रवास में हुई थीं। गुलाबजी हमें घुमाने के लिए स्वयं पुत्र को लेकर गाड़ी में गए। सागर तीरे, मॉल किनारे, बीच बाजार सभी जगह साथ गए और बड़ी उमंग व उत्कंठा से लेकर गए।

उनके साथ हमने 'आमिश संसार' भी देखा। गुलाबजी ने बताया था कि 'आमिश' लोग अमरीकी सरकार का पानी, उनकी बिजली आदि किसी सुविधा का इस्तेमाल नहीं करते। फोन, मोबाइल, टी.वी. कुछ नहीं प्रयोग करते, सादा जीवन बिताते हैं। गाँव के खुले वातावरण में रहते हैं। कोई टैक्स नहीं देते हैं।

हम आमिश बस्ती में गए। गुलाबजी का उत्साह देखते बन रहा था। हमने ताँगे की सैर भी की, रेस्टोरेंट में खाया-पीया भी, बेहद आनंद किया। जिस दिन लौटना था, गुलाबजी सुबह से ही हमारे साथ बैठ गए, हमें खिलाते-पिलाते रहे और बतियाते रहे। हम भी मुग्ध भाव से उन्हें सुनते-गुनते रहे। हम विदा हुए, गुलाबजी और श्रीमती खंडेलवाल के चेहरों पर लगभग वही आलम था, जैसा मेरे और सुधा के चेहरों पर अपनी बेटियों अन्विता और आस्था की डोलियों को विदा करने पर था।

सादर नमन उस गुलाब को, आज वह गुलाब नहीं है, किंतु उसकी सुगंध मेरे मन-प्राण में बस रही है।

६५ साक्षरा अपार्टमेंट, ए-३
पश्चिम विहार
नई दिल्ली-११००६३

साहित्य के इवेंट मैनेजर

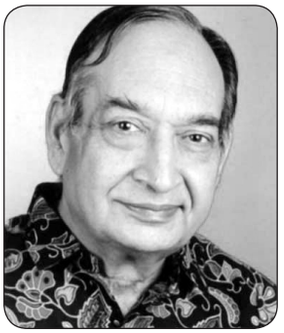

● गोपाल चतुर्वेदी

शहर के मुख्य बाजार में एक बड़ा बोर्ड लगा है, 'साहित्य प्रबंधन'। उसके नीचे अंकित है, 'प्रकाशन से विमोचन तक'। कोई भी देखे तो महज उत्सुकता के नाते आकृष्ट हो उस ओर। अभी तक हमने 'इवेंट मैनेजर' का नाम सुना है। इनका काम बच्चों के जन्मदिन से लेकर शादी तक के उत्सवों का आयोजन करवाना है। फार्म हाउस की पार्टी हो या संपन्न धनपति के बँगले के लॉन की। इनको फोन घुमाने के बाद साज-सज्जा से लेकर मैन्यू तक का प्रबंध इनका सिरदर्द है। दरअसल हमारे एक दूर के रिश्तेदार हैं। जैसे हमारी पारिवारिक परंपरा सरकारी बाबूगिरी की रही है, उनकी आयात-निर्यात की। कभी-कभार वह कृपा करते हैं छुट्टी के दिन दर्शन देने की। वह जब मर्सीडीज में पधारते हैं तो सरकारी कॉलोनी में अपनी हैसियत बढ़ जाती है। आस-पास के घरों में ताक-झाँक पड़ोसी धर्म का अनिवार्य अंग है। बगल के नन्हे जासूस पप्पू भेजे जाते हैं, हमारे लाड़ले लल्लू से मिलने के लिए।

वह गाड़ीवाले अंकल की विस्तृत खोज-खबर लेते हैं। ''यह अंकल तुम्हारे पापा के दोस्त हैं क्या?'' ऐसे प्रश्न के उत्तर में लल्लू कहाँ चूकनेवाले हैं, ''अरे यार! दोस्त-वोस्त नहीं, हमारे रिश्तेदार हैं। बर्थ-डे पर सबसे अच्छी गिफ्ट इन्हीं की आती है। देश में हों या विदेश में, हमारा जन्मदिन कभी भूलते नहीं हैं।''

आज की पीढ़ी समझदार है। उपयोगिता के आधार पर सच और झूठ के प्रयोग का फैसला करती है। उपयोगी झूठ से उसे कोई परहेज नहीं है। अगर पप्पू को प्रभावित करना है तो गिफ्ट आए न आए, वर्षगाँठ अंकल को याद हो न हो, कहने में क्या जाता है? बहरहाल, इतना जरूर है कि वह हमें विवाह आदि के पावन अवसर पर भूलते नहीं हैं। उन्हीं से पहली बार हमें 'इवेंट मैनेजर' की जानकारी मिली थी। हमने उनसे जिज्ञासा जताई थी कि व्यस्त जीवन में उन्हें कहाँ से समय मिलता होगा पार्टी, उत्सव आदि के आयोजन का? मुसकराकर उन्होंने बताया था कि सब पैसे का खेल है। हफ्ते में एक या दो पार्टी उनके धंधे की विवशता है। कोई विदेश से ग्राहक आया या किसी से यहाँ काम पड़ा तो कौन फाइव स्टार में जाए, ब्रिजवासन का फार्म हाउस तो है ही। बस 'उत्सव' को बताना ही तो है, सब इंतजाम हो जाता है। थोड़े महँगे जरूर हैं, पर अपने काम में माहिर हैं वह। हमें यही चाहिए भी।''

इस जानकारी से साहित्य के इवेंट मैनेजर के विषय में हमारी जिज्ञासा में और इजाफा हुआ। इसके प्रकाशन से विमोचन तक का क्या अर्थ है? क्या यह प्रकाशक भी हैं? क्या इनके दफ्तर में कोई सभागार है, जहाँ यह विमोचन करवाते हैं? कलम घिस्सू तो हम भी हैं। किसी पत्रिका में जाकर रचना ऐसी भूलभुलैया में फँसती है कि न छपती है, न लौटती है, पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा होने के बावजूद। अब तो हमें विश्वास हो चला है कि जो हश्र दफ्तर में किसी पत्र का होता है, वही मैगजीन के कार्यालय में रचना का। इस मामले में सरकार और संपादक में कोई अंतर नहीं है। सामान्य नागरिक का पत्र और अनजाने लेखक की रचना की नियति केवल कूड़ेदान है। उत्तर देना तो दूर, किसे फुरसत है कि उसे पढ़ने की जहमत उठाए? उत्तर देने का तो प्रश्न ही व्यर्थ है। समय के साथ संपादक भी बदले हैं। परिचितों या प्रसिद्ध लेखकों को ही छापते हैं, वह भी बिना पढ़े, सिर्फ नाम देखकर। प्रकाशन के अभाव में एक छपास का मारा लेखक संपादक के बारे में और सोच ही क्या सकता है?

एक दिन हम दफ्तर से तड़ी लगाकर साहित्य के इवेंट मैनेजर के कार्यालय में जा धमके। हमारे दफ्तर की तरह वहाँ बावर्दी सुरक्षाकर्मी तो तैनात नहीं थे, पर 'स्वागत कक्ष' समान था। हमारे मित्र इसे 'शासकीय अपमान कक्ष' कहते हैं। यहाँ ऐसा नहीं है। मेज के पीछे कुरसी पर एक सुंदर कन्या विराजमान है। उसके आस-पास कई फोन हैं। उसका चयन शायद सुंदरता के आधार पर ही हुआ है। उसने हमें देखकर यंत्रवत् मुसकान के साथ प्रश्न किया, ''किससे मिलना चाहते हैं ?'' हमने उत्तर दिया कि हमें साहित्य प्रबंधन के मालिक से मिलना है। आपने पहले से भेंट का समय लिया है? उसने सामने रखी एक सूची पर दृष्टि डालते जानना चाहा। दफ्तर के रिकॉर्ड रूम में रखी फाइल की जानकारी का सवाल होता तो हम शर्तिया अपना अज्ञान या ज्ञान प्रगट कर सकते थे, पर यहाँ 'नहीं' के अलावा कोई विकल्प नहीं था। तब तो 'सर' से भेंट संभव नहीं है। आज यों भी वह कुछ 'मीटिंग्स' में ज्यादा व्यस्त हैं, उसने सूचित किया। 'मिलने का समय कैसे तय करें?' हमने जानना चाहा। उत्तर में उसने हमारे मालिक के वैयक्तिक सहायक से बात करवा दी।

'आप शर्मा सर को पहले से जानते हैं?' उसने छूटते ही पूछा। एक बारगी तो हमारा मन हुआ कि उसे स्पष्ट रूप से बता दें कि उसके शर्मा सर न प्रांत के मुख्यमंत्री हैं, न देश के प्रधानमंत्री कि सामान्य ज्ञान

के समान सब उनके नाम से परिचित हों। उसका आशय व्यक्तिगत परिचय था। हमने उससे कतई इनकार किया। इसके पश्चात् उसने मिलने का उद्देश्य पूछा। हमने परिचय का अभाव होने पर भी 'निजी काम' बताया। निजी काम एक ऐसा व्यापक और रहस्यमय शब्द है, जिसमें शर्माजी की कुंडली बाँचने से लेकर, उनके यहाँ नौकरी की अरजी देने तक सब शामिल है। फोन पर सन्नाटा छा गया। फिर उसने अगले हफ्ते की दस तारीख को तीन बजे दस मिनट का समय देने का प्रस्ताव किया। हालाँकि अपनी लंबी कविता सुनाने को दस मिनट कतई अपर्याप्त थे, पर अपने पास कोई चारा भी न था। हमारे साहब भी ऐसे ही कुछ तो करने में व्यस्त रहते हैं। कोई दोस्त या बैच मैट से भेंट को उनका निजी सचिव शासकीय मीटिंग का भारी-भरकम नाम देता है। उनकी चहेती महिला कर्मी बैठी हो तो तब भी यह सरकारी रोमांस इसी श्रेणी में आता है। इस सबके पीछे या मूल में एक ही भावना है कि कैसे किसी 'बाहरी' को टाला जा सके या प्रभावित किया जाए। हमें लगा कि यह देश ऐसा सरकार निर्भर है कि जहाँ बहाने बनाने तक को निजी संस्थान भी सरकार का ही अनुकरण करते हैं। हर छोटे-बड़े संस्थान ने काम न करने को सचिवालय, ऐसा ही तंत्र विकसित कर लिया है।

फिर भी हम लौटते वक्त इसी शंका में घिरे रहे कि 'साहित्य प्रबंधन' को तो संभावित ग्राहकों से मेल-मुलाकात सुलभ होनी चाहिए वरना उनका गुजारा कैसे होगा, खर्चा कैसे चलेगा? फिर हमें खुद ही खयाल आया कि देश ऐसा छपास पीड़ित है कि लेखक सहर्ष प्रतीक्षा करने को प्रस्तुत हैं, विशेषकर कवि। हर मोहल्ले में कूड़े के ढेर हैं और उस पर भिनभिनाते मच्छर-मक्खी से कवि। हर कवि को भ्रम है कि वह कालिदास है। कविता को इन्होंने ऐसा कैक्टस बना दिया है, जिस में न छंद की उपस्थिति है, न विचारों के फूल। कैक्टस में काँटे हैं, जो दिखते हैं। इनकी कविता में लयहीनता के ऐसे काँटे हैं, जो काटने को दौड़ते हैं। हमें यकीन हो चला है कि ऐसों के रहते 'साहित्य प्रबंधन' को ग्राहकों का अभाव होने की गुंजाइश नहीं है।

समय की दिक्कत है। वह ठहरता नहीं है। हम नियत वक्त और निश्चित तारीख को शर्मा के 'साहित्य प्रबंधन' में जा टपके। इस बार काव्य-पुस्तक की पांडुलिपि हमारे ब्रीफकेस में थी। मिलनेवालों को इंतजार करवाने से बड़ों के अहं की तुष्टि होती है। शर्मा सर की हैसियत किसी किराने की दुकान से भले बेहतर न हो, पर अपने आकलन में वह कौन बिरला-टाटा से कम हैं? चार बजे इस साहित्यिक सौदागर के दर्शन की अपनी बारी आई। उन्होंने 'आइए' कहकर कुरसी की ओर इशारा किया और शब्दों की बचत करते बोले 'कहिए'। हमने उन्हें कविता की पांडुलिपि पेश की इस प्रार्थना के साथ कि 'इसे छपवाना है।' उन्होंने हमारी अभी तक की उपलब्धि के न पन्ने पलटे, न पढ़ के परखा बस दोनों हाथों में लेकर जैसे उसे तौला और बोले, ''चालीस हजार रुपए लगेंगे, पुस्तक प्रकाशन के और फ्लैप पर तीन-चार स्थापित कवियों द्वारा आपकी प्रशंसा के।'' जैसे सब्जीवाले से करते हैं, हमने उनसे मोल-भाव भी किया पर अपने चालीसे से वह टस-से-मस न हुए, ''देखिए हमारी एक रेट है।'' इतना कहकर उन्होंने दराज खोलकर एक रेट कार्ड हमारी ओर बढ़ा दिया। फिर पांडुलिपि लौटाते हमें प्रकाशन की प्रक्रिया से परिचित कराया, ''जल्दी से जल्दी, आप हमारे लेखा कक्ष में बीस हजार जमा करवा दीजिए और रसीद के साथ पांडुलिपि प्रकाशन विभाग के शर्माजी को सौंप दीजिए। तीन माह में आपकी पुस्तक, चित्र व परिचय के साथ प्रकाशित हो जाएगी। जब आप शेष बीस हजार जमा करवाएँगे तो हम आपको 'काव्य-कुसुम' की पचास प्रतियाँ निजी उपयोग के लिए भेंट करेंगे। उत्तम छपाई और कागज के कारण एक प्रति की कीमत चार सौ रुपए रखी जाएगी।''

इतना कहकर उन्होंने फोन का बजर दबाकर व्यक्तिगत सहायक से 'नेक्स्ट' का आदेश दिया। 'अपनी इज्जत अपने हाथ' का सोचते हम चुपचाप बाहर निकल आए। हमें प्रकाशन की दर कुछ ज्यादा लगी, पर उसके साथ बड़े कवियों की सम्मति भी जुड़ी है। हमें इसके लिए खासी भाग-दौड़ करनी पड़ेगी। यहाँ सारा मामला 'सैट' है। शर्मा सर का क्या भरोसा? उनको भी कुछ देते-दिवाते हों। घर बैठे, अनर्गल प्रशंसा की पंक्तियाँ लिखने में उनका क्या जाता है? कोई आलोचना करेगा तो उनके पास 'नए कवियों' के प्रोत्साहन का प्रतिरोधी अस्त्र है।

दिल्ली की बस में सवारी आदमी को जीवन के हर छोटे-बड़े संकट से जूझने का लाभप्रद प्रशिक्षण है। जो बैठा है, वह निरपेक्ष भाव से नए प्रवेशार्थियों की धक्का-मुक्की का आनंद लेता है। कल वह भी इस अनुभव से गुजर चुका है। हमें याद है। हमें एक बार पीछे से किसी ने यों ठेला कि हमारा हाथ सामने खड़े एक सज्जन के सिर पर जा लगा। उनकी बालों की टोपी, जिसे 'विग' भी कहते हैं, खिंची चली आई उन्हें बस के मनोरंजन का शिकार बनाकर।

हमारी इच्छा तो बहुत थी, पर इस आपा-धापी में शर्माजी की रेट लिस्ट हम देख न पाए। बस धीरे-धीरे रेंग रही है, हमारे मन में उत्कंठा है, सूची देखने की। जिंदगी मजबूरियों का सिलसिला है। कुछ बड़ी, कुछ छोटी है। पुस्तक प्रकाशन के लिए बीस हजार क्या बुरे हैं? बीस हजार तो दफ्तर में बिल पास हुआ या नहीं, जैसी सूचना के बदले प्रति पुस्तक चार सौ की वसूली से ही उगाहे जा सकते हैं। पहले यह नेक विचार क्यों नहीं आया? कौन कहे, शर्मा सर अधिक किताब देने की इनायत कर देते? फिर भी अभी हमारे शर्मा से सौदे की कोशिश मुमकिन है। इन्हीं स्वार्थी खयालों से जूझते हम अपने बस स्टैंड तक आ लगे। हमने जेब टटोली, पर्स और साहित्य प्रबंधन की सूची मौजूद है कि नहीं? किसी भी दिल्ली ऐसे महानगर में बस की भीड़ भरी यात्रा सही-सलामत संपन्न करके मन में संतोष का वही भाव उभरता है, जो कि पत्थरबाजों की भीड़ से सुरक्षित लौटकर सैनिक या अर्धसैनिक बल के जवान के मन में जगता होगा।

हम घर पहुँचकर पत्नी की प्रतीक्षा करने लगे। लल्लू स्कूल से आकर क्रिकेट के अभ्यास में जुटे हैं। जिस दिन किसी न किसी पड़ोसी या मोहल्लेवाले के घर का काँच नहीं टूटता है, क्रिकेट का अभ्यास अधूरा रहता है। भविष्य के सहवाग या धोनी बनने के लिए बॉल का एक

निश्चित ऊँचाई तथा दूरी पर जाना आवश्यक है। अब जहाँ घरों के बीच की पंद्रह फीट चौड़ी सड़क पर प्रैक्टिस होगी तो वहाँ तोड़-फोड़ का कुछ खतरा तो होना ही होना। यों माता-पिता भी आशान्वित हैं। नौकरी के ऐसे ही लाले पड़े हैं, क्रिकेट से ही भविष्य बने! पत्नी के कार्यालय से लौटने तक महिलाओं की सुरक्षा का संशय मन को घेरे रहता है। जब वह सेफ लौट आईं और बिना किसी टूटे काँच की शिकायत के लल्लू भी, तो हमने पूरी आश्वस्ति और मनोयोग से साहित्य प्रबंधन की सूची का अध्ययन किया। उसमें पाँच शीर्षकों के अंतर्गत विभिन्न आयोजनों का खर्चा दिया गया है। यह निम्नलिखित है—

विषय	**स्थान**	**विद्वानों की उपस्थिति**	**संभावित दर**	**टिप्पणी**
पुस्तक परिचर्चा	इंडिया इंटरनेशनल सेंटर	राष्ट्रीय स्तर के	रुपए पचास हजार	सिर्फ साहित्य प्रबंधन के माध्यम से छपी पुस्तकें इसकी पात्र
किसी भी मुद्दे पर गोष्ठी	इंडिया इंटरनेशनल सेंटर	राष्ट्रीय स्तर के	पचहत्तर हजार	हर संस्था का स्वागत है
किसी भी मुद्दे पर	अन्य किसी स्थान पर	एक दो के अलावा स्थानीय विद्वान्	चालीस हजार	हर संस्था का स्वागत है
पुस्तक विमोचन	इंडियन इंटरनेशनल सेंटर	राष्ट्रीय स्तर के	पचास हजार	किसी भी पुस्तक का
पुस्तक	अन्य किसी स्थान पर	दो राष्ट्रीय स्तर के	चालीस हजार	किसी भी पुस्तक का विमोचन

गारंटी : यह हमारा दायित्व है कि हर कार्यक्रम में हॉल भरा होगा।

इन मुख्य मदों के अतिरिक्त पत्रिकाओं आदि में प्रकाशन की सुविधा भी साहित्य प्रबंधन के कार्यों में सम्मिलित है। कविता, कहानी, उपन्यास आदि की रेट दी गई है। इसमें कविता के राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका में प्रकाशन की दर एक हजार है और स्थानीय मैगजीन अखबार आदि में तीन सौ से लेकर के पाँच सौ रुपए तक। इससे हम हड़के भी और हतोत्साहित भी हुए।

पूरी शाम हम 'साहित्य प्रबंधन' का ही सोचते इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि साहित्य प्रबंधन का धंधा खूब फल-फूल रहा है। इसके चलते साहित्य का भविष्य भले ही भगवान् भरोसे हो!

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४४८४३८

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

व्यंग्य

सट्टा एक स्प्रिच्युअल गेम

● दिनेश बैस

सट्टा किंगजी से भेंट हो गई। हमने चिंता व्यक्त की—सबके अच्छे दिन आ गए हैं, लेकिन आपके तो बड़े खराब दिन चल रहे लगते हैं।

'क्या कहना चाहते हैं,' वे चौंके, 'हमारे दिन कैसे खराब चल रहे हैं। हमारे दिन खराब होना क्या संभव है। यह कल्पना भी कैसे की जा सकती है।'

'आए दिन आपके सट्टा प्रतिष्ठानों पर छापे पड़ रहे हैं। आपके लोग पकड़े जा रहे हैं। आप उन्हें किसी प्रकार की सुरक्षा प्रदान नहीं कर पा रहे हैं। तमाम खेलों के प्रमोशनल प्रोग्राम होते हैं। क्रिकेट में तो गजब है। टीम के हारने से दु:खी होने लगो तो सुख प्रदान करने के लिए चीयर गर्ल्स की मादकता आ धमकती है। आपको कभी खुलकर खेलने का अवसर नहीं मिला। हमेशा रात के अँधेरे में ही लोगों का कौशल विकास करने के लिए अभिशप्त रहे आप। अब यह पकड़ा-धकड़ी। लगता है कि आपके खेल का प्रमोशन काल नहीं, डिमोशनल काल चल रहा है यह। ऐसे में दम नहीं तोड़ देगा यह अंतरराष्ट्रीय खेल?'

हो-हो-हो उन्हें हँसी का दौरा पड़ने लगा था—'आप लिखनेवाले बहुत इंप्रैक्टिकल लोग होते हैं। इन फैक्ट, आपको जो दिख रहा है, वह इस गेम का डिमोशन नहीं है। अपग्रेडेशन से पहले की प्रक्रिया है। जैसे हरयाने से पहले पतझड़ जरूरी होता है। शांति की अपील करने से पहले दंगा होना जरूरी होता है। राहत पहुँचाने से पहले आफत पैदा करने की अलिखित किंतु अपरिहार्य परंपरा रही है। बजट का हलुआ खाने की तरह। जिसमें बजट प्रस्तुत करनेवाले, बजट पेश करने से पहले हलुआ बनाते-खाते हैं। बजट झेलनेवाले हा-हा खाते हैं।' वे सिस्टम के सीक्रेट्स बता रहे थे।

'दरअसल यह रुटीन वर्क है। सतत चलनेवाली प्रक्रिया है। आपको ध्यान होगा कि जब हम छोटे हुआ करते थे, खेलते थे, खेलते समय कोई नया फेलो शामिल होना चाहता था, तो हम कहते थे कि नई घोड़ी चाल दिखाएगी।' वे बचपन में खो रहे थे। इसका मतलब होता था कि न्यू कमर की इंट्री पिदने से होगी। सेम सिस्टम सट्टे जैसे गेम में अडॉप्ट किया गया है—वे तुलनात्मक वर्णन कर रहे थे—नए लोग आते हैं तो नए सिरे से कॉन्टैक्ट्स रिन्यू होते हैं। नए-नए पैकेज इंट्रोड्यूज होते हैं। टर्म्स एंड कंडीशन्स रिव्यू किए जाते हैं। यथा योग्य संशोधन होते हैं उनमें। उनकी डिमांड क्या होती है। हमारी एक्स्पैक्टेबिलिटी कितनी होती है। यह सब नेगोसिएट किया जाता है। यह लैदी प्रॉसीजर होता है, सर। टाइम टेकिंग होता है। इस स्टेज तक आने के लिए कुछ छापे वगैरह जरूरी होते हैं। यू नो। वे सहमति माँग रहे थे, यह सब न हो तो जनता समझे ही नहीं कि सिस्टम ईमानदारी से काम नहीं कर रहा है। जनता प्रमाण माँगती है न। पब्लिक सैटिस्फैक्शन भी तो जरूरी होता है न, सर। जो इतने विश्वास के साथ लाए हैं, उन्हें दिखना भी तो चाहिए कि काम करनेवाले आए हैं।

'क्यों नहीं समझेंगे, सर। वे जानते हैं कि चुनाव लड़ने के लिए कॉरपोरेटर्स की तरह दिल खोलकर फंडिंग हम करते हैं। हमारी सेवाएँ उनके लिए कॉपोरेटर्स से अधिक होती हैं। कॉपोरेटर्स केवल वित्त प्रबंध करते हैं। कुछ सर्विस वगैरह दे देते हैं। हम मानवीय सेवाएँ भी उन्हें उपलब्ध कराते हैं। अपने सफल स्पोर्ट्स पर्सन्स को उनके लिए सौंप देते हैं। आज अनेक ऐसे हैं, जो हमारे स्पोर्ट-इंस्टीट्यूट से निकलकर गए हैं। यहाँ सफल थे। वहाँ और भी सफल हैं। उनके पक्ष में माहौल बनाते हैं। उनके नाम पर दाँव लगवाते हैं। नैचुरल है, सर। जो दाँव लगाएगा, वह उन्हें विजयश्री प्रदान करने के लिए आदमी और भगवान्, दोनों से प्रार्थना करेगा। कोई जान-बूझकर तो हारनेवाले घोड़े पर दाँव लगाएगा नहीं। संयुक्त अभियान का परिणाम होता है आनेवाले लोग। ऐसे परम सहयोगी को कौन इग्नोर कर देगा, सर। वह भी तब, जब बार-बार उन्हें हमारी सेवाओं की जरूरत पड़नी हो। हमारा पक्ष सुनना-समझना-मानना सहयोगी धर्म होता है, सर।' उनका आत्मविश्वास शेंपेन की बोतल से उफनते झाग की तरह धराशायी हो रहा था।

'आपको विश्वास है कि आपके व्यवसाय पर आँच नहीं आएगी। व्यवसाय पहले की तरह सुचारु ढंग से चलता रहेगा?' हमारी आशंका थी। उनका शेंपेन के झाग रूपी आत्मविश्वास हमारे छुद्र से विश्वास को हिचकोले दे रहा था। जैसे कभी बचपन में, बरसात से उफनती नाली में डाली गई कागज की नाव के हिचकोले दिल बैठाते रहते थे। आश्चर्य होता है कि आम आदमी का विश्वास कैसा चूहे सा होता है। तनिक प्रबल आत्मविश्वास सामने से गुजर जाए तो बिल की तरफ दौड़ लगा लेता है। लेकिन वे अक्षत् आत्मविश्वास के धनी थे।

'व्हाय नॉट सर।' वे आश्वस्त थे, 'विश्वास पर तो सरकार टिकी होती हैं, जिसका कोई भविष्य नहीं होता है। तनिक अविश्वास प्रस्ताव की खबर चल जाए तो बड़े-से-बड़े बहुमत का दावा करनेवाली सरकार का विश्वास स्खलित होने लगता है।' वे बता रहे थे तो हम तो यूनीवर्सल गेम के प्रायोजक हैं। विश्वास ही हमारा संबल है

दरअसल सर, वे सट्टे का दर्शन समझाने लगे—यह स्प्रिचुअल गेम है। आदमी को भाग्य पर भरोसा करना सिखाता है। वरना बहुत खराब समय आ गया है, सर। बहकानेवालों की कमी नहीं रही है। नास्तिक भी बढ़ रहे हैं। लोगों को समझाते हैं कि भाग्य क्या होता है। अपने कर्म पर विश्वास करो। वही तुझे विजय दिलाएँगे, वे बता रहे थे।

सा.अ.
३ गुरुद्वारा, नगरा
झाँसी-२८४००३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०८००४२७९५०३

खुशहालियों के बीच···

● सूर्यबाला

हलो वेणु!

हाँ-हाँ, पापा ही बोल रहा हूँ बेटा, वहाँ अमेरिका में तो इन दिनों कड़कड़ाती, बर्फीली ठंड पड़ रही होगी न! बचकर रहना। हम सबका मन लगा रहता है।···हाँ, यहाँ घर के फर्श का काम पूरा हो गया। एकदम पूरा कमरा चमचमा उठा है। वसु और वृंदा के कहने पर किनारे की दीवारों तक चार इंच की टाइलें लगवा दीं। उससे शो भी बढ़ गया, सहूलियत भी। अभी पॉलिशिंग चल रही है।

जैसा तुमसे कहा था, बाथरूम की फिटिंग्स आ गईं। टाइलें आनी बाकी हैं। जितना सोचा था, उससे ज्यादा टाइम और कहीं ज्यादा पैसे भी लग गए, लेकिन हमारी बैठक अब सचमुच वो क्या कहते हैं, ड्राइंगरूम बन गई है।

कल राठौर की मिसेस आई थीं तुम्हारी माँ के साथ। पूछ रही थीं, कुल कितना लगा एक कमरे का फर्श बदलवाने में! पिछली लेनवाले रस्तोगी साहब और मदनमोहनजी भी पूछ रहे थे।

और तो और, मेरे ऑफिस तक भी खबर पहुँच गई। बड़े बाबू और संजय सिंह तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहे थे। तुम्हारे यहाँ आने पर आए तो थे दोनों साथ-साथ। विशाखा के जाने के अगले दिन।

वसु कह रही थी काश! दादा को इस चमकीले फर्श पर सजे सोफे की फोटो भेज पाते, पर हमारे पास कैमरा नहीं है।

तुम कैसे हो, अपना पूरा खयाल रखना। इस बार मैंने ज्यादा समय ले लिया न फोन पर—क्या करूँ मन नहीं माना··· !

हलो वेणु!···

हाँ, हाँ, तुम्हारे भेजे डॉलर न! आ गए मेरे बैंक अकाउंट में, पाँच सौ डॉलर। इतने क्यों भेज दिए बेटे, तुम्हारी माँ मेरे ऊपर नाराज हो रही हैं कि जरूर मैंने दबाव डाला होगा, लेकिन मुझे तो नहीं याद पड़ता ऐसा। मैंने तो बढ़ी हुई मजदूरी और बाथरूम में लगे काम की बात की थी, जिसके लिए तुम्हीं ने सबसे ज्यादा जोर दिया था, बल्कि तुम तो चाहते थे, तुम्हारे रहते ही काम शुरू हो जाए।

लेकिन खैर, झूठ क्यों बोलूँ, तुम्हारे पैसे बहुत ठीक समय से आए, मैं काम खत्म करवाने ही वाला था कि कल अचानक क्वार्टर नंबर नौ वाले कासलीवालजी आ गए। चाय पीकर जाते हुए बोले, अंदर तो शुक्लाजी बहुत बढ़िया काम करवाया आपने, इसी के साथ बाहरी मुँड़ेरों के उखड़े पलास्टर भी दुरुस्त करवा लेना था। पचीसों हजार तो लगे ही होंगे। पाँच हजार और में घर की शोभा बढ़ जाती। तुम्हारी माँ और वसु-

हिंदी की जानी-मानी कथाकार तथा बहुचर्चित व्यंग्यकार। प्रमुख कृतियाँ हैं–'अग्निपंखी', 'यामिनी कथा', 'दीक्षांत' (उपन्यास), 'थाली भर चाँद', 'कात्यायनी संवाद' (कथा-संग्रह) तथा 'अजगर करे न चाकरी' व 'धृतराष्ट्र टाइम्स' (व्यंग्य)। बच्चों के लिए लिखा गया उपन्यास 'झगड़ा निपटारक दफ्तर' भी बहुत चर्चित हुआ। प्रियदर्शिनी पुरस्कार, घनश्याम दास सर्राफ पुरस्कार तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

वृंदा को भी उनकी बात ठीक लगी। सबसे बढ़कर सीमेंट की छोटी बोरी भी बची थी। सोचा था, दुकानवाले से वापस लेने के बारे में पूछूँगा, पर अब तो खैर उलटे दो बोरी और लग जाएँगी, मजदूर पहलेवाले हैं ही, काम समझ गए हैं···और बताओ, तुम कैसे हो?

हलो वेणु बेटा!···

···तुम विश्वास करोगे? वृंदा की, अपनी वृंदा की शादी···लगभग तय समझो···अरे आज सुबह ही देखकर गए हैं वे लोग, योंही बात चल रही थी···मैंने तो सोचा भी नहीं था कि इतनी हैसियतवाली पार्टी मान जाएगी। वृंदा को देखते ही पहली बार में हाँ कर दी। नहीं बेटा, सुभाष मामा की अंजु वृंदा से कम सुंदर थोड़ी है। हैसियत भी मुझसे ज्यादा ही है मामा की। लेकिन पिछले चार साल से परेशान हैं। हर हफ्ते, दस दिनों पर कोई-न-कोई पार्टी काजू, रसगुल्ले, कोल्ड ड्रिंक और कॉफी पीकर 'हम खुद आपको फोन करेंगे' का आश्वासन देकर चली जाती है। पहले इंतजार करो, फिर बेशर्म बनकर फोन करो तो वही टका सा जवाब। कहीं कुंडली में दोष, कहीं कोई और अड़चन बताकर टरका देंगे।

लेकिन ये लोग पूरा भरोसा दे गए हैं कि उनकी तरफ से बात पक्की।

विश्वास अभी भी नहीं हो रहा बेटे, लड़का निखिल, मुंसिफ, पिता मजिस्ट्रेट। खानदानी, इज्जतदार लोग। हमारी हैसियत उनके सामने कुछ भी नहीं। इन्हीं कासलीवालजी के कहने पर एक बार चला गया था उनके घर, बेहद मॉडर्न रुतबेदार लोग। साफ-सुथरा घर, नौकर-चाकर, बढ़िया काँच के गिलास-प्लेटें, मैं तो यह सोचकर लौटा था कि इस घर में अब लौटकर अपनी फजीहत नहीं करानी, कहाँ ये लोग, कहाँ हम! लेकिन किसमत देखो कि वे ही लोग आ गए और वृंदा को पसंद भी कर गए।

पिछले पूरे हफ्ते उनके आने की खबर के बाद से वसु-वृंदा और

तुम्हारी माँ पूरे घर की बजरी, मिट्टी, धूल साफ करते-करते थक के चूर हो गईं। तीन दिन में जल्दी-जल्दी बाहरी मुँड़ेरों पर हल्की हरी पुताई भी करवा दी। खैर, जब तक वे लोग आए, पूरा घर न सही, बाहरी मुँड़ेरें और ड्राइंगरूम एकदम लकदक था। वसु तो सबसे ज्यादा खुश इसलिए थी कि मजिस्ट्रेट साहब की मिसेस बाथरूम में भी गई थीं। खैर, अच्छा यह लगा कि इतने मॉडर्न, हैसियतदार होते हुए भी बातचीत में दिखावे या घमंड का नामनिशान नहीं, फिर भी देखो—कब कौन उनके कान भर दे, कितने लड़कीवाले उनके आगे-पीछे डोल रहे हैं, कहने की बात नहीं। और लड़केवालों का मूलाधार चक्र तो बस एक ही होता है, लड़की के पिता की हैसियत!

हलो वेणु!

कल वृंदा की गोदी की रसम कर गए बाजपेयी लोग। हम सभी लोग तुम्हें बहुत याद कर रहे थे। मैं उन्हें साइड टेबल पर रखी तुम्हारी फोटो दिखा रहा था तो वसु तुम्हारी पूरी अलबम ही उठा लाई।

दुकान पर पूछा तो अकेले निखिल का सूट ही 'ब्लू-बेरी' वाला सात हजार का। हम सबके होश उड़ गए। किसी तरह बहाना करके दुकान से बाहर निकल आए। मेरा तो दिमाग ही काम नहीं कर रहा, बेटे। बहुत मन को समझा-बुझाकर परसों गया था। किसी तरह अनुनय कर बात चलाई कि आपकी जो भी मंशा हो, सोचा हो, कैश, आइटम, लिखवा दें, जिससे बाद में आपको जरा भी शिकायत का मौका न मिले, तो फौरन उखड़ गए। तपाक से बोले, कैसी बातें करते हैं शुक्लाजी! हम-आप अब रिश्तेदार होने जा रहे हैं। एक-दूसरे के हितैषी। बीच में लेन-देन कहाँ से आ गया!

उनके जाने के बाद बड़ी शान से कह रही थी वृंदा से, हुँह, हैसियत चाहे जितनी हो वृंदा तेरे ससुरालवालों की, लेकिन उनके यहाँ से कोई अमेरिका वगैरह नहीं गया है। सारे इंतजाम में वसु थकी भी बहुत। हम लोग डर रहे थे कि कहीं पूरा घर ही न देखने लगें वे लोग। औरतों का क्या ठिकाना, क्योंकि नए पॉलिशवाले चमाचम फर्श के बाद बाकी कमरों के फर्श और ज्यादा भदरंग दिखने लगे हैं, लेकिन ईश्वर को धन्यवाद, कोई गया नहीं।

हलो वेणु!

हाँ-हाँ, सब ठीक है यहाँ। हाँ, बाजपेयीजी से भी बात होती रहती है। एक बात बता दूँ, बाजपेयीजी तुम्हारे नाम और काम से बहुत ज्यादा इंप्रेस्ड हैं। मेरा भी तो दिल नहीं मानता। मुँह से तुम्हारी बात निकल ही जाती है कि उतनी दूर से भी मेरा अकेला बेटा बहुत प्यार करता है अपनी बहनों और माँ-बाप को भी···तो समझ लो तुम्हारे नाम और काम की बहुत बड़ी मदद रहती है तुम्हारी गैर-हाजिरी में भी।

हलो वेणुऽऽऽ···

हाँ बेटा, मैं चाहता था खुलकर लेने-देने की बात हो जाती तो मुझे थोड़ा अंदाज हो जाता, शादी के खर्च वगैरह का। लेकिन वे तो इन बातों का जिक्र ही नहीं करते। लेकिन ऐसा लगता है कि बरात में बहुत लोग हो जाएँगे। खानदानी रईस लोग हैं। रिश्तेदार भी सब नामी-गिरामी। लगता है, मुझ पर और खासकर तुम पर ज्यादा ही विश्वास हो गया है उन्हें। हर बात इस बराबरी के लहजे में जैसे इतना तो हमारे बाएँ हाथ का खेल हो, अब अपने बजट की सीमा बताना उनका विश्वास तोड़ने जैसा लगता है—कैसे, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। कोई तेवरों में बात कर रहा हो, सीधे लेन-देन की तो हिसाब-किताब के लहजे में बात की जा सकती है। लेकिन अगर हर बात में जरूरत से ज्यादा शाइस्तगी जताते हुए इज्जत से बात करे तो अपनी तंगी की बात उठाते भी नहीं बनता। मैं कभी कुछ कहने की कोशिश भी करता हूँ तो उल्टे मुझे आश्वस्त करने लगते हैं कि 'अरे, आप बिल्कुल मत परेशान होइए। वेणुजी सब मैनेज कर लेंगे। आपने, जैसा अपनी फैमिली के बारे में बताया और बताया क्या, मैंने खुद अपने आँखों से देखा, उससे आपकी फैमिली-वैल्यूज और टेस्ट का पता चल जाता है। आप भी जानते हैं, मैं भी कि ज्यादा हमें चाहिए नहीं और कम आप देंगे नहीं, यानी कुछ उठा नहीं रखेंगे आप।'

हाँ, शादी ये लोग जल्दी ही करना चाहते थे। मैंने कहा, इतनी जल्दी तो वेणु को अमेरिका में छुट्टी नहीं मिल पाएगी तो झट मान गए, 'कि नहीं, वेणुजी के बिना कैसे होगा। हम इंतजार कर लेंगे, वेणुजी का दिसंबर तक।'

हलो वेणु!···

आज रात बिल्कुल नहीं सो पाया बेटे! पता नहीं क्यों बड़ी घबराहट हो रही है। बाजपेयीजी सीधे-सीधे तो अब भी कुछ माँग नहीं रहे हैं, लेकिन उनकी बातों से लगता है, मंसूबे बहुत ज्यादा हैं उनके। मुश्किल यही कि साफ-साफ कुछ कहते, बताते ही नहीं।

बरात में ही उनके हजार ऊपर लोग हो रहे हैं। दूसरे शहर से आ रही है फिर भी। और भी, न जाने किस-किस शहर के लोग अलग से शादी में शामिल होने आएँगे। सबको रिसीव करने के लिए कार, ड्राइवर की व्यवस्था। ठहराना भी होटल में ही पड़ेगा। इस एरिया में कोई ठीक-ठाक होटल होता तो भी सहूलियत होती। मुझे बहुत घबराहट हो रही है।

कुछ भी पूछने पर उसी इत्मीनान से कहेंगे, बस वेणुजी को जल्दी बुला लीजिए। वे सब सँभाल लेंगे। आप क्यों परेशान होते हैं। मेरे बहुत जिद करने पर कि वेणु के आने तक काम बहुत बढ़ जाएगा। तब तक मैं, वाइफ, बेटियाँ, थोड़ा-थोड़ा करते चलें। बोले, 'ठीक है तो वृंदा से कहिए निखिल के सूट का शेड पसंद कर ले।'

दुकान पर पूछा तो अकेले निखिल का सूट ही 'ब्लू-बेरी' वाला सात हजार का। हम सबके होश उड़ गए। किसी तरह बहाना करके दुकान से बाहर निकल आए। मेरा तो दिमाग ही काम नहीं कर रहा, बेटे। बहुत मन को समझा-बुझाकर परसों गया था। किसी तरह अनुनय कर बात चलाई कि आपकी जो भी मंशा हो, सोचा हो, कैश, आइटम,

लिखवा दें, जिससे बाद में आपको जरा भी शिकायत का मौका न मिले, तो फौरन उखड़ गए। तपाक से बोले, 'कैसी बातें करते हैं शुक्लाजी! हम-आप अब रिश्तेदार होने जा रहे हैं। एक-दूसरे के हितैषी। बीच में लेन-देन कहाँ से आ गया! हमें कोई खरीद-फरोख्त थोड़ी करनी। अरे, आप एजुकेटेड, समझदार लोग। खुद कोई कसर नहीं उठा रखेंगे। मुझे मालूम है, आप हमें कोई ऐसा मौका देंगे ही नहीं।'

और सबसे बढ़कर आपने तो एक बेटी की शादी भी की है। मुझसे कहीं ज्यादा अनुभवी···तो बताना तो आपका पड़ेगा मुझे, शादी के इंतजामात वगैरह के बारे में।

तुम कब तक आ रहे हो बेटे! मुझे तो कोई रास्ता ही नहीं सूझ रहा। तू आ जाए तो बाजपेयीजी से बात करने की जिम्मेदारी तेरी, बाकी की देखभाल मैं कर लूँगा।

नहीं, पैसे के लिए तो मैंने अपने फंड से भी आधे के लिए अप्लाई कर दिया है। डेढ़-पौने दो लाख हो जाएँगे, लेकिन ये लोग पहले से तय कर लेते तो अच्छा था।

अब मैं तुम्हें मना भी कैसे करूँ, हजार-हजार डॉलर दो बार तो तुम भेज चुके। नहीं, और भेजने की बिल्कुल जरूरत नहीं। बस तुम आ जाओ, मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा!

हलो वेणु!

हाँ पापा, नहीं, मैं मम्मी बोल रही हूँ बेटा। घर के नहीं, गली के नुक्कड़वाले फोन बूथ से।···इन दिनों तेरे पापा जिस तरह दिन-रात बदहवास हैं, मुझे तो बहुत डर लग रहा है कि कहीं शादी तक बीमार न पड़ जाएँ। मैं इनसे बार-बार कहती हूँ कि वे सुनें या न सुनें, अपनी सारी स्थिति उनके सामने सही-सही बता दो, लेकिन इनका कहना है, वे कुछ सुनते ही नहीं। अपनी ही बोले जाते हैं। पिछले डेढ़ महीने में जब से वृंदा की शादी तय हुई है, शरीर आधा रह गया है, न जाने कौन सी चिंता इन्हें खाए जा रही है। मुझे तो बड़ा डर लग रहा है बेटे। बार-बार सोचती हूँ, शादी-ब्याह अपनी हैसियतवालों के बीच ही होना ठीक रहता है। विशाखा की शादी में तो देवेंद्र के रिश्तेदारों ने जान-बूझकर दुश्मनी निकाली थी, लेकिन इन पैसेवालों की माया कुछ समझ में नहीं आ रही!

तेरे पापा बेहद परेशान हैं, बाजपेयीजी की शातिर चालों से। मुँह से कहेंगे कि उन्हें कुछ नहीं चाहिए, वेणु खुद ही समझदार हैं। वे नॉन-एसी गाड़ी खरीदेंगे ही नहीं। उन्हें खुद पता होगा कि मार्केट में कौन सा टी. वी. बेस्ट है, देखिए बात रुपए और पैसे की नहीं, आपके घर से जो भी चीजें यहाँ आएँगी, उससे मेरा नहीं, आपका स्टेटस बढ़ेगा।

हमेशा बातें तेरे पापा से करेंगे, लेकिन लक्ष्यवेध तू ही होता है, जैसे सीधे-सीधे तुझसे ही बातें कर रहे हों कि भई, शादी में दान-दहेज जैसे मोलभाव के तो मैं सख्त खिलाफ हूँ। मैंने तो निखिल से कहा, उसका भाई इतना खुद्दार है कि शादी के बाद की वृंदा की पहली 'राखी', नहीं तो भाई दूज तक 'एयर कंडीशंड गाडी' तुम्हारे दरवाजे पर खड़ी मिलेगी।

नहीं, तुझे अब कुछ भी भेजने की जरूरत नहीं है बेटे। वृंदा भी किसी तरह तैयार नहीं। तू अमेरिका नहीं गया होता तो क्या वृंदा की शादी नहीं होती? बस किसी तरह एक बार आने की कोशिश कर।

(शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास '···कौन देस को वासी' (वेणु की डायरी) का एक अंश।

बी-५०४, रुनवाल सेंटर
गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार, मुंबई-८८
दूरभाष : ०९९३०९६८६७०

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा **sahityaamrit@gmail.com** पर इ-मेल करें।

हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य : झींकना

• बिमल लाठ

जी हाँ, हम हमारे राष्ट्रीय कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। आप क्यों बाधा डाल रहे हैं? और बाधा डालकर ही आप क्या कर लेंगे? 'झींकना' को आप क्या केवल एक शब्द ही समझ बैठे हैं?

शब्द है तो उसका उपयोग भी होना चाहिए कि नहीं? बिना उपयोग तो किसी भी चीज में फँफूद लग जाती है कि नहीं?

(संदर्भ : एक पड़ोसन का हमारे घर गप्पें लगाने आना)

बहन, हमारे पास सबकुछ है भगवान् का दिया हुआ। हमें और चाहिए तो कोई भी क्या कर लेगा?

आज हम अपनी मोटर पर चढ़ते हैं, ड्राइवर है हमारे पास, पर पेट्रोल इतना महँगा क्यों है? पहले हम बस से आते-जाते थे, ऑटो पर चढ़ लेते थे, अब हमने भी इंस्टालमेंट देकर कार रख ली है।

बेटा दूसरी गाड़ी की जिद कर रहा है, ले आएगा दो-चार महीने में। आप तो जानती ही हैं कि पड़ोस के जिस घर में रहते हैं, काफी बड़ा है। उसका मकान मालिक हमें दूसरा गैरेज अलोट क्यों नहीं करता, क्या हम अपने घर का भाड़ा नहीं चुकाते? दूसरे गैरेज का लाखों माँगता है। यह भी कोई बात हुई? दूसरी मोटर रखना जैसे कोई गुनाह हो गया हो। दूसरे का सुख किसी से देखा ही नहीं जाता!

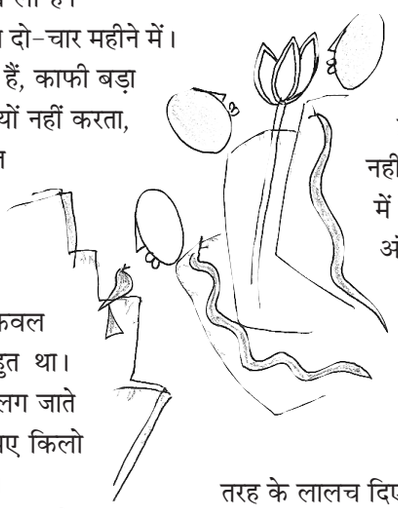

अब क्या बताएँ आपसे। पहले दूसरे गाँव हम केवल ट्रेन से आते-जाते थे, हवाई जहाज का भाड़ा बहुत था। बंबई-दिल्ली के ही एक तरफ के दस-बारह हजार लग जाते थे उस जमाने में, जब दाल का भाव कोई ५-७ रुपए किलो होता था। केवल इंडियन एयर लाइंस ही चलती थी।

इसलिए हमारे मर्द बताते हैं कि टिकट के लिए उनके ऑफिस जाना पड़ता था, टोकन लेकर बैठना पड़ता था, आधा दिन पूरा हो जाता था टिकट कटाने में। तब मर्द अकेले ही सफर कर लेते थे। जब बिजनेस का जरूरी काम होता था। कौन खरचे इतना पैसा परिवार के लिए? साथ जाते थे तो रेल से चले जाते थे। अब तो ये घर बैठे-बैठे पहले से जहाज का टिकट निकलवा लेते हैं, मरा पता नहीं किस-किस कंपनी का और हमारा परिवार भी साथ ही जाता है। ये महीनों पहले टिकट बनवा लेते हैं तो भाड़ा कम लगता है। लेकिन एक बात समझ में नहीं आती कि लगेज में ये केवल १५ किलो क्यों जाने देते हैं, जब केवल खाली सूटकेस का वजन ही पाँच-छह किलो हो जाता है? यह बड़ी जालिम बात है। आदमी की जरूरत ही नहीं समझते ये हवाई जहाजवाले, परदेस में दो-चार ढंग के कपड़े भी चाहिए होते हैं, दवा-दारू या कुछ इसी तरह की और चीजें। इनमें वजन होता है कि नहीं, कोई फूँक से तो नहीं बने होते ये सब! १५ किलो में क्या तो ले जाएँ और क्या छोड़ें? मरा क्या तो ओढ़े और क्या बिछाए? और क्या बताएँ बहन! एक बार इनके लिए डॉक्टर को बुलवाना पड़ा घर पर। मरा पहले तो आने को तैयार ही नहीं, बोला—यहाँ ले आओ मरीज को, मेरी क्लीनिक में दस पेशेंट बैठे हैं। अपनी बारी की वेट में।

मेरे देवर ने भी छोड़ा नहीं, बहुत मिन्नत की। सब तरह के लालच दिए, हाथ-पैर जोड़े, कहा—डॉक्टर साहब, भगवान् की कसम, मेरा भाई आने लायक हालत में नहीं है, आप नहीं आए तो पता नहीं क्या हो जाए। डॉक्टर देर रात को आया। इनके शरीर को इधर-उधर टीप-टाप के देखा, २-४ गोली लिख दी, एक मिक्स्चर। फीस के ८०० रुपए ले गया। बोलो बहन, पहले यही डॉक्टर बुलाने पर तुरंत आता था, घर-बर की मीठी-मीठी बात करता था, १०० रुपल्ली लेता था। अब किस तरह अपने मन को समझाएँ, जमाने को कोसें या अपने आप को?

हमने समझाने की कोशिश की—'बहनजी, हमारी माँ बतलाती थीं कि लोग जो इस शहर में भाड़े के घर में रहते थे, जब दो-तीन महीने के

साहित्य और रंगमंच से घनिष्ठ रूप से संबद्ध रचनाकार, अभिनेता, निर्देशक। नाटक, काव्य एवं अन्य देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशन। राष्ट्रीय कालिदास सम्मान एवं बी.एम. शाह सम्मान (रंगकर्म के लिए)। भारत एवं अन्य राज्यों के संस्कृति मंत्रालयों की अनेक समितियों में सलाहकार पुस्तकालयों से संबद्ध। कोलकाता की प्रमुख नाट्य संस्था 'अनामिका' के अध्यक्ष, उत्तर-पूर्व में विशेष सक्रियता।

लिए भी गाँव जाते थे तो घर छोड़ देते थे कि पीछे से भाड़ा चालू न रहे। आज क्या ऐसा कर सकते हैं? क्यों सालोसाल आज बंद करके रखते हैं। कमरे या फ्लैट? मकान-मालिक रकम-रकम के टैक्स चुकाता है, खाली जगह का भी। अब वह दूसरे गैरेज के पैसे आपसे चाहता है तो आप झींक रही हो। पहले जब प्लेन का भाड़ा बहुत ज्यादा था तो याद है आपने कभी सवारी भी की थी प्लेन की? अब जब बहुत कम भाड़े में आप सफर कर रही हो तो लगेज का १५ किलो आपको कम लग रहा है। ज्यादा ले जाना है तो ले जाओ, मना किसने किया है? खाली सूटकेस का ही ५-६ किलो हो जाता है तो पहले की तरह बाँधो पोटली में कपड़े या चुकाओ एक्स्ट्रा भाड़ा एयरलाइन को, जिसने आपको सस्ता टिकट दिया है। मान लो कि कोई एयरलाइन यह विज्ञापन करे कि हर तीन टिकट में एक टिकट मुफ्त में मिलेगा तो क्या गारंटी है कि आप नहीं कहोगी कि ये लोग दो टिकट मुफ्त में क्यों नहीं देते, घरवाला क्या अकेला ही जाएगा? रही डॉक्टर की बात। उनके भी बाल-बच्चे हैं, क्लीनिक का, मोटर का, स्टाफ का रोज-रोज का खर्चा है, उनको भी दाल-चावल उतने में ही मिलते हैं, जितने में आपको, इतने वर्षों की प्रैक्टिस में अनुभव हासिल किया है, लेकिन आपको उनको घर पर उसी १०० रुपल्ली में बुलाना है। झींकना हमारे मुल्क का स्वभाव हो गया है और आप अपवाद नहीं हो।'

पड़ोसन मुँह बिचकाकर चली गईं, उसे मेरे तर्क पसंद नहीं आए शायद या मेरे कहने का ढंग।

दि वुड्स, विस्टा जी-३०१
वाकड़, पुणे-४११०५७ (महाराष्ट्र)

बाबूजी का कुरता

लघुकथा

• सत्य शुचि

उस दिन बाबूजी की नाक तेजी से बहने लगी थी। सच्चाई का आलम यह है कि बाबूजी का कुरता नाक के बहते गाढ़े पानी से गंदा हो चला था और कुरते की जेब भी नाक की टपकी बूँदों से गंदी दिखलाई दे रही थी।

''आखिरकार, अपने बुढ़ापे के वास्ते तो उसे सँभालना ही होगा!'' दु:खी मन से एक निचोड़ उनके होंठों पर लहराया।

हठात् ही बाबूजी की नाक घर भर में दम किए हुए थी और कमरे से उठती दुर्गंध से अभी हर किसी की नाक फटी जा रही थी। प्रकटत: चहुँओर एक गुस्सा उफान पर था।

''बेटा! जब तू छोटा था, तेरे भी मेरी तरह कपड़े गंदे हो जाते थे। और तब उन कपड़ों को बेहिचक मैं ही धोता-साफ करता था।'' बाबूजी ने अतीत के पृष्ठों को खँगालना चाहा।

''लेकिन, आपवाला समय-जमाना अब लद चुका है, बाबूजी। आपकी यह गंदगी कौन धोएगा, साफ करेगा? यहाँ आपके लिए किसे फुरसत है।'' किंचित् तनाव से बेटे की नाक चढ़ी-की-चढ़ी नजर आई। ''बेटा! मैं ही खुद के कुरते को देख लूँगा, तुम मेरी-इसकी चिंता छोड़ो और मुझे अकेला छोड़ दो।'' उखड़े स्वर में बाबूजी ने युक्ति सुझाई।

झट से बाबूजी अकेले ही उठे। तुरंत बाल्टी में कुरते को भिगोया-धोया और तनी रस्सी पर सुखाकर वे अपनी धुन में कहीं खोए-खोए से थे। डगमगाते कदमों से पैरों को घसीटते चलते अचानक उन्हें लगा, कदाचित् बुढ़ापा आदमी के सत्रह किस्म के रोगों-चिंताओं का घर है। सो आगे से उनको पूरा-पूरा एहतियात बरतना होगा, ताकि पल-पल उनकी नाक अपने-परायों के बरक्स बची रहे।

और कुछ क्षणों में ही एक पुराना कुरता पहनकर बाबूजी एक हद तक अच्छा फील करते चले गए। मगर इस मरतबा बाबूजी सचेत से दो-तीन रुमाल कुरते की जेबों में ठूँसना न भूले थे।

पड़ोसी का प्रतिशत

उस शादी-समारोह में स्वादिष्ट व्यंजनों की झड़ी लग गई। खाने में वहाँ एक से बढ़कर एक चीजें उपलब्ध थीं। और वह भी खाने को देखकर-खाकर बहुत खुश हुआ था।

मगर कुछ समय में ही उसके घर में भी शादी की तैयारियाँ शुरू हो चली थीं और उसने दृढता के साथ सोचा था कि खाने के तईं किसी तरह की कमी नहीं छूटे!

इसी दौरान एक दिन खाने की लिस्ट बन जाने के बाद उसने हलवाई को बुलाया। तत्पश्चात् हलवाई से सलाह-मशविरा उसने करना चाहा।

''हाँ, साहब!'' हलवाई बोला। ''आपको खाने में कोई शिकायत नहीं आने दूँगा, जब आपके पड़ोसी ने मेरा नाम आपको सुझाया है तो थोड़ा मैं ज्यादा ही सीरियस-सतर्क हो गया हूँ।''

अब बगैर ढील-ढाल के तुरंत हलवाई से खाने की राशि तय हो चुकी थी। ''साहब, इतना तो बनता है, और फिर मुझे आपके पड़ोसी का भी खयाल रखना है।''

''अच्छा-अच्छा, ठीक है।'' हलवाई को तय खाना कर वह घर के आँगन में चहलकदमी करते हुए कहीं सोच में डूब गया, पल-दो-पल में उसकी चेतना कौंधी।

''...इसमें बुराई जैसी बात भी तो नहीं है। आज के टाइम में...अगर पड़ोसी की जगह मैं भी होता तो...!''

और रफ्ता-रफ्ता संयत सा शादी से संबंधित कार्यों में उसने अपनी दिलचस्पी केंद्रित कर ली।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१
दूरभाष : ०९४१३६८५८२०

कवि-गद्यकार अजित कुमार

● संदीप जायसवाल

अजित कुमार की छवि चर्चित कवि, लोकप्रिय अध्यापक और इन सबसे बढ़कर एक ऐसे मनुष्य की रही, जो हर किसी से मीठी आवाज में संवाद करता था। नई कविता के प्रमुख कवि अजित कुमार कवि होने के साथ-साथ वे एक विलक्षण गद्यकार, कुशल संपादक, आलोचक और अनुवादक भी थे। उनका लेखकीय व्यक्तित्व बहुआयामी है। उन्होंने साहित्य की लगभग हर विधा में लिखा और उसे सँवारा है।

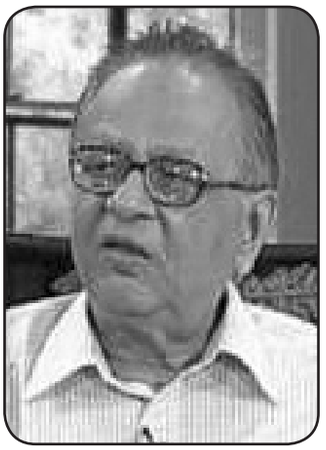

९ जून, १९३३ को लखनऊ में जनमे अजित कुमार को साहित्यिक परिवेश विरासत में मिला था। उनके पिता राजेंद्र शंकर चौधरी एक प्रकाशन गृह चलाते थे, जिसमें निरालाजी की कविताएँ भी छपी थीं। माँ सुमित्रा कुमारी सिन्हा हिंदी की प्रतिष्ठित कवयित्री रहीं तो बहन कीर्ति चौधरी तीसरा सप्तक की कवयित्री के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी पत्नी स्नेहमयी चौधरी भी हिंदी की प्रसिद्ध कवयित्री थीं। यह कितना दुखत है कि अजितजी के लगभग साथ-साथ ही वे भी स्मृतिशेष हो गईं। अजित कुमार ने अपने परिवार की साहित्यिक परंपरा का निर्वाह करते हुए साहित्य की अनवरत साधना की और अपनी एक नई पहचान बनाई। इन्होंने कानपुर, लखनऊ और बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। कुछ समय डी.ए.वी. कॉलेज कानपुर में अध्यापन किया। बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोड़ीमल कॉलेज में लंबे समय तक अध्यापन करते रहे और वहीं से सेवानिवृत्त हुए। अजितजी ने अध्यापन कार्य के साथ लेखन-कर्म भी निरंतर जारी रखा और अस्वस्थता के बावजूद अपनी रचनात्मकता को कभी बाधित नहीं होने दिया।

'अकेले कंठ की पुकार' (१९५८) उनका पहला काव्य-संग्रह है। उनके अन्य काव्य-संग्रह हैं—'अंकित होने दो' (१९६२), 'ये फूल नहीं' (१९७०), 'घरौंदा' (१९७८), 'हिरनी के लिए' (१९९३), 'घोंघे' (१९९६) और 'ऊसर' (२००१)। नई कविता की रूमानियत और अलंकरण की प्रवृत्ति से दूर अजित कुमार अपनी कविताओं में सादगी और खरेपन को तरजीह देते हैं। उनका कविता-कर्म आम जन के सरोकारों से गहराई से जुड़ा हुआ है। उसमें रोजमर्रा के जीवन के साथ मनुष्य के संघर्ष की अनुगूँज भी प्रतिबिंबित है। उनके लिए वह अभिव्यक्त के नए मुहावरे गढ़ते हैं। आधुनिक जीवन के तनाव-दबाव को उसके अंतर्विरोधों के साथ अभिव्यक्ति करते हैं। उनकी कविताएँ जीवन को जीने का भरपूर जज्बा लिये हुए हैं। ये कविताएँ एक आश्वस्ति है मनुष्यता के सुनहरे भविष्य के प्रति। कविता उनके लिए दिल बहलाने का साधन नहीं, जीवन को जीने का तरीका है। तभी वे कहते हैं—

कल मैंने कविता को लिखा नहीं
कल मैंने कविता को जिया। (कविताजी)

अजितजी की कविताओं में महानगरों की छीजती हुए संवेदना पर व्यंग्य है, गँवई जीवन की स्मृतियाँ हैं, बच्चों से लाड़-प्यार है, दांपत्य का निश्छल प्रेम है, आम आदमी की जीवन-यात्रा है। कुल मिलाकर एक बड़े फलक में फैली हैं उनकी कविताएँ। 'कवियों का विद्रोह', 'उनकी दास्तान', 'चैत में कटी है जो', 'आओ हम फिर से जिएँ', 'नीम बेहोशी में' आदि कविताओं में जीवन के कई रंग देखे जा सकते हैं। जीवन के प्रति आस्थावान् यह कवि व्यष्टि-राग की जगह सामूहिक चेतना को अपनी कविता का बिंब बनाता है। 'अकेले कंठ की पुकार' कविता में साथ चलने का संकल्प प्रकट करते हुए वे कहते हैं—

राग अलापो, बजाओ साज
कुछ ऊँची करो आवाज
मेरा साथ दो
यह दोस्ती का हाथ लो
फिर मैं तुम्हारे गीत गाऊँ
और तुम मेरे
कि जिससे रात जल्दी कट सके
यह रास्ता कुछ घट सके।

नई कविता के रूमानी भाव-बोध के विरोध में वह 'कवियों का विद्रोह' में लिखते हैं—

चाँदनी चंदन सदृश्य हम क्यों लिखें
मुख हमें कमलों सरीखा क्यों दिखे
हम लिखेंगे चाँदनी उस रुपए सी है
कि जिसमें चमक है, पर खनक गायब है।

अजित कुमार की ये काव्य-पंक्तियाँ उनके समय के खुरदरे यथार्थ को पूरी साफगोई के साथ प्रकट करती हैं।

अजित कुमार ने कविता के अलावा गद्य लेखन को भी एक नई

ऊँचाई दी। 'छाता और चारपाई' (१९८६) उनकी कहानियों का संग्रह है। 'छुट्टियाँ' (१९९४) नाम से एक उपन्यास भी लिखा है। कथा-गद्य के अलावा उन्होंने कथेतर गद्य की भी कई विधाओं में लिखा है। उनका मन कथेतर गद्य में विशेष तौर से रमा है। कथेतर गद्य की तमाम विधाओं—यात्रा, डायरी, संस्मरण, आलोचना, ललित निबंध को उन्होंने अभूतपूर्व रूप से समृद्ध किया। उनके गद्य-लेखन की एक उल्लेखनीय विशेषता है—किसी एक ही विधा में तमाम अन्य विधाओं का भी स्वाद मिल जाना। उनके संस्मरण पढ़िए, उसमें कथा-रस तो मिलेगा ही, रेखाचित्र, डायरी, यात्रा-वृत्तांत की झलक भी जगह-जगह मिलेगी। इसी तरह यात्रा-वृत्त पढ़िए तो उसमें आपको संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी के गुण मिलेंगे। अजितजी के गद्य के इस बहुवर्णी रूप को प्रसिद्ध आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी अच्छे गद्य की कसौटी के रूप में प्रशंसित करते हैं। अजितजी के गद्य की आत्मीयता और सादगी को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं, ''जिनका गद्य अपनी सादगी और अलंकारहीनता में विशेष रूप से आत्मीय तथा प्रीतिकर हुआ है। उनके यहाँ भी अकाल्पनिक गद्य पूरा वैविध्य देखने को लिता है—निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, यात्रा-वृत्त और फिर सब एक-दूसरे में लगभग अलक्षित रूप में विलीन होते हुए। अजित के गद्य का विनम्र लहजा कभी पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की याद दिलाते हुए भी उनका एकदम निजी है, जिसके विकास-क्रम का आख्यान उनके विविध संग्रहों में पढ़ा जा सकता है।''

अजितजी अपने यात्रा-वृत्तांतों—'सफरी झोले में' (१९८५), 'दूर वन में', 'यहाँ से कहीं भी' में तमाम शहर, गाँव, कस्बों के प्राकृतिक सौंदर्य और वहाँ की संस्कृति को हार्दिकता के साथ उभारते हैं। यात्रा में उनका मन शहरी कृत्रिम जीवन के बदले गाँव-कस्बों की सहजता, अकृत्रिमता की ओर अधिक रमता भी दिखलाई पड़ता है। सादगी से भरे शब्द सीधे-सरल वाक्यों में अपनी आत्मीयता में पाठक का ध्यान खींचते हैं। उदाहरण के तौर पर, 'सफरी झोले में' यात्रा-वृत्त से उनकी भाषा का यह नमूना देख सकते हैं—

''बिलासपुर से सुंदर नगर और मंडी तक के दृश्य मनमोहक थे, पर यह कौन जानता था कि मंडी के आगे मनाली व्यास नदी के किनारे-किनारे जाती सड़क इतनी अद्‌भुत होगी, बिलकुल प्राणप्रिय! सुनकर पत्नी भुनभुनाई। प्राणप्रिय या प्राणलेवा। उन्हें तो यही लग रहा था, कि प्राण अब गए कि जब गए। वे सामने देखतीं तो डर लगता कि बस इस मोड़ पर या पहाड़ से टकहाएगी या फिर नदी में जा गिरेगी।''

अपने समय और परिवेश की स्मृतियों को सहेजने में उनकी लेखनी अप्रतिम है। यात्रा-वृत्तांतों के अलावा निबंध, डायरी, संस्मरण में उन्होंने अपने देश-काल को बड़ी जीवंतता के साथ चित्रित किया है। इस दृष्टि से उनके संस्मरण बेजोड़ हैं। 'निकट मन में', 'जिनके संग जिया', 'अँधेरे में जुगनू' संस्मरणों में छायावाद के प्रमुख कवियों से लेकर अपने समकालीन तमाम रचनाकारों को उन्होंने याद किया है। जिनमें पंत, बच्चन, अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, मन्नू भंडारी, राजेंद्र यादव, निर्मला जैन, विश्वनाथ त्रिपाठी आदि शामिल हैं। अजितजी ने अपने संस्मरणों में इन सभी रचनाकारों के व्यक्तित्व को गहराई से तो उकेरा ही है, उनके लेखन कर्म की चुनौतियों का भी जिक्र किया है। एक रचनाकार की सृजन-प्रक्रिया के क्षण और उसके परिवेश को वे पूरे मनोयोग के साथ अभिव्यक्त करते हैं। अजितजी इस बात पर जोर देते हैं कि रचनाकारों की रूढ़ हो चुकी छवियों को तोड़ते हुए उनका स्वस्थ और पूर्वग्रह रहित होकर मूल्यांकन करना चाहिए।

सुपरिचित साहित्यकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, लेख, समीक्षा आदि प्रकाशित। 'बहुवर्णी गद्य का आकाश' (संपादित पुस्तक), शीघ्र प्रकाश्य—'निर्मल वर्मा का गद्य'। संप्रति असिस्टेंट प्रोफेसर, श्यामलाल कॉलेज (हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय।

अजितजी ने संपादन कर्म की भूमिका भी बखूबी निभाई है। अपने निकट आत्मीय रहे हरिवंश राय बच्चन पर उनकी 'बच्चन निकट से' एवं 'बच्चन के साथ क्षण भर' महत्त्वपूर्ण संपादित पुस्तकें हैं। इन्होंने बड़े लगन से बच्चन द्वारा चार खंडों में लिखी आत्मकथा को 'बच्चन की आत्मकथा' (२००५) नाम की एक संक्षिप्त पुस्तक में समेटने का कार्य किया है। बच्चन की आत्मकथा का संक्षिप्तीकरण करते हुए वे इस बात को लेकर बराबर सर्तक रहे कि इसमें उनके जीवन का कोई प्रमुख क्षण छूटने न पाए। साथ ही पाठकों को बच्चन की जीवन-यात्रा के विस्तृत आख्यान की झलक भी मिल सके।

अजित कुमार ने इसके अलावा 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल विचार कोश', 'कीर्ति चौधरी की कविताएँ' और 'सुमित्रा कुमार सिन्हा रचनावली' शीर्षक से पुस्तकों का भी संपादन किया है, जिसमें उनके अध्यवसाय, गंभीरता, विवेक की झलक मिलती है। हिंदी कविता के परिदृश्य पर इन्होंने दो आलोचना की किताबें 'इधर की हिंदी कविता' और 'कविता का जीवित संसार' लिखी हैं, जिसें हिंदी कविता के परिदृश्य का सूक्ष्म और विस्तृत मूल्यांकन किया गया है।

अजित कुमार जीवन भर साधनारत रहे। पक्षाघात की बीमारी के बाद भी उन्होंने अपना लेखन-कर्म जारी रखा। उनकी साहित्यिक सक्रियता देखने लायक थी। वह साहित्यिक गोष्ठियों पर खुलकर बात करते। कुछ नया पढ़ने की ललक हमेशा रहती। उनके व्यक्तित्व की सौम्यता और निश्छलता अभिभूत करनेवाली थी। आत्मप्रचार और खेमेबाजी से दूर रहनेवाले अजितजी चुपचाप साहितय सृजन करनेवालों में थे। इसीलिए उन्हें कभी किसी पुरस्कार या पद की लिप्सा में नहीं देखा गया। वे सच्चे अर्थों में साहित्य के अध्येता थे। साहित्य के इस मनीषी ने गत १८ जुलाई, २०१७ को दिल्ली के एक अस्पताल में अंतिम साँस ली। साहित्य के ऐसे सच्चे अनुरागी को विनम्र श्रद्धांजलि।

पॉकेट-डी, १७८, दिलशाद गार्डन,
दिल्ली-११००९५
दूरभाष : ९८९९९२००२७

परोपकार···न बाबा न

● राहिला रईस

सुपरिचित रचनाकार। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, शोध-पत्र, अनुवादित कहानियाँ प्रकाशित। नाथद्वारा की प्रसिद्ध संस्था 'साहित्य मंडल' द्वारा सम्मानित। संप्रति जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर (हिंदी) के रूप में कार्यरत।

नवाब समीउद्दीन खाँ आज बहुत अनमने लग रहे हैं। आरामकुरसी में धँसे हुए हैं, माथे पर ढेरों सिलवटें हैं, आँखें बंद हैं और ऐसा लग रहा है कि जैसे किसी घोर चिंतन में डूबे हों। मानसिक यंत्रणा से गुजर रहे हों। पास में नौकर भूरा खड़ा है काफी देर से वह उन्हें रह-रहकर आवाज दे रहा है, पर नवाब साहब आँखें ही नहीं खोल रहे हैं। भूरा अच्छी तरह समझता है कि नवाब साहब सो नहीं रहे हैं बल्कि किन्हीं खयालों में गुम हैं। बात है ही ऐसी कि नवाब साहब को बहुत ज्यादा सोच-समझकर ही कोई कदम उठाना होगा, तब ही मसले का उचित हल निकल सकता है। पर नवाब साहब को उठाना भी जरूरी है, क्योंकि बैठक में वकील साहब आ बैठे हैं और नवाब साहब ने कहा था कि जैसे ही वकील इकराम हुसैन आएँ, मुझे फौरन इत्तिला की जाए, पर भूरा उन्हें उठा भी तो नहीं सकता। आखिर नवाब साहब खुद ही खयालों की दुनिया से अकबकाकर बाहर आए और भूरा को देखते ही पूछ उठे, ''वकील साहब आ गए?''

''जी हाँ मालिक, वे तो कब से बैठे आपका इंतजार कर रहे हैं। मैं आपको आवाज ही तो दे रहा था।'' भूरा ने जवाब दिया।

''ओह! मैं तो अपने ही खयालों में गुम था।'' कहकर नवाब साहब उठे और वकील साहब से मिलने के लिए बैठक की ओर लपके।

''यह क्या कर दिया नवाब साहब आपने, एक बार मशवरा तो कर लेते मुझसे।'' वकील इकराम हुसैन ने नवाब साहब को अंदर आते हुए देखकर सवाल उछाल दिया। वह न सिर्फ नवाब साहब के वकील थे बल्कि अच्छे दोस्त भी थे। उन्हें परवाह थी नवाब साहब की।

''अब गलती तो हो ही गई, वकील साहब, क्या करने चले थे, क्या हो गया। हवन करने में अपने ही हाथ जला बैठे।'' नवाब साहब ने नदामत से कहा।

''अब आप ही कोई हल निकालिए। कैसे अपनी गरदन बचाई जाए।'' कहते हुए नवाब साहब ने अपनी आँखें वकील साहब के चेहरे पर अटका दीं।

''आप मुझे अदालत का नोटिस दे दीजिए और दीगर जरूरी कागजात भी मैं देखता हूँ कि केस किस तरह आपके हक में मोड़ा जा सकता है। केस जीतना नामुमकिन तो नहीं, पर मुश्किल जरूर है। और वह भी आपकी रहमदिली की वजह से।'' वकील साहब ने कहा।

वकील इकराम हुसैन दीवानी मामलों के पहुँचे हुए वकील थे। शहर के नामी वकीलों में तो उनका नाम शुमार होता ही था, हाइकोर्ट के वकीलों से भी उनकी अच्छी साठ-गाँठ थी। नवाब साहब को कई मुकदमे वे जितवा चुके थे। इस मुश्किल घड़ी में भी नवाब साहब ने उन पर ही भरोसा किया था। इकराम हुसैन को वकील चुनने भर से उन्हें भरोसा था कि वह मुकदमा जीत जाएँगे, इसलिए वह अब कुछ पुरसुकून नजर आ रहे थे। मानो अपने काँधे का बोझ वकील साहब के कंधों पर डालकर हलके-फुलके हो गए हों।

वकील साहब को जरूरी कागजात हस्तगत करने के बाद वे फिर आकर अपनी आरामकुरसी पर पसर गए और सोच उन पर हावी होने लगी। गलती तो उनसे हुई थी, इसका एहसास बार-बार उन्हें साल रहा था, फिर भी वे समझ नहीं पा रहे थे कि परोपकार करने का, भलमनसाहत दिखाने का नतीजा क्या यह होता है? पर फिर भी उन्हें एहसास था कि गलती उनकी थी, सिर्फ उनकी। वह सोच रहे थे कि 'अगर मैंने मौलाना साहब की बात मानी ही न होती और जैसा चल रहा था, चलते रहने दिया होता तो यह झंझट पैदा ही नहीं होता।' खैर, अब क्या?

बात दरअसल यह थी, नवाब समीउद्दीन खाँ साहब खानदानी रईस तो थे ही, साथ ही अब एक बड़े और सफल बिजनेसमैन भी बन चुके थे। कई कारखाने थे उनके। उनका घर क्या था, पुराना महल था, जो उनकी खानदानी विरासत था। खुदा के करम से उन्होंने न सिर्फ उस इमारत को महफूज रखा था और उसकी शान-ओ-शौकत को बढ़ाया था, अपितु खानदानी परंपराएँ, रीति-रिवाज और त्योहार भी उसी धूमधाम से मनाए जाते थे, जैसे कभी नबाबियत के दौर में उनके बाप-दादा मनाते आए थे। खुदा ने दौलत तो दी ही थी, साथ में नेक और परोपकारी दिल भी दिया था। हर जुमेरात को गरीबों को खाना खिलाया जाता था, जिनकी संख्या कई बार तो सौ से ऊपर पहुँच जाती थी। पिछले साल उनकी बेगम सख्त बीमार हो गईं। डॉक्टर लगभग नाउम्मीद हो गए

थे। खैर, खुदा का करना ऐसा हुआ कि दिल्ली ले जाकर इलाज कराने पर बेगम साहिबा सेहतयाब हो गईं।

बेगम साहिबा के ठीक होकर वापस घर लौटने पर मौलाना साहब ने नवाब साहब को सदका देने की राय दी। ''नवाब साहब, आप हर जुमेरात को तो गरीबों को खाना खिलाते ही हैं, अब से कुछ दिनों तक रोज गरीबों को खाना खिलाना शुरू कर दें। जान का सदका माल है और भूखों को खाना खिलाने से बेहतर कुछ नहीं।''

नवाब साहब खुशी-खुशी तैयार हो गए। अब से रोज अगले छह महीनों तक बीस गरीबों को खाना खिलाए जाने की मन्नत उन्होंने मान ली। कमी तो कोई थी नहीं। न दौलत की, न दिल की। लंबी-चौड़ी खेती-बाड़ी थी। गेहूँ, चावल, दालें सब घर के थे। लंगर शुरू को गया। दाल, चावल, रोटी और एक रसेदार सब्जी, सप्ताह में एक बार गोश्त खाने का सेट मीनू था। करते-करते पंद्रह दिन बीत गए। हिंदुस्तान में मुफ्तखोरों की कोई कमी तो है नहीं। जब लोगों को पता चला कि नवाब साहब खाना खिला रहे हैं तो और लोग भी आ गए और गिनती बीस से बढ़कर पचास हो गई। नवाब साहब खुश थे कि इतना कमाया है, खुदा के नाम पर कुछ लोगों को खाना खिला पा रहा हूँ। पर इसका अंजाम क्या होगा, उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। एक महीना हो चुका था।

इसी बीच गरीबों में से कुछ लोग नवाब साहब के पास पहुँचे और गिड़गिड़ाकर कहने लगे, ''नवाब साहब, आप हमें दोनों वक्त खाना देते हैं। खाना खाने के लिए आने में हमारा काफी समय बरबाद होता है और थकान भी हो जाती है। आपकी हवेली की पिछली लंबी दीवार के सहारे अगर हम पड़े रहें तो हमारे लिए आसानी हो जाएगी।''

हवेली के पिछले हिस्से की ओर लंबी दीवार थी और केवल एक गेट ही पीछे की तरफ खुलता था। हवेलीवालों की ज्यादा आमद-रफ्त भी उस ओर नहीं थी। हालाँकि यह गेट भी सड़क पर ही खुलता था, पर फिर भी यह रास्ता कम ही इस्तेमाल होता था। अत: नवाब साहब को इसमें कुछ भी अनुचित न लगा और उन्होंने टिक जाने की इजाजत दे दी। अब तो मुफ्तखोरों के मजे आ गए। दोनों वक्त खाने के साथ सुबह का नाश्ता भी मिलने लगा था। कहीं आने-जाने का कष्ट भी नहीं, पड़े रहो और थाली में सजा-सजाया भोजन करते रहो। उनके लिए जिंदगी इतनी सुकून भरी कभी न थी। मुफ्तखोर वे थे ही, इसलिए कि काहिल और निकम्मे थे। अब क्या था, इजाजत मिलते ही नवाब साहब की हवेली के पिछले हिस्से पर गरीब-गुरबा की पैंठ सी लगी मालूम होने लगी। गंदे-संदे लोग पूरे दिन पड़े लोटते रहते। तीनों वक्त भरपेट भोजन करते और भोजन करके थक जाते तो फिर पड़ जाते।

थोड़े दिन और गुजर गए। खाने का जो मीनू सेट था, रोजाना वही खाना गरीबों को परोसा जाता था। पर इनसान क्या है—हवस की खोपड़ी। और, और, और पाने की इच्छा तो कभी मरती ही नहीं। यह इच्छा अगर मेहनत और लगन से पूरी की जाए तो इससे अच्छा कुछ नहीं। इनसान की और अधिक पाने की ख्वाहिश ने ही तो संसार के समस्त ज्ञान-विज्ञान का विकास किया है। लेकिन मेहनत ये निकम्मे और काहिल लोग कर सकते थे? मुफ्त की रोटियाँ तोड़ रहे थे, पर अब उन्हें खाने में स्वाद नहीं आ रहा था। उन्हें खाने में वैरायटी चाहिए थी, क्वालिटी चाहिए थी। वे शिकायत लेकर नवाब साहब के पास पहुँचे, ''नवाब साहब, आपके नौकर हमें अच्छा खाना नहीं देते, रोज-रोज एक ही खाना देते हैं। हमें खाने में बदलाव चाहिए। खाने की क्वालिटी भी ठीक नहीं है और वह सुस्वादु भी नहीं है। अगर आपने हमें ठीक खाना नहीं दिया तो हम लोग हड़ताल कर देंगे।''

उन लोगों के ऐसे तेवर देखकर नवाब साहब सन्न रह गए। वे भौंचक्के थे। उन्हें खुद पर गुस्सा आ रहा था कि उन्हें ध्यान क्यों नहीं रहा कि इनसान ने तो खुदा के भेजे हुए अम्मन सलवा (एक तरह का खाना, जो आसमान से उतरता था) को भी ठुकरा दिया था। उन्हें मसाले चाहिए थे, प्याज चाहिए थी। तब उनका खाना उन्हें कैसे पसंद आ सकता था। इनसानी स्वभाव समझकर उन्होंने गरीबों की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। पर अगले दिन जब नौकर खाना लेकर बाँटने पहुँचे तो गरीबी ने खाना लेने से इनकार कर दिया। वह वास्तव में हड़ताल पर चले गए थे। दो दिन हो गए, पर गरीब खाना लेने को तैयार न हुए। नवाब साहब तो मन्नत मान चुके थे, अब उसे तोड़ कैसे सकते थे। वे तो वैसे ही जुबान के पक्के थे और यह वादा तो उन्होंने अपने खुदा से किया था। तोड़ा तो जा ही नहीं सकता था। अब नवाब साहब खुद उनसे बात करने पहुँचे। खाने को लेकर गरीबों की अनेक शिकायतें थीं और उन शिकायतों को जायज सिद्ध करने के अनेक तर्क थे, जिनमें सबसे मजे का तर्क तो गरीबों ने यह दिया था कि हमारी बदौलत ही नवाब साहब जन्नत में अपना घर बनवा रहे हैं, हमारी वजह से ही बेगम साहिबा सेहतयाब हुईं और हमारी ही सेहत के साथ लापरवाही बरती जा रही है, भूखा रखा जा रहा है। नवाब साहब, खुदा से किया अपना वादा नहीं निभा रहे हैं। आखिरकार अपनी मन्नत पूरी करने की मजबूरी की वजह से उन्हें उनकी बात माननी पड़ी। नवाब साहब का यहाँ झुक जाना उन्हें बहुत महँगा पड़नेवाला था।

पर अब पछताय होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत। नवाब साहब ने तो अपना पैर स्वयं ले जाकर कुल्हाड़ी पर मार लिया था। पर कहानी यहीं खत्म नहीं हुई। अभी तो परोपकार की सजा नवाब साहब को और मिलनी थी। नवंबर का महीना आ गया था। ठंड बढ़ने लगी थी। एक बार फिर गरीबों का प्रतिनिधि मंडल नवाब साहब से मिलने पहुँचा। ''नवाब साहब, ठंड बढ़ रही है। हमें इजाजत दी जाए कि हम यहीं दीवार के सहारे अपनी झुग्गी-झोंपड़ी डाल लें, छोटे बच्चे ठंड में अकड़ जाएँगे, हुजूर।''

नवाब साहब तो नवाब साहब थे, दरियादिल, खौफे खुदा में डूबे हुए। इतना हो जाने के बाद भी उन्होंने इजाजत दे दी। पूरी दीवार के सहारे झोंपड़ियाँ खड़ी हो गईं। अच्छा-खासा छोटा-मोटा गाँव नजर आने लगा था। गंदा और बदबूदार। अब हवेली के अगले और पिछले हिस्से में उतना ही फर्क था, जितना एक आईने के अगले और पिछले हिस्से में होता है, एक उजला-उजला चमकदार, साफ-शफ्फाफ और दूसरा मटमैले रंग से पुता हुआ मैला-मैला सा। नवाब साहब अब भी खुश थे। वे शायद सचमुच जन्नत में घर बनता हुआ देख रहे थे। उन्हें यह समझ नहीं आ रहा था कि वे जो कर रहे थे, वह परोपकार नहीं है, उचित भी नहीं है। वह एक पूरी जमात को मुफ्तखोरी, हरामखोरी, आलस, निकम्मेपन और अंततः जुर्म की ओर ढकेल रहे थे। अगर सिर्फ भोजन कराने के बजाय वे उनके लिए कोई छोटा-मोटा कारोबार शुरू करवा देते या उनकी पढ़ाई अथवा कोई हुनर सिखवाने का बंदोबस्त करवा देते तो संभवतः वह ज्यादा बेहतर होता। उनके दोस्त इम्तियाज साहब ने उन्हें इसकी सलाह भी दी थी, पर उनके नजरिए से परोपकार यही था—दो वक्त का खाना खिलाना, न कि तमाम उम्र खाना खा पाने का इंतजाम करवा देना।

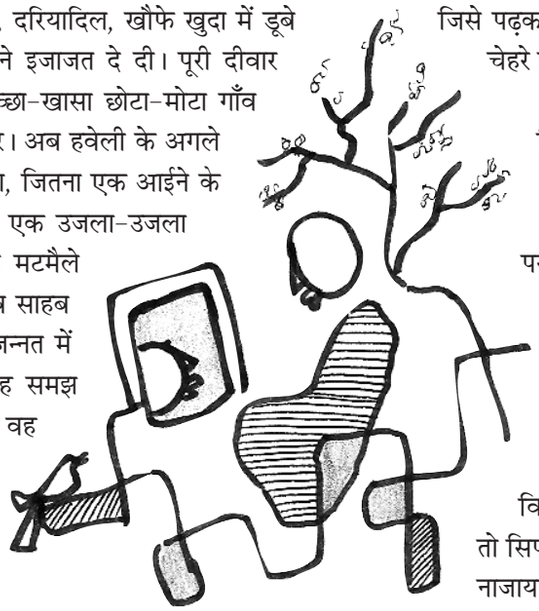

खैर, गरीबों की झोंपड़ियाँ बन चुकी थीं, खाना उन्हें तीनों वक्त मिल रहा था। जाड़ों के लिए कंबल और गरम कपड़े भी दान में मिल चुके थे, अब और क्या चाहिए था। नवाब साहब भी संतुष्ट थे। खुदा का नेक बंदा होने के अभिमान में जी रहे थे। पर पिक्चर तो अभी बाकी थी। चार महीने बाद नवाब साहब के पास कोर्ट का सम्मन आ पहुँचा, जिसे पढ़कर उनके पैरों तले की जमीन ही खिसक गई थी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और दिमाग भन्ना गया था।

उन गरीबों ने नवाब साहब की हवेली के बाहरी हिस्से पर मालिकाना हक पाने का दावा ठोक दिया था। पर इस बार नवाब साहब किसी रियायत के मूड में नहीं थे। बहुत हो गया सदका, खैरात और परोपकार। पचास लोगों का पेट पाँच महीने से भर रहे थे, खाने की गुणवत्ता और वैरायटी पर भी उन गरीबों की माँग उन्होंने मान ली थी। यहाँ तक तो ठीक था, पर हवेली के एक हिस्से पर मालिकाना हक, यह गलत था, नाजायज था। यह हवेली उनके पुरखों की थी और उन्हें वैसी ही विरासत में अपनी अगली पीढ़ी को सौंपनी थी, वह तो सिर्फ कस्टोडियन थे। दूसरे का हक मारकर किसी की नाजायज माँग को पूरा करना बिल्कुल भी उचित न था। और न ही नवाब साहब का ऐसा कोई इरादा था। इसीलिए उन्होंने वकील इकराम हुसैन को बुलाया था।

नवाब साहब गहन चिंतन से बाहर आए। उनकी त्योरियाँ चढ़ी हई थीं; वे हर हाल में यह मुकदमा जीतना चाहते थे और साथ ही अब परोपकार से भी उन्हें विरक्ति हो गई थी। वास्तव में परोपकार मदद की हद तक ही होना चाहिए, परजीवी बनाने के लिए नहीं, यह अब वे समझ चुके थे।

सा.अ.

सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०८४३९०५८१२७

हिंदी : रस से परिपूर्ण

कविता

• विनीता सहल

महान् ज्ञानी, गुणी, विद्व और संत हैं,
प्रसादजी, दिनकरजी, गुप्तजी और कवि पंत हैं।

प्रसिद्ध साहित्यकार, व्यंग्यकार और कथाकार हैं,
रस है, छंद है और वक्रोक्ति जैसे अलंकार हैं।

चित्ताकर्षक, रस से परिपूर्ण दोहे, सोरठे और छंद हैं,
शुक्लजी, द्विवेदीजी, नागरजी और प्रेमचंद हैं।

महादेवी हैं, अमृता हैं और हैं शिवानी,
इनकी कलम से निःसृत है अद्भुत कहानी।

सूर, मीरा, जायसी, तुलसी जैसे हैं रत्न,
हिंदी सागर में डुबकी लगाने का कीजिए तो प्रयत्न।

कवि बिहारी ने ठीक ही कहा है—
तंत्रीनाद कवित्तरस, सरसराग रति रंग,
अनबूढ़े बूढ़, तिरे जो बूढ़े सब अंग।

हिंदी से लौ लगाइए, हिंदीप्रेमी बन जाइए।
हिंदीप्रेमी, हिंदीप्रेमी, देशप्रेमी बन जाइए॥

सा.अ.

ए-२, रत्नसमूह, कॉ.हा.सो. न्यू डी.एन. नगर,
अंधेरी (प.) मुंबई-४०००५६
दूरभाष : ७९८२०३६१४७८

छोड़ दो तुम आँधियों से क्या लड़ोगे

● राकेश भ्रमर

मसीहा का शहर है ये, यहाँ हँसता नहीं कोई,
किसी के पास दो पल भी, यहाँ रुकता नहीं कोई।

न जाने दर्द कैसा है कि रोकर भी नहीं रोते,
बहुत टूटे हुए हैं, पर यहाँ झुकता नहीं कोई।

समंदर की लहर बनकर मिटाना चाहते हो तुम,
बहेगा रेत बनकर वो, यहाँ मिटता नहीं कोई।

कहाँ की दास्ताँ लेकर सुनाने आ गए सबको,
किसी की आपबीती भी, यहाँ सुनता नहीं कोई।

सभी को चाँद की चाहत, सितारे फिर कहाँ जाएँ,
जुगनुओं की शिकायत है, यहाँ रुकता नहीं कोई।

'भ्रमर' तुम पत्थरों की बस्तियों में क्यों चले आए,
गले किसको लगाओगे, यहाँ मिलता नहीं कोई।

: दो :

अब कहाँ चाँदनी रातों को हम तलाश करें,
ख्वाब कैसे खुली आँखों में हम तलाश करें।

हाथ खाली थे यहाँ, क्या सहेजकर रखते,
कौन सा सुख तेरे कदमों में हम तलाश करें।

कौन है जो यहाँ धरती को निगल जाता है,
गाँव को अब कहाँ शहरों में हम तलाश करें।

चाँद भी डूब गया, और सितारे भी नहीं,
किसकी आँखों में चरागों को हम तलाश करें।

अश्क भी सूख गए बारिशों के मौसम में,
आओ सब मिलके घटाओं को हम तलाश करें।

: तीन :

शाख से झरते रहे तुम फूल बनकर,
आज दिल में चुभ रहे तुम शूल बनकर।

पत्थरों के शीश पर इतरा रहे थे,
क्या करोगे पाँव की तुम धूल बनकर।

एक साया भी नहीं है खँडहर का,
जिंदगी से मिट गए तुम भूल बनकर।

अब तुम्हारी दोस्ती क्या, वायदे क्या,
साथ में जीते रहे, प्रतिकूल बनकर।

छोड़ दो तुम आँधियों से क्या लड़ोगे,
अब हवाओं के चलो अनुकूल बनकर।

पानी में तैरते बच्चे

पानी में तैरते बच्चे
जैसे कमल के फूल
कोई इनको क्यों तोड़े

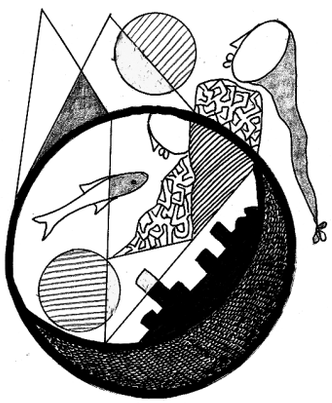

कल जब ये बड़े होंगे
जंगल में खड़े पेड़ों की तरह
झेल रहे होंगे
जीवन-रूपी मौसम के
असंख्य थपेड़े
आज इन्हें क्यों तोड़ें ?

पानी में किलकारियाँ भरते बच्चे
कोई इनकी हँसी क्यों छीने
क्योंकि कल जब ये बड़े होंगे
तब इनके होंठों से
छिन जाएगी हँसी अपने आप
खड़े होंगे अकेले में
भीड़ के बीचोबीच
और ढो रहे होंगे
बीमार बाप, बूढ़ी माँ,
गर्भवती बीवी और
चीखते-चिल्लाते बच्चों की
रोटियों का बोझ,
वे रोटियाँ
जो पूँजीपतियों के
पैरों तले दबी हैं
बच्चो, तुम कभी बड़े मत होना
न निकलना कभी पानी के बाहर
यों ही तैरते रहना
किलकारियाँ भरना
पानी में हथेलियाँ पटक-पटककर,
छींटे उछालना
हँसना और खिलखिलाना
और इस दुनिया के
बेरहम लोगों को
ठेंगा दिखाना।

सुपरिचित साहित्यकार। 'जंगल बबूलों के', 'हवाओं के शहर में'(गजल संग्रह), 'उस गली में' (उपन्यास), 'अब और नहीं' (कहानी-संग्रह)। 'प्राची' मासिक पत्रिका का संपादन। पत्र-पत्रिकाओं में सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। दूरदर्शन लखनऊ तथा आकाशवाणी रामपुर, जबलपुर और मुंबई से रचनाओं का प्रसारण। संप्रति केंद्र सरकार में अधिकारी।

२४, जगदीशपुरम्, लखनऊ मार्ग,
निकट त्रिपुला चौराहा,
रायबरेली-२२९००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९९६८०२०९३०

आशीर्वाद

मूल : **संयुक्ता महांति**
अनुवाद : **राजेश कुमार साहु**

सुश्री संयुक्ता महांति ओड़िया की मशहूर नारी कथाकार हैं। इन्होंने ओड़िया साहित्य को साधन के रूप में नहीं बल्कि साधना के रूप में ग्रहण किया है। इनके कथासाहित्य में दर्द की तड़पन है और साथ ही उसमें उदात्त जीवन मूल्य उभरकर आए हैं। उपन्यास तथा कहानी-संकलनों पर अनेक पुरस्कार तथा सम्मान मिले हैं। सुश्री महांति की कहानी 'आशीर्वाद' माँ की अहमियत को लेकर है। इस संसार में माँ के आशीर्वाद से बढ़कर दूजा नहीं। संप्रति सुश्री महांति सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, कोलकाता में मुख्य प्रबंधक हैं।

'गाड़ी रोकना, महेश!'

'फिर, क्या हुआ तुम्हें?'

'बड़ी चुप्पी-साधे बात कर रहे हो?'

'पहले थोड़ी-सी, घूँट भर पीने से यह सफर अच्छा नहीं लगेगा, यानी नहीं जमेगा। इसलिए हम तुझ से यह आग्रह कर रहे हैं कि तू सामने आ रहे ढाबे के पास गाड़ी रोक।' तापस ने कहा कि अगर तू यहाँ नहीं ठहरेगा तो फिर हम सब मिलकर कल रात संबलपुर पहुँचने पर तेरी जेब बिल्कुल खाली कर देंगे।

वे चार शख्स थे—अनिल, सुरेंद्र, महेश और तापस। अनिल नामी-गिरामी सीमेंट कंपनी का सि-एंड-एफ एजेंट था। वह इज्जतदार और रईस था। सुरेंद्र, महेश, तापस तीनों इसके साथ जा रहे थे। वे सब अनिल की तरह बहुत पैसेवाले न होने पर भी अमीरी में किसी से कम नहीं थे।

वे कटक से वापस घर की ओर लौट रहे थे। सीमेंट कंपनी के मैनेजर समीर महापात्र का विवाह था। विवाह का स्वागत-सत्कार खूब जम रहा था। दावत भी खूब लजीज थी। इस शादी में जो शानदार खाना मिला था, शायद सौ शादी की दावत में भी ऐसा खाना नहीं मिला होगा। फिर भी पार्टी शराबखोर तापस के लिए जँची नहीं थी। वह महापात्र बाबू के कानों पर झुककर खुसुर-फुसुर कर कहने लगा, 'सर! सबकुछ बेहतरीन है, मगर मुझे थोड़ी-सी जँची नहीं।'

महापात्र बाबू एक हल्की सी मुसकान के साथ बोले, 'तुम यह सब जुबान पर मत लाओ। मेरी माँ पुराने खयाल की है। हमारा परिवार संस्कारी है। तुम्हें जाते वक्त जो करना है, कर लेना।' इसलिए तापस थम सा गया था। अनिल सबके सामने शरीफ बनता है। सिर्फ रुपयों को पहचानता है। वह मारवाड़ी लड़का होकर भी ओडिया दोस्तों के बीच सिर्फ ओडिया में ही बातें करता है। ओडिया परिवारवालों के साथ बातचीत करते वक्त वह तनिक भी हिंदी नहीं बोलता था। उसने समीरबाबू की पत्नी को एक सोने का सेट दिया था, जिसमें सोने का हार, कर्णफूल व अँगूठी थी। अनिल के नक्शेकदम पर सुरेंद्र ने भी सोने का सेट दिया था। महेश और तापस दोनों ने मिलकर टेप-रिकॉर्डर दिया था, जिसका मूल्य तकरीबन सात हजार रुपए से कम नहीं होगा। भेंट देने के मामले में कोई किसी से कम नहीं था।

अनिल ने बातों ही बातों में पूछा, 'महापात्र बाबू, दावत में बावरची कहाँ से लाए थे, इतना लजीज खाना मैंने कभी नहीं खाया।'

तापस ने कहा, 'बावरची कटक का है।'

'अब भी कटक के बावरची कमाल दिखाते हैं। भुवनेश्वर सिर्फ नाम की राजधानी है। वैसे तो मैंने सट्टे भी डाला है कि भुवनेश्वर के पंचतारा होटल से भी यहाँ बेहतरीन खाना है। कटक के हजार सालों के पुराने रिवाज को कोई तोड़ नहीं सकता।' सुरेंद्र ने कहा, 'इसीलिए मैं अकसर कटक शहर को पसंद करता हूँ।'

महेश—'अच्छा सुरेंद्र, अपने लड़के की शादी में तू कटक के बावरची को ही बुलाएगा!'

'हाँ, यकीन से! इसलिए तुम सब दुआ करो कि वह सबसे पहले अच्छी तरह पढ़ाई करे। इसके बाद वह अच्छा लड़का बनकर, अच्छी लड़की को पसंद कर ले।'

'कहीं! तुम पसंद नहीं करेंगे, क्या?'

'आजकल के छोकरे। सबसे पहले उनकी पसंद को तस्सबुर देना पड़ेगा।'

'फिलहाल तेरे लड़के की उम्र कितनी है?'

'दस साल। अभी पाँचवीं में पढ़ रहा है।'

'तब तो और पंद्रह साल के बाद सोचेंगे।' तापस ने फिर एक बार महसूस किया कि उसका गला सूख रहा है। 'बस, और नहीं रह सकता।' महेश ने कहा, 'तुझे चाहिए कि नहीं, हमें चाहिए। तू गाड़ी कहाँ ठहराएगा!'

'ढाबा आने दो। इतनी जल्दबाजी क्यों?

अनिल—'तू क्यों चुप होकर बैठा है?' तापस ने साथ देते हुए कहा, 'तुझे माल (शराब) नहीं चाहिए?'

महेश—'अरे, वह तो असली माल (चीज) कैसे कमाएगा, वही सोच रहा है। अरे भाई यह बात तुम्हें पता है कि नहीं, उसका एक स्वतंत्र क्रसर यूनिट है!' अनिल ने हँसकर कहा, 'दो नंबर के पैसे कमाने का नशा बड़ा ही विचित्र है। आजकल के लोग को पहचानना बहुत ही मुश्किल है!'

सुरेंद्र—अच्छा, तू दूसरों का घर उजाड़ रहा है!

अनील—तू बेटा सिर्फ शराफत दिखा रहा है। मैं ईंट-सीमेंट का घर तोड़ रहा हूँ। तू साला, इनसानों के दिलों को तोड़ता है। उस छोकरी के साथ तेरा चक्कर क्या है? बरगडु में तेरे जो नई दुकान खुली है। वहीं जो है।

तू इज्जत देकर बात करने कर सलीका नहीं सीखा है क्या? कह दे तिथि। उसका नाम तो तुझे अच्छी तरह पता है! यानी कि तेरी नजर वहीं पर लगी है, वरना उसे लेकर तू क्यों ऐसे उछल रहा है।

तेरी तरह तो मैं कभी उसे गाड़ी में बैठाकर हीराकुड डैम की ओर नहीं चला। मैं तेरी दुकान की ओर गया था। वह बदन झुकाकर कंप्यूटर ठक-ठक कर रही थी। मुझे थोड़ा सा बदन उठाकर भी वह नहीं ताक रही है रे! पुकारने पर ताक रही थी। वह बड़ी सयानी है!

महेश—सिर्फ इतना नहीं, मैं एक बार अपने गाँव से आए हुए रिश्तेदार के साथ घंटेश्वरी देवी मैया के पास गया था। उस वक्त सुरेंद्र को देखा, वह उस लड़की का हाथ पकड़कर बहुत दूर खड़ा था। आहिस्ता-आहिस्ता उसे बाँहों में जकड़ रहा था।

तापस—और क्या देखा है, बताना? उसके बाद वह चुप, शैतानी लड़की ने पलटते हुए उसके सीने पर सिर रखा था। यह तो सिर्फ एक पलकों का मंजर था। मैं सिर्फ दूर से देख रहा था तो जान सका। हम दुकान पर जाएँ तो न पहचानी-सी ताकती है। इसके अलावा वह अंदर में पूरी तरह राधा बन रही है।

अनिल—क्या यह बात भाभी जानती है?

महेश—चालीस साल के बाद भाभी से बेटे का मन नहीं रमता होगा। इसीलिए नया-नया शिकार पकड़ रहा है।

अनिल—तू ये सब किसी के सामने जिक्र मत करना। नहीं तो वह देवदास बन जाएगा और अपने काम से जी चुराएगा।

महेश—इसलिए बेटे की दुकान पीछे पड़ी है। मैंने सोचा, क्या राज है? अब जो नशा जकड़ा हुआ है। उसे और कौन सा नशा पकड़ेगा।

अनिल—वही तो मैं कह रहा हूँ। उसने मुझे कहा कि लड़की कंप्यूटर चलाएगी। हिसाब-किताब रखेगी, इसलिए मुझे उसकी जरूरत होगी।

महेश—अगर इतने दिनों तक तुम सब किसी को नहीं पकड़ पाए, तो इसके लिए क्या सुरेंद्र को अपराधी मान लिया जाएगा!

इतने समय तक सुरेंद्र चुप्पी बरत रहा था। जुबान पर ताला मारने के बाद बोला कि मैं उसे जबरदस्ती लाया था क्या? मेरा उद्देश्य समझने के बाद ही वह मेरे साथ गई थी।

तापस—देख महेश! तुझे कोई रोक नहीं रहा है, इसका यह मतलब नहीं है कि तू सहन नहीं कर पाएगा। तू कलकत्ते में रंगमहल की ओर क्यों गया था? तू कौन सा शरीफ है?

महेश—तू बात का बतंगड़ बना रहा है। बता कि तू कौन सा भलामानुस है? अपने माँ-बाप की तू कभी पूछताछ करता है, क्या? आज तक तू अपनी माँ को इज्जत देना नहीं सीखा।

माँ की बात आते ही वह चुभ गई। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि छोड़ो इन आवारा, शराबी सौदागरों को। यदि उसकी माँ के प्रति कुछ कहा जाए, वह बरदाश्त नहीं कर सकता।

अब उसकी माँ घर में नहीं है? अनुज के घर गई है। वह क्या कर सकता है? उसकी पत्नी ने पूरी जिद पकड़ी हुई है कि तुम दो भाई हो सिर्फ तुम अकेले क्यों माँ की देखभाल करोगे! आखिर उसकी भी कुछ जिम्मेदारी है। अनुज को भी माँ की खातिर कुछ करना चाहिए। हर महीने के पंद्रह दिन वह रखे और बाकी पंद्रह दिन हम रखेंगे। इस उम्र में माँ कुछ भी बता नहीं सकती, बड़ी अधीर हो पड़ती है। फिर भी ओठ मौन रह जाते हैं। उसकी पत्नी बड़ी कड़वी बोलनेवाली है। इसीलिए माँ को इस उम्र में जुबान खुलकर उसे कहने में बड़ी मुश्किल होती है। माँ को उच्च रक्तचाप है। वह डर जाती है। देवी प्रतिमा सी माँ उसकी बेबस जिंदगी से बचने की याचना करती है। वह दुरुस्त रहने पर कुछ कर पाएगी। सुस्त नहीं है, जो किसी के साथ झगड़ा मोल लेगी। हर पल माँ देखती है उसकी वही कड़वी बोली और तिलमिलाती हुई सिकुड़ता बदन, पर जुबान नहीं खोल पाती। माँ को रखने पर उसकी पत्नी न जाने कितना झगड़ा मोल लेगी? वह क्या कर सकता था और वह अपनी पत्नी के पास बेबस, बेजुबान और बेजान लकड़ी बनते हुए सबकुछ बरदाश्त कर जाता था। इस वक्त उसकी

मर्दानगी की ताकत न जाने कहीं दूर की बात बनकर रह जाती है। उसका अपना थोड़ा-सा वजूद जो माँ के लिए रहना चाहिए, उसे भी पत्नी दबोच लेती है। जुबान खोलने पर वह बहुत कुछ हार सकता है। माँ ने क्या सोचा होगा कि किसी दिन उसका यह बुरा हाल हो जाएगा? उसके अपनी पत्नी से कुछ कहने की कोशिश करने पर माँ उसे कुछ न कहने की हिदायत देती है! रहने दे बेटा! तू क्यों परेशान होगा, मैं रमेश के घर चली जाऊँगी। किसी भी दिन उसे रोष में नहीं देखा। शोरगुल करते नहीं देखा। जवाबतलब करते भी कभी नहीं देखा। हालात के साथ माँ अपने आपको मना रही थी। इतना कुछ होने के बावजूद वह कैसे एक नामर्द की तरह उसे कुछ न कहकर देखता रहता है।

सुरेंद्र ने इसी पल मुसकराकर कहा, देख भाई! फिलहाल हम सब कैसे लजीज दावत उड़ाकर आए हैं। कैसी हसीन रात। आकाश में कितने सितारे हैं। कैसी बेहतरीन हवा बह रही है!

कितनी हर्षित लग रही है न! तुम ऐसी बातों से गप्पें मार रहे हो या झगड़ा मोल रहे हो, मैं समझ नहीं सकता। देखो, आगे ढाबा आ रहा है। वहीं से कुछ लोगे क्या?

वाह! देवदास वाह! महेश हो-हो कर हँस पड़ा। अब भी तापस गुमशुम बैठा है। माँ का जिक्र आने पर तापस कुछ कहना पसंद नहीं करता। इसलिए तापस ने अब भी कुछ नहीं बताया।

ढाबा आने पर चारों कुछ घूँट पीने के लिए पहुँच गए। वे सब राजकीय अंदाज में चल रहे थे।

सबको ढाबे में कुछ मन मुताबिक पीना मिल गया था। सुरेंद्र ज्यादा नहीं पी सकता था। उसने सिर्फ लवों पर छूकर गले को तर कर लिया। वे सब पीने में दिलचस्पी ले रहे थे। अब तक अनुगुल नहीं आया था। और चार घंटे के बाद वे संबलपुर में पहुँचेंगे। आखिर पीने के बाद आधे घंटे में गाड़ी पर वापस लौट रहे थे। शायद रात की गहराई बढ़ रही थी। इसलिए कोई कुछ बात नहीं कर रहा था और सबका नशा थम सा गया था। शायद इसी वजह से सबको झपकियाँ भी आने लगी थीं।

सुरेंद्र का एस.एम.एस. साइलेंट में था, सहसा मोबाइल में रोशनी आने पर देखा कि तिथि का एस.एम.एस. आया था?

'तुम अब कहाँ हो? मुझे बेचैनी हो रही है।'

'तुम्हें नींद आ रही है क्या?'

'कैसे आएगी। अकसर तुम्हारा चुलबुला मन किसी के पास उड़ रहा है। तुम निश्चल रहोगे तो मुझे नींद आएगी।'

'हाँ! तुम्हारा मन किसी के पास है या और कुछ। मेरा मन सिर्फ तुम्हारे पास।'

सुरेंद्र के सीने में इस वसंत रात की मलय बयार लग रही थी। शबनम टपक रही थी। फरवरी महीने में वन से शाल फूलों की खुशबू फैल रही थी।

ओह! तिथि। मेरी शुरुआती जिंदगी में तुम क्यों नहीं आईं। काश! मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाकर ला सकता तो कितनी हसीन होती।

मेरे पत्नी होने से आज तुम ऐसा प्यार-भरा एस.एम.एस. नहीं लिख रहे होते। अगर तुम लिखे भी होते तो तब तुम्हारा अल्फाज ही बदल जाता कि फिलहाल बेटा नटखट हुआ है क्या? वह सोया है या नहीं? आज ट्यूशन गया था क्या, वगैरह-वगैरह?

एस.एम.एस. देखकर सुरेंद्र मन-ही-मन स्मित हास्य ले रहा था।

तुम पक्का गृहिणी की तरह लिख रही हो? रहने दो ये सब दुनियादारी की बातें, प्यार भरी बातें करो, कुछ पल मन को बदलने दो। ओह तिथि! आई लव यू। मैं सिर्फ वही सोच रहा हूँ कि कैसे रात बीतने पर तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा।

अचानक इसी वक्त गाड़ी डगमगाने लगी। वह तापस के ऊपर गिर पड़ा। तापस को बगल में धक्का लगते ही वह महेश पर चिढ़ने लगा।

'अरे भाई! ठीक से गाड़ी चलाओ! हमें मारना है क्या?'

अनिल टहलने पर भी गहरी नींद में डूबा हुआ था। इस बात को लेकर सुरेंद्र डर गया था कि शराबी क्या कुछ कर जाएगा तो आखिर क्या होगा? उसने सोचा कि पहले किसी शहर में गाड़ी रोकने के लिए कहूँगा और होटल बुक करके एक रात सोने पर कल सवेरे हम सब जल्द रवाना हो जाएँगे।

यही सोचकर उसने महेश को पीछे से अनुगुल में गाड़ी रोकने के लिए कहा। 'तू और गाड़ी चला नहीं पाएगा। हमें कल सुबह जाना है। तू जैसा चला रहा है, मुझे डर लग रहा है।'

'तू रुक! मैं ड्राइविंग में माहिर हूँ। मैं पक्का तुझे तेरे मुकाम तक पहुँचा सकता हूँ। सुबह जाकर माशूक के पास सोते रहना।'

'महेश, तुझे बात करने की तमीज नहीं है।'

'अभी तू मुझे तमीज मत सिखा।'

इसी पल पहले से ही ट्रक उनके गाड़ी पर धक्का लगाया। महेश जल्द ही स्टेयरिंग घुमाने लगा। आखिर, पलक झपकते ही गाड़ी घूमती हुई अँधेरे में किसी खेत में गिर पड़ी। पलकों का वही मंजर। उसका सीना धक-धक करने से पहले गाड़ी उलट गई थी। सुरेंद्र अँधेरे में जमीन पर गिर पड़ा था। उसके पैर में जोर से चोट लगी थी। वे तीनों और गाड़ी कहाँ थी, उसे यह भी घने अँधेरे में नहीं दिखाई दे रहा था।

वहीं से ओह! सूक्ष्म क्षयशील आर्तनाद आ रहा था। उसे यकीन हो रहा था कि वे सब जिंदा हैं। उसकी कमर में मोबाइल बँधा हुआ था। देखा कि सही-सलामत है। सबसे पहले उसने समीर बाबू को फोन किया।

सर! हमारा एक्सिडेंट हो गया है। हमारी गाड़ी खाई में गिर गई है। मैं जमीन पर छिटककर गिर पड़ा हूँ। वे सब गाड़ी के अंदर ही हैं। पर मुझे यह कौन सी जगह है, पता नहीं चल रहा है। मैं किसी भी तरह घसीटते हुए रास्ते के बगल में आ गया हूँ और हाथ दिखाने पर कोई गाड़ी नहीं रोकता है। क्या करूँ सर! कुछ नहीं सोच पा रहा हूँ।

वे सब समीर बाबू की शादी की दावत खाकर वापस लौट रहे थे और यह हादसा हो गया था। समीर यह खबर सुनते ही घबराने लगा। उसकी बाँहों में नई दुलहन थी। उसे बाँहों से धकेलकर दरवाजा खोला और नीचे की ओर दौड़ आया। शादी के माहौल में घर में कोई सोया नहीं

था। वह यकायक काँपने लगा और माँ को आवाज लगाई—

'माँ! माँ! अनिल बाबू!'

'क्या हुआ?'

'उनका एक्सिडेंट हो गया है।'

'मैंने उन्हें कहा था कि यहीं आज रात रुक जाओ, फिर भी बात नहीं माने।'

'अब क्या हो सकता है? अनुगुल से पहले यह कौन सी जगह घने अँधेरे में पता नहीं चलता। सुरेंद्र रास्ते में खड़ा है। किसी से कुछ मदद मिलने की उम्मीद में है। रात के सन्नाटे में गाड़ी कोई भी नहीं रोकता है। ऐसी मुसीबत में इनसान ही इनसान के मददगार नहीं बनते।'

'तुम घबराओ मत, सबकुछ भगवान के भरोसे छोड़ दो। देखो, कुछ नहीं होगा।'

उनको तुरंत सहायता करने के लिए समीर ने अनुगुल के डीलर राय बाबू के साथ बात की। उन्हें जितना जल्द हो सके अनुगुल के हस्पताल में भरती करने के लिए हिदायत भी दी।

समीर की ऐसी हालत को उसकी नई दुलहन देख रही थी। वह रात के बाद सुबह होते ही अनुगुल जाकर उनसे मुलाकात करेंगे। जो बंदोबस्त होना चाहिए, वही करने के लिए वह समझा रहा था। वैसे तो अनिल बाबू के पास पैसों की कमी नहीं थी। एक अच्छे दोस्त होने के नाते सुरेंद्र को समझाने की पूरी कोशिश की थी।

अनुगुल के सीमेंट एजेंट से पूछते हुए इसी रात में ही पहुँच चुका था। किसी को रुकने की उम्मीद में सुरेंद्र वैसे ही हाथ हिलाता रहा था। अनुगुल के सीमेंट एजेंट बचाओ कार्य करने के बाद उनको अनुगुल अस्पताल में भरती कराया। रात के बाद सुबह होते ही उन्हें बुर्ला मेडिकल कॉलेज ले जाएँगे। सभी बुरी तरह जख्मी हुए थे। सिर्फ सुरेंद्र ही जीते जी सही सलामत है। सुरेंद्र को पैरों में चोट आई थी। ताज्जुब की बात है कि सुरेंद्र का दिल इसी वक्त वहीं देवी रूपेण माँ के पैरों में झुक गया। आँखें मूँदते ही उसे समीर बाबू की माँ की चितवन सामने आ जाती है, जो वापस लौटते वक्त रिसेपशन हॉल में बैठी हुई थीं। वह व्यक्तित्व भरा, स्नेहमयी माँ का रूप देखने पर उसका अंतर्मन श्रद्धा-भक्ति से स्वत: प्रवृत्त उमड़ पड़ा था। उसे वैसा कुछ महसूस हुआ था। पैर छूकर अशेष-भक्ति से उसने प्रणाम किया था। बेखौफ दोनों हथेली सुरेंद्र के सिर को थमाई थीं और सहलाती हुई उसी पल उन्होंने कहा था कि 'बेटा! हमारे घर फिर आते रहोगे। अभी तुम न जाने से हो नहीं सकता है क्या? आज रात के लिए यहाँ रुक जाओ न।'

शायद उसके सिर पर उसी हाथ का आशीर्वाद था। इसलिए उन्हीं हाथों ने धर्म के मूर्तिमान् बनकर उसे सुरक्षा दी। इसी भावावेश में सुरेंद्र की आँखें सजल हो उठी थीं।

समीर विचलित होकर सुबह हस्पताल पहुँच गए थे। सुरेंद्र समीर को आलिंगन करते हुए जोर से रो पड़ा। सर···सर···कहते हुए उसका गला रुँध गया था। उसने जीवन बचने के आनंद से और जीवन के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए समीर के पैर छूकर माथे से लगाया था। उसका प्राण नव उन्मेष के साथ लौटते हुए भरसक प्रफुल्लित हो रहा था।

यह क्या सुरेंद्र बाबू! मेरे पैर मत पकड़ो। मैं आपसे उम्र में छोटा हूँ।

ऐसी बात मत कीजिए। आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। आने से पहले मैंने आपकी माताजी के पैर छूकर प्रणाम किया था। समीर बाबू, आपकी माँ सिर्फ हाड़-मांस का पुतला नहीं हैं। एक वृद्धा, सिकुड़ी चमड़ीवाली, पके केश धारिणी, सदा जराग्रस्त होकर भी बेकार नहीं हैं। हमारे जीवन के हर मोड़ पर माँ सिर्फ माँ ही है, जननी है। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादप गरीयसी। उसकी बेखौफ पनाह, दुआ, आँचल और वजूद बहुत विशाल है। चाहे जो भी वक्त हो, जो भी जगह हो, वह तुम्हें सुरक्षा देकर रख सकती हैं। इसलिए माँ सिर्फ जिंदा रहने के लिए दो भाइयों का हिसाब-किताब नहीं है। माँ कितने दिन किसके साथ रहेगी, किसने कितना खर्च किया! आज मुझे अहसास हो गया है कि माँ का प्यार क्या है? कल उन सबको संबलपुर या बुर्ला शिफ्ट करते हुए मैं निश्चित ही आपके घर माँ के पद धूल लेने के लिए जरूर जाऊँगा, जिनके आशीर्वाद ने आज मुझे इतने बड़े हादसे से उबारा और बचाया है।'

समीर की आखों में भी आँसू भर आए। तापस बड़ी-बड़ी आँखों से देखता दुनिया की बातों को सुन रहा था। सुरेंद्र को उसकी ओर देखते ही उसने अपनी आँखें नीचे कर लीं और उसने स्पष्ट देखा कि किसी एक दिल की तड़पन में उसके बदन की मांसपेशियाँ कितनी सिकुड़ रही हैं।

सुरेंद्र ने महसूस किया कि तापस को फिलहाल उसकी माँ की बातें शायद बहुत ही याद आ रही हैं।

हिंदी विभाग, आसिका विज्ञान महाविद्यालय
मु.पो. खंबेश्वरी पाटणा, आसिका
जिला-गंजम-७६१११० (उड़ीसा)
दूरभाष : ०९७७८६११६९

आलेख

वैश्विक हिंदी की भावी चुनौतियाँ

● राजेश्वर उनियाल

आज हिंदी विश्वभाषा का रूप लेती जा रही है। हम यह भी कह सकते हैं कि वर्तमान समय में हिंदी विश्वभाषा के मुहाने पर दस्तक देने लगी है। विश्व के ४४ राष्ट्रों के लोगों द्वारा बोली जानेवाली सबसे बड़ी भाषा स्वयमेव विश्वभाषा का दर्जा प्राप्त मानी जा सकती है। हालाँकि संयुक्त राष्ट्र संघ ने २ नवंबर, १९९५ को अरबी, चीनी, अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी एवं स्पेनिश सहित जिन ६ भाषाओं को मान्यता दी है, उसमें हिंदी को वह स्थान नहीं मिल पाया है। इसके बावजूद हिंदी विश्वभाषा की चौखट पर पहुँच चुकी है तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के १८५ में से ९३ राष्ट्रों के अनुमोदन से हिंदी विश्वभाषा भी बन जाएगी।

वर्तमान समय में हिंदी साहित्य के क्षेत्र में एक संपन्न भाषा है। साहित्य की लगभग सभी विधाएँ अर्थात् पद्य में गीत व काव्य तथा गद्य में नाटक, कहानी, उपन्यास, समीक्षा, आलोचना, निबंध आदि एवं इसी के साथ ज्ञान-विज्ञान, वाणिज्य, चिकित्सा, नाभिकीय, अभियांत्रिकी, कृषि, तंत्र-मंत्र, ज्योतिषी, वास्तुशास्त्र, प्रबंधन, वित्त, योग, दर्शन, स्वास्थ्य, प्रकृति, पर्यावरण, दर्शन व मनोचिकित्सा आदि सभी विषयों पर हिंदी में उच्चकोटि का साहित्य उपलब्ध है तथा वर्तमान समय में यह साहित्य और भी विस्तार लेता जा रहा है। निश्चित रूप से भविष्य में विश्व के तमाम आधुनिक विषयों में भी हिंदी का साहित्य उपलब्ध होता रहेगा।

साहित्य के साथ ही हिंदी का संवैधानिक महत्त्व भी है। यह भारत संघ की राजभाषा है। भारत के ९ राज्यों और २ केंद्रशासित प्रदेशों की भाषा पूर्णतया हिंदी है। इसी के साथ ३ अन्य राज्यों व २ केंद्र शासित प्रदेशों ने भी अपनी राज्य की भाषा के साथ हिंदी को भी अपनाया है। भारत के साथ ही सूरीनाम, फिजी, त्रिनिडाड, गुयाना, मॉरिशस, थाईलैंड, सिंगापुर, इन सात देशों में भी हिंदी वहाँ की राजभाषा या सह राजभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है।

हिंदी व्यवहार की भी भाषा बनती जा रही है। जैसे-जैसे वैश्वीकरण होता जा रहा है, विश्व एक बाजार के रूप में बदलता जा रहा है। उसके साथ-साथ हिंदी भी आम बोलचाल के साथ ही व्यापार की भाषा बनती जा रही है। भारत की तो यह संपर्क भाषा है ही, दक्षिण एशिया में भी इसे आसानी से समझा व बोला जाता है। इसी प्रकार एशियाई देशों में भी यह संपर्क की भाषा बनती जा रही है तथा इसी के साथ आज पश्चिमी देशों में भी हिंदी बाजार में छाने लगी है। वहाँ लोग बाजार में व आम जनजीवन में भी हिंदी को प्रयोग में लाने लगे हैं।

इन सभी उपलब्धियों को देखकर हम कह सकते हैं कि हिंदी विश्वभाषा का रूप ले चुकी है। आज विश्व के लगभग ३० राष्ट्रों के

जाने-माने साहित्यकार। 'शैल सागर' (काव्य कृति); 'पंदेरा व भाड़े का रिक्शा' (उपन्यास); 'डरना नहीं पर···' (कहानी-संग्रह); 'तीलू रौतेली' (नाटक) चर्चित। 'उत्तरांचली लोक-साहित्य' व 'हिंदी लोक साहित्य' का प्रबंधन तथा संपादन सहित १२०० से अधिक वैज्ञानिक/राजभाषा/साहित्यिक व लोकप्रिय रचनाएँ प्रकाशित। छोटे-बड़े ३२ पुरस्कार प्राप्त।

१७५ विश्वविद्यालयों में हिंदी में उच्चस्तरीय शिक्षा प्रदान की जा रही है तथा कई राष्ट्रों ने अपने व्यवहार में जनभाषा के रूप में अपने देश की भाषा व अंग्रेजी के साथ हिंदी को भी अपनाना प्रारंभ किया है। विश्व हिंदी सम्मेलन सहित विश्व के तमाम संगठनों के माध्यम से भी और भारत के विदेश मंत्रालय के अथक प्रयासों से भी हिंदी विश्व भर में छा रही है। मॉरिशस की संसद् ने १२ नवंबर , २००२ को एक अधिनियम द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना भी की है।

हिंदी की गौरव-गाथा को देखने और सुनने के बाद यह लगता है कि हिंदी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई है। लेकिन जब हम हिंदी की आंतरिक स्थिति का आकलन करते हैं तो हमें यह देखने में आता है कि एक ओर हिंदी का बड़ी तेजी से विकास होता जा रहा है तो दूसरी ओर कुछ कारणों से यह धीरे-धीरे समाप्त भी होती जा रही है। अगर हमने समय रहते इन कमियों की ओर ध्यान नहीं दिया तो आनेवाले समय में हिंदी की वही स्थिति होगी, जो आज लेटिन व संस्कृत की हुई है। ये दोनों भाषाएँ प्राचीन हैं, समृद्ध हैं, संपन्न हैं व अतुलनीय हैं, लेकिन अपने काल में इन भाषाओं के विद्वज्जनों ने इन भाषाओं के भविष्य की चिंता नहीं की, जिसके कारण दोनों भाषाएँ केवल सम्मान की भाषाएँ रह चुकी हैं, लेकिन व्यवहार में आज इनका कहीं अस्तित्व नहीं मिल रहा है। अगर हमने हिंदी के प्रति सजगता नहीं अपनाई तो आनेवाले समय में हिंदी भी लेटिन और संस्कृत की तरह ही कहीं अंधकार में न समा जाए। इसलिए हमें हिंदी के भविष्य के प्रति सजग रहना होगा।

वर्तमान में हिंदी के वैश्विक विस्तार के साथ ही हिंदी को कई सारी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है। इस लेख में हिंदी की दस मुख्य चुनौतियों को तीन भागों में वर्णित किया गया है—वैश्विक चुनौतियाँ, संवैधानिक चुनौतियाँ तथा नीतिगत चुनौतियाँ।

वैश्विक चुनौतियाँ

पहली चुनौती अंग्रेजी का वर्चस्व और दूसरी देवनागरी की अपेक्षा रोमन लिपि का प्रयोग है। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि आज विश्व में

अंग्रेजी ने जो अपना स्थान प्राप्त कर लिया है, हम मानें या न मानें लेकिन वह विश्वभाषा का स्थान ले चुकी है। आज अंग्रेजी विश्व की संपर्क भाषा, पत्राचार की भाषा, व्यापार की भाषा और शिक्षा के माध्यम की भाषा बन चुकी है। अंग्रेजी मूलरूप से इंग्लैंड के एक आदिवासी समाज की भाषा थी, लेकिन जब १६५० में इंग्लैंड ने इस भाषा को अपनाया तो धीरे-धीरे विश्व में जहाँ-जहाँ अंग्रेजों का विस्तार होता गया, वहाँ वह अपने साथ अंग्रेजी को भी ले गए। भले ही बाद में अंग्रेजों का राज्य सिमटता गया, लेकिन अंग्रेजी आज भी वहाँ कायम है। इस प्रकार से आज चाहे न चाहे, विश्व के लगभग ७०-८० देशों में अंग्रेजी व्यापक रूप से छाई हुई है।

दूसरी चुनौती देवनागरी लिपि की है। हालाँकि देवनागरी एक प्राचीन लिपि है, जो कि वेद-पुराणों से होते हुए हिंदी, मराठी, गुजराती व नेपाली आदि कई भाषाओं की भी लिपि है। लेकिन जिस प्रकार से अंग्रेजी भाषा की लिपि रोमन का प्रयोग आधुनिक उपकरणों तथा कंप्यूटर और सोशल मीडिया में तेजी के साथ बढ़ रहा है, उसके मुकाबले देवनागरी लिपि का प्रयोग न के बराबर है। हिंदी बोल-चाल की भाषा के रूप में भले ही बढ़ती जा रही हो, लेकिन ठीक उसके विपरीत देवनागरी लिपि धीरे-धीरे व्यवहार से समाप्त होती जा रही है।

संवैधानिक चुनौती

हिंदी की दूसरी मुख्य चुनौती संवैधानिक चुनौती है। हमें बड़ा गर्व होता है कि भारत संघ की राजभाषा हिंदी है और कई राज्यों ने हिंदी को अपनाया भी है। परंतु यदि हम संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों और धाराओं का अध्ययन करें तो उसके अंदर ऐसे कई प्रावधान हैं, जिसके कारण हिंदी संवैधानिक रूप से उस स्थान को प्राप्त नहीं कर पा रही है, जहाँ कि उसे इन ७० वर्षों में पहुँच जाना चाहिए था।

भारतीय संविधान के भाग १७ में राजभाषा से संबंधित अनुच्छेदों का वर्णन किया गया है। इनमें से अनुच्छेद १२० में संसद् में प्रयोग की जानेवाली भाषा का वर्णन किया गया है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि संसद् में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा तथा इसी प्रकार अनुच्छेद २१० में यह वर्णित किया गया है कि राज्य के विधानमंडल में कार्य विधि द्वारा सम्मत राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा। इन दोनों अनुच्छेदों के साथ अनुच्छेद ३४८ उपबंध का भी प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद ३४८ में यह स्पष्ट किया गया है कि उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों की भाषा अर्थात् सभी काररवाई अंग्रेजी भाषा में ही किए जाएँगे, लेकिन अगर किसी राज्य की विधानमंडल में अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी या उस राज्य की राजभाषा में न्यायालय के कार्यों को करने की स्वीकृति दी है तो वह अन्य भाषा का प्रयोग उच्च न्यायालय के लिए कर सकते हैं। लेकिन इसमें भी उच्च न्यायालय द्वारा अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषा में किसी निर्णय, डिग्री या आदेश को लागू नहीं किया जाएगा, अर्थात् उच्च न्यायालय की काररवाई तो हिंदी या भारतीय भाषा में की जा सकती है, लेकिन आदेश आदि अंग्रेजी के ही प्राधिकृत माने जाएँगे।

इसी प्रकार अनुच्छेद ३४३ में कई धाराओं का वर्णन किया गया है। राजभाषा अधिनियम १९६३ की धारा ३ (३) में यह प्रावधान किया गया है कि केंद्र सरकार के कार्यालय, मंत्रालय, बैंक एवं उपक्रम आदि के १४ ऐसे दस्तावेज होंगे अर्थात् कागजात होंगे, जिनको उन्हें हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ही जारी करना होगा। अर्थात् सीधी सी बात है कि केंद्र सरकार ने १५ ऐसे कार्य निर्धारित कर दिए हैं, जिनमें अंग्रेजी अनंतकाल तक लागू रहेगी।

इसी प्रकार अनुच्छेद ३४५ में राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं का वर्णन किया गया है। किसी राज्य का विधानमंडल उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से विधि द्वारा किसी एक भाषा या हिंदी को स्वीकार कर सकता है, लेकिन जब तक राज्य इस प्रकार का उपबंध न करे तब तक अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता रहेगा, जो कि संविधान के लागू होने से पहले किया जा रहा था। अब विडंबना यह है कि स्वतंत्रता के ७० वर्ष बाद अभी भी १७ राज्य एवं दो केंद्र शासित प्रदेश ऐसे हैं, जिनके विधानमंडल ने हिंदी को अंगीकार नहीं किया है। हम यह भी कह सकते हैं कि कुल ३६ राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में से १९ राज्य एवं केंद्रशासित प्रदेश ऐसे हैं, जिनकी विधानमंडल में उन राज्यों की राजभाषा भले ही लागू है, लेकिन वहाँ हिंदी को मान्यता नहीं दी गई, इसी प्रकार अनुच्छेद ३४६ में इस बात का प्रावधान किया गया है कि दो राज्यों और संघ के बीच पत्रादि की भाषा क्या होनी चाहिए। संघ के लिए तो ठीक है, राजभाषा हिंदी है, इसलिए आज संघ के साथ हिंदी में पत्राचार किया जा सकता है। लेकिन अगर भारत के दो राज्य आपस में पत्राचार करना चाहते हैं तो उन्हें आपस में यह करार करना होगा कि वह हिंदी भाषा में पत्राचार करें। अगर वह यह तय करते हैं कि उनके पत्राचार की भाषा हिंदी होगी, तभी वह हिंदी में पत्राचार कर सकते हैं। भारत के अभी केवल १२ राज्य एवं ५ केंद्रशासित प्रदेश ऐसे हैं, जो आपस में पत्राचार हिंदी में कर सकते हैं। लेकिन इन राज्यों को अगर अन्य १७ राज्यों और २ केंद्रशासित प्रदेशों की राज्य सरकारों के साथ पत्राचार करना होगा तो उन्हें अंग्रेजी का ही उपयोग करना होगा।

संविधान निर्माताओं ने संविधान-निर्माण के समय इस बात का तो उल्लेख कर दिया कि भारत की राष्ट्रीय मुद्रा क्या होगी, राष्ट्रीय ध्वज क्या होगा, राष्ट्रगान क्या होगा, राष्ट्र पशु कौन होगा, राष्ट्र का पक्षी कौन होगा, राष्ट्र का वृक्ष कौन सा होगा, लेकिन इस राष्ट्र की भाषा कौन सी होगी, इस बात का उल्लेख संविधान में स्पष्ट रूप से नहीं किया गया। जबकि १९१८ में साहित्य सम्मेलन, इंदौर में हिंदी को राजभाषा की अपेक्षा राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव पास किया गया था।

इसी के साथ राजभाषा अधिनियम १९६३ की धारा ६ और ७ से जम्मू-कश्मीर राज्य को तथा राजभाषा नियम १९७६ से तमिलनाडु राज्य को मुक्त कर दिया गया है, अर्थात् भारतीय संविधान का राजभाषा अधिनियम की दो धाराएँ जम्मू-कश्मीर पर व राजभाषा नियम तमिलनाडु राज्य में प्रयोग में नहीं लाए जा सकेंगे।

यहाँ तक भी होता तो भी कोई बात नहीं थी, लेकिन हिंदी के

अस्तित्व पर एक बहुत बड़ी चोट सन् २००३ में भारतीय संसद् द्वारा कर दी गई है। भारतीय भाषाओं के विकास के लिए भारतीय संविधान में अष्टम अनुसूची बनाई गई है, जिसमे संविधान के प्रारंभ में हिंदी, उर्दू, कश्मीरी, पंजाबी, असमी, बँगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, कन्नड, मलयालम व संस्कृत १४ भाषाएँ थीं। बाद में सन् १९६७ में सिंधी भाषा को मिलाकर १५ भाषाएँ, फिर १९९२ में कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली ३ भाषाओं तथा सन् २००३ में बोडो, डोगरी, मैथिली व संथाली इन चार अन्य भाषाओं को मिलाकर अब इस सूची में २२ भाषाएँ हो गई हैं। अष्टम अनुसूची बनाने के पीछे संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य था कि भारत की जो प्रमुख भाषाएँ हैं, उन भाषाओं को विशेष रूप से सम्मान मिलता रहे, उनका विकास हो, प्रचार-प्रसार हो, उनका साहित्य एवं साहित्यकारों का सम्मान हो तथा राज्य सरकार अपने राज्य के राजकाज हेतु इन भाषाओं को व्यवहार में ला सके। लेकिन धीरे-धीरे क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यकारों के मन में कई स्वार्थ के बीज उपजने लगे।

आप सोचिए, जब इस देश में हिंदी को मातृभाषा के रूप में स्वीकारने वाले बमुश्किल 1-२ प्रतिशत लोग होंगे तब आप इस अधिकार के साथ कह पाएँगे कि हिंदी भारत संघ की राजभाषा रहनी चाहिए। निश्चित रूप से उस क्षण में फिर अंग्रेजी का वर्चस्व, जो आज भी विद्यमान है, वह सुनिश्चित हो जाएगा और जाने-अनजाने में हम अपनी राष्ट्रभाषा और अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के साथ ही कहीं-न-कहीं अहित कर चुके होंगे।

उदाहरण के लिए साहित्य अकादमी के पुरस्कार तथा सम्मान आदि में जब विभिन्न भाषाओं को वर्णित किया गया तो क्षेत्रीय भाषा के साहित्यकारों को लगा कि वे इन परिष्कृत भाषाओं के क्षेत्र में इन पुरस्कारों के हकदार तो नहीं हो पाएँगे, इसलिए हो सकता है कि अगर वह अपने क्षेत्रीय साहित्य के माध्यम से आवेदन करेंगे तो इसके हकदार बन सकते हैं। इसके साथ ही अष्टम अनुसूची के कुछ अन्य लाभ भी हैं, जैसे संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में उत्तर लिख सकते हैं तथा अन्य कई संवैधानिक लाभ भी उठा सकते हैं। अगर इतना होता तो कोई बात नहीं थी, लेकिन समस्या तब होती है, जब मैथिली के बाद हिंदी की अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ भी अष्टम अनुसूची के अंतर्गत अलग से वर्णित होने के लिए आगे आने लगीं और सरकार उनकी बात को स्वीकार कर उन्हें अष्टम अनुसूची में वर्णित करने लगी।

उदाहरण के लिए सन् २००३ में मैथिली भाषा को भी अष्टम अनुसूची में वर्णित कर दिया गया है। अगर आप गौर से हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ें तो कई विद्वानों ने इसे स्पष्ट किया है कि हिंदी भाषा हिंदी की क्षेत्रीय भाषाओं से संपन्न और समृद्ध हुई है। इन प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं में से एक मैथिली भाषा भी है। अब आज अगर आप मैथिली भाषा को अष्टम अनुसूची से अलग कर देंगे तो इससे हिंदी साहित्य का एक क्षेत्र कट जाएगा अर्थात् मैथिली साहित्य हिंदी से अलग हो गया। दूसरी बात जो उससे भी बढ़कर है, वह यह है कि हिंदी भाषी लोग जिनकी मातृभाषा कल तक हिंदी थी, वह अष्टम अनुसूची में आते ही अपनी मतृभाषा मैथिली लिखवाने लगेंगे। सीधी सी बात है, इससे हिंदीभाषी का प्रतिशत भी कम होने लगेगा।

इतना भी होता तो कोई बात नहीं थी, लेकिन जब मैथिली को अष्टम अनुसूची में वर्णित कर दिया तो फिर भोजपुरी ने क्या बिगाड़ा। आज भोजपुरी को भी वर्णित कर देंगे, कल अवधी, परसों ब्रज, राजस्थानी, मारवाड़ी, मेवाड़ी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, हिमाचली व हरियाणवी आदि हिंदी की जितनी भी क्षेत्रीय भाषाएँ हैं, सभी धीरे-धीरे अष्टम अनुसूची में वर्णित होने लगेंगी। परिणाम क्या होगा कि इस देश में हिंदी मातृभाषी तब शायद एक-दो प्रतिशत ही रह जाएँगे और यह काम होने नहीं लगेगा बल्कि हो चुका है।

मैंने स्वयं सूचना के अधिकार के अंतर्गत भारत सरकार के गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग से इसकी जानकारी माँगी तो मुझे अवगत कराया गया कि वर्तमान में ३८ भाषाएँ अष्टम अनुसूची में वर्णित होने के लिए केंद्र सरकार के पास विचाराधीन हैं। इन ३८ भाषाओं में से २१ भाषा-बोलियों का हिंदी भाषा से संबंध है। अर्थात् आज नहीं तो कल जब भी ये भाषाएँ अष्टम अनुसूची में आ जाएँगी, हिंदी के २१-२१ टुकडे हो जाएँगे। जैसे-जैसे ये भाषाएँ अष्टम अनुसूची में वर्णित होने लगेंगी, वैसे-वैसे लोग अष्टम अनुसूची के कारण अपनी मातृभाषा हिंदी के बजाय क्षेत्रीय भाषाओं को लिखवाने लगेंगे।

आप सोचिए, जब इस देश में हिंदी को मातृभाषा के रूप में स्वीकारने वाले बमुश्किल १-२ प्रतिशत लोग होंगे तब आप इस अधिकार के साथ कह पाएँगे कि हिंदी भारत संघ की राजभाषा रहनी चाहिए। निश्चित रूप से उस क्षण में फिर अंग्रेजी का वर्चस्व, जो आज भी विद्यमान है, वह सुनिश्चित हो जाएगा और जाने-अनजाने में हम अपनी राष्ट्रभाषा और अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के साथ ही कहीं-न-कहीं अहित कर चुके होंगे।

नीतिगत चुनौतियाँ

संवैधानिक चुनौतियों की साथी कुछ नीतिगत चुनौतियाँ भी हैं, जिसके कारण हिंदी का वैश्विक स्वरूप कहीं-न-कहीं डगमगाता नजर आ रहा है। इन नीतिगत चुनौतियों में से सबसे पहली चुनौती है शिक्षा में अंग्रेजी का प्रभाव। आज प्राइमरी स्तर से लेकर उच्चस्तर तक शिक्षा का माध्यम धीरे-धीरे अंग्रेजी बनती जा रही है। जिन विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा ना भी हो, छात्र अपनी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे हों, लेकिन एक स्तर के बाद उनको भी अंग्रेजी की और अपने को ढालना पड़ता है। शिक्षा से ही रोजगार संभव होता है। शिक्षा से ही भविष्य की हर मीनार बनाई जाती है और जब शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगा तो हम अच्छी तरह से कल्पना कर सकते हैं कि हिंदी का

स्थान कहाँ पर होगा।

दूसरी नीतिगत चुनौती है हिंदी के प्रति शासकीय उदासीनता। संविधान के अनुच्छेद ३५१ के अंतर्गत केंद्र सरकार की जिम्मेदारी है कि वह हिंदी के विकास का निर्वाह करे। केंद्र सरकार के साथ ही राज्य सरकारों को भी चाहिए कि वे हिंदी के विकास के लिए सतत रूप से प्रयास करें। लेकिन राज्य सरकारों में हिंदी प्रदेश के राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों में हिंदी केवल माध्यमिक शिक्षा तक उपयोग में लाने तक ही सीमित रह गई है। इसके अलावा किसी भी हिंदीभाषी राज्य ने आज तक हिंदी के विकास के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया। हालाँकि कई राज्यों ने हिंदी साहित्य के विकास के लिए राज्य हिंदी अकादमी अवश्य गठित की है, लेकिन इनका कार्य भी केवल हिंदी के चुनिंदा साहित्यकारों को पुरस्कार, सम्मान व अनुदान देने तक सीमित तीसरी नीतिगत समस्या भी शासकीय तारतम्यता से संबंधित है। हिंदी के विकास की जो जिम्मेदारी भारत सरकार को दी गई है, उसमें भी तारतम्यता का अभाव है। उदाहरण के लिए भारत की राजभाषा अर्थात् सरकारी कार्यों, उपक्रमों व बैंकों में हिंदी का विकास हो, इस कार्य को भारत का राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के अधीन देखता है। जबकि शिक्षा एवं आम जनता के बीच में हिंदी के विकास की जिम्मेदारी मानव संसाधन विकास मंत्रालय को दी गई है, जो कि अपने विश्वविद्यालयों व केंद्रीय हिंदी निदेशालय तथा निजी संस्थाओं आदि के माध्यम से हिंदी के विकास हेतु प्रयासरत है। ठीक इसी तरह से विदेशों में भी हिंदी के प्रचार-प्रसार की जिम्मेदारी भारत के विदेश मंत्रालय को दी गई है, जो कि हर ३ वर्ष के बाद एक विश्व हिंदी सम्मेलन का भी आयोजन करता है तथा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता दिलाने का काम भी इसी मंत्रालय के अंतर्गत है। अब प्रश्न यह उठता है कि जिस हिंदी को स्वयं भारत सरकार की नीतियों के कारण तीन अलग-अलग मंत्रालयों में बाँटा गया है, अर्थात् गृह-मंत्रालय, विदेश मंत्रालय एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा इन तीनों मंत्रालयों के मध्य भी हिंदी के विकास हेतु कोई तारतम्यता नहीं है तो हिंदी का समुचित विकास कैसे होगा?

शासकीय चुनौतियों के साथ-साथ हिंदी के विकास हेतु जो विभिन्न गैर-सरकारी संस्थाएँ हैं, उनके निजी एवं सामाजिक जीवन में भी हिंदी की दुर्दशा देखने को मिलती है। इस वर्ग में हिंदी के साहित्यकार, पत्रकार, शिक्षक, राजभाषा अधिकारी व हिंदीसेवी जन आदि सभी वर्ग समाहित हैं।

हिंदी अगर आज बढ़ती जा रही है, वैश्विक स्वरूप लेती जा रही है, आगे भी बढ़ती जाएगी तो उस का सबसे बड़ा योगदान स्वयं हिंदी को ही दिया जाना चाहिए। क्योंकि हिंदी एक वैज्ञानिक व सरल भाषा है। यह देश-काल, समाज और परिस्थिति के अनुसार अपने को मोड़ने में सक्षम है और हर धारा में सम्मिलित होने की इसके अंदर क्षमता है। इसलिए यह आसानी के साथ बढ़ते हुए विश्वमंच पर प्रतिष्ठित हो रही है। लेकिन उसके समक्ष जिस प्रकार से अंग्रेजी तथा विश्व की अन्य प्रतिष्ठित भाषाएँ, यथा जर्मनी, फ्रेंच, मंदारिन, स्पेनिश, रशियन, अरबी आदि अपने प्रभाव को बढ़ा रही हैं, उनके समक्ष हिंदी कितना टिक पाएगी, यह कहना भी मुश्किल है। हाँ, यह बात अवश्य है कि हिंदी विश्व की व्यवहार की भाषा अवश्य बनती जा रही है, व्यवहार अर्थात् बोलचाल की भाषा। लेकिन लिपि में यह धीरे-धीरे समाप्त होती रहेगी अर्थात् इसका लिखित स्वरूप मिटता रहेगा। फिर भी यदि हम हिंदी की उपरोक्त चुनौतियों पर एक बार आत्मविश्लेषण करें और इस विश्लेषण के बाद यदि हम इसका निदान भी कर सकें तो आशा है कि हिंदी जिस मुकाम से बढ़ती जा रही है, वह अनवरत बढ़ती जाएगी और एक दिन हिंदी विश्वभाषा के रूप में अवश्य प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगी।

उप-निदेशक (राजभाषा)
केंद्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान
यारी रोड, वरसोवा, मुंबई-४००६१
दूरभाष : ०९८६९११६७८४

लघुकथा

क्षतिपूर्ति के चेहरे

● **सत्य शुचि**

हौज में पानी का टैंकर डलवाने के बाद घर एक विस्मयकारी घटना की मानिंद चौकन्ना हो गया और फटाक् से वह बाबूजी के कमरे में जा पहुँचा।

''...बाबूजी!'' उसके स्वर में तल्खी थी, ''आप घर में किस बात की रोटी खाते हैं?''

''बेटा, पानी का जरा ध्यान नहीं रहा मुझे...।'' एक लाचारगी बाबूजी के चेहरे पर तैरने लगी।

''मगर अभी आपको खुद की पेंशन से टैंकर की राशि देनी होगी, बाबूजी!'' मुख्तसर में बेटे का फैसला कमरे में गूँजा।

''आखिर, मेरी गलती कहाँ थी, बेटा।'' पसीने से तर-बतर बाबूजी गिड़गिड़ाए, ''अगर पानी बेसमय आए तो...''

''बाबूजी, आपको जितना कहा जाए, उतना ही करें, बस!'' और द्रुत गति से वह निकल गया।

अब अकेले-एकांत में बाबूजी को उस वक्त लगने लगा कि आज हद दर्जे का कमीनापन आदमी की रगों में क्यों घुलता-मिलता जा रहा है? अंत-पंत इसकी भी कोई-न-कोई वजह तो होगी।

और पलक झपकते ही बाबूजी जार-जार रोने लगे। बहरहाल, बेटे के जागरूकता पाठ-सबक से अभिभूत बाबूजी अंदर-ही-अंदर कहीं दरक-दरक गए।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१
दूरभाष : ०९४१३६८५८२०

तूलिका

● लवलेश दत्त

'अरे, यह क्या कर रहे हो···छोड़ो न!'

'कुछ नहीं, सच तो यह है कि तुम्हारी इन लटों को सुलझाना···उफ जाने क्या हो जाता है मुझे तुम्हें इस रूप में देखकर!'

'हटो भी, हर समय मुझे छूने का मौका ढूँढ़ते रहते हो। मैं यहाँ आया ही नहीं करूँगी!'

'अच्छा तो फिर कहाँ जाया करोगी?' अब तक उसने तूलिका को अपनी बाँहों में इतना कस लिया था कि दोनों की आती-जाती साँसें एक दूसरे को महसूस हो रही थीं।

'कहीं भी जाऊँ, पर यहाँ न···नहीं।' दो अंगुलियाँ अब तक तूलिका के होठों पर थीं।

तूलिका की आँखें बंद हो चुकी थीं। अधर कँपकँपा रहे थे, जैसे उन्हें किसी के अधरों के स्पर्श की प्रतीक्षा थी। 'रहने दो न, अजीब सी गुदगुदी होने लगती है, जब तुम छूते हो।' उसने धीरे से कहा, लेकिन एक झटके के साथ उसकी आँखें खुल गईं और उसकी बीती यादों का सिलसिला एकदम टूट गया। उसने खुद को राजपुर रोड पर पाया। इधर-उधर देखकर पता लग रहा था कि उसकी कार जाम में फँसी है। उसने ड्राइवर से पूछा, ''क्या हुआ?''

''जाम लगा है दीदी।'' ड्राइवर ने तुरंत उत्तर दिया।

''उफ्फ···'' वह थोड़ी विचलित हो उठी। उसने घड़ी देखी, 'ग्यारह बज रहे हैं, अब तक तो आ गए होंगे।' उसने मन-ही-मन कहा। कार का शीशा थोड़ा सा खोला। ठंडी हवा ने उसके गुलाबी गालों को छुआ तो वह मुसकरा उठी, जैसे उसे कुछ याद आ गया हो। अपने गालों पर हवा का ठंडा स्पर्श उसे किसी के होंठों के स्पर्श की तरह लगा, वह फिर से बीते दिनों को याद करने लगी। हर बात, हर घटना उसके मानस-पटल पर चित्र की भाँति चलने लगी।

तब वह बीस वर्ष की थी और फाइन आर्ट्स की छात्रा थी। पिताजी का ट्रांसफर मसूरी हो गया था। मसूरी का नाम सुनते ही वह रोमांचित हो उठी थी। वैसे भी पहाड़ों के चित्र तो उसने बहुत देखे ही नहीं, बनाए भी थे, लेकिन वे सारे तो चित्र थे। सच में पहाड़ कैसे लगते होंगे, यह सोचकर उन्हें देखने के लिए वह उतावली हो उठी। पिताजी के साथ पूरा परिवार मसूरी शिफ्ट हो गया।

सचमुच के पहाड़ और वादियाँ देखकर वह बहुत खुश थी। हर समय जाड़ों का मौसम, सुबह-सुबह पहाड़ों के पीछे से निकलता सिंदूरी सूरज, वाह! लगता था, वह स्वर्ग में आ गई है। मसूरी और उसके

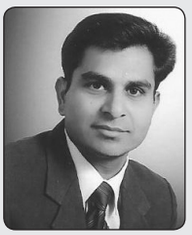

सुपरिचित कवि-कहानीकार। अब तक 'भावत्रयी', 'तमन्ना', 'सपना', 'श्यामा' (कहानी-संग्रह) तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी रामपुर से कहानी वाचन एवं प्रसारण। लखनऊ में 'बोल्ट अवार्ड', 'विद्यासागर सम्मान', वाराणसी के साहित्यिक संघ द्वारा 'साहित्यश्री सम्मान'। संप्रति अध्यापन एवं स्वतंत्र लेखन।

आस-पास घूमने-फिरने में पूरा एक सप्ताह निकल गया। कभी कैंपटी फाल कभी कंपनी बाग, कभी लाइब्रेरी, कभी सिस्टर बाजार तो कभी लंढौर···।

उस दिन माल रोड पर घूमते हुए उसकी नजर एक बोर्ड पर पड़ी, जिस पर लिखा था 'कलामंदिर'। अनुमान लगाया कि संभवत: यह चित्रकला से संबंधित होना चाहिए। चूँकि वह स्वयं चित्रकला की छात्रा थी, तो उत्सुक होना स्वाभाविक ही था। सामान्य से थोड़ा तेज कदम बढ़ाते हुए वह कलामंदिर की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर एक हॉलनुमा कमरे में पहुँची। 'वाह!' वहाँ का दृश्य देखते ही उसके मुँह से अनायास निकला, 'जैसा मैंने सोचा था बिल्कुल वही···सचमुच यह तो चित्रकला का स्टूडियो है।' स्वयं से कहते हुए उसने यहाँ-वहाँ देखा, किंतु सिवाय चित्रों के वहाँ उसे कोई और नहीं दिखा। सो वहाँ लगे चित्रों को वह गौर से देखने लगी। यहाँ-वहाँ फैले सामान, ब्रुश, विभिन्न प्रकार के रंग और अलग-अलग स्टैंड पर लगे अलग-अलग कैनवस, जिनपर अलग-अलग चित्रकारी देखकर उसे लगा कि वह किसी परीलोक में आ गई है। उसने इतनी सुंदर चित्रकारी कभी नहीं देखी थी। उसे देखकर मानो उसपर जादू हो गया था। सम्मोहित सी वह कभी इधर देखती तो कभी उधर, हर चित्र मानो उससे कुछ कहता हुआ प्रतीत होता। बहते झरने को तो देखो, लगता है, बस पानी अभी बाहर आकर फैल जाएगा···और फूल पर बैठी वह तितली बस उड़ने ही वाली है! अरे वह देखो, उस लड़की के उड़ते बाल मानो हवा के झोंके के साथ उसके चेहरे पर बिखर जाएँगे—वह मन-ही-मन बुदबुदाती रही कि अचानक उसकी नजर एक पोट्रेट पर पड़ी, जिसका शीर्षक था 'आँखें'। उस पोट्रेट में बनी लड़की की आँखें निश्चित रूप से न जाने कितने प्रश्न और कितने उत्तर का संगम लग रही थीं। उसकी आँखों में ऐसा सम्मोहन था कि बस अब पलक झपकने ही वाली है। वह उस पोट्रेट में पूरी तरह खो चुकी थी कि अचानक एक पुरुष स्वर ने उसके सम्मोहन को तोड़ा, ''यह एक

पोट्रेट है।'' वह एकदम चौंक गई। मुड़कर देखा कि उसके पीछे एक अट्ठाईस-तीस वर्ष का व्यक्ति नीली जींस और सफेद कुरता पहने खड़ा है। बाल लंबे और बेतरतीब हैं, चेहरे पर हल्की-हल्की दाढ़ी से लगता है कि लगभग पंद्रह दिनों से दाढ़ी नहीं बनी है। हल्की सी मुसकान उसके व्यक्तित्व को निखार रही थी। उस मुसकराहट में एक अजीब सी कशिश थी। उसने देखा तो जैसे उसकी ओर खिंचाव सा लगा। लेकिन शीघ्र ही उसने स्वयं को सँभाल लिया। उसे समझते देर न लगी कि यही कलामंदिर के कलाकार हैं, क्योंकि कॉलेज में एक बार सर ने बताया था कि जो जितना बड़ा कलाकार होता है, उसके व्यक्तित्व में उतना ही आकर्षण होता है, जो बरबस ही लोगों को अपनी ओर खींच लेता है।

'आपको पेंटिंग्स कैसी लगीं?' उस मुसकराते चेहरे ने प्रश्न किया।

'इट्स ऑसम···आपने बनाई हैं?' उसने तुरंत उत्तर दिया।

'हम्म···ऑल मोस्ट···मेरी ही हैं, लेकिन मेरे स्टूडेंट्स की भी हैं, जो यहाँ सीखने आते हैं।' कुछ ब्रुश और रंगों के ट्यूब्स को एक डिब्बे में डालते हुए उसने कहा।

'आप···आप पेंटिंग सिखाते हैं?' प्रश्न के साथ खुशी उसके चेहरे पर थी।

'जी हाँ, यह मेरा ही स्टूडियो है।' उसने हँसते हुए कहा, 'आपका परिचय?'

'जी मेरा नाम तूलिका है, मेरे पापा का ट्रांसफर यहाँ हुआ है। अभी एक हफ्ते पहले ही हम यहाँ शिफ्ट हुए हैं। मैं फाइन आर्ट्स की स्टूडेंट हूँ, क्या आप···आप मुझे सिखाएँगे?' वह एक ही साथ सबकुछ कह गई और उसके चेहरे की ओर देखने लगी।

'मैं क्या सिखा सकता हूँ किसी को, सीखना तो खुद ही होता है।' मुसकराते हुए उसने दार्शनिक अंदाज में कहा।

'तो मैं कब से आऊँ?' उसने झट से पूछा।

'आपकी मर्जी है, सीखना आपको है, जो समय आपको उपयुक्त लगे।' उसने एक स्टैंड पर कैनवस रखते हुए कहा।

'सुबह दस बजे या ग्यारह? आप ही बताइए!' उसने कहा।

'ग्यारह ठीक है, आप आ सकती हैं।' उसने कैनवस का आकलन किया।

'अ···और फीस?' उसने संकोच से कहा।

'हा हा हा···फीस भी ले लेंगे, पहले आप आइए तो, मैं भी तो देखना चाहता हूँ कि आपके साथ कितनी मेहनत करनी होगी?' उसने अपना सिर हिलाते हुए कहा।

'थैंक्यू सर, थैंक्यू वैरी मच सर! मैं कल ही से आ जाऊँगी।' कहते हुए वह बहुत खुश थी।

'आपका स्वागत है, वेलकम' कहकर उसने कोरे कैनवस पर ब्रुश चलाना शुरू कर दिया।

मन तो नहीं था, फिर भी वह इस खुशी में सीढ़ियों से नीचे उतर कर माल रोड पर आ गई कि कल से ड्राइंग पेंटिंग की क्लासेज शुरू होने जा रही हैं। वह भी इतने अच्छे कलाकार से। 'अरे मैंने उनका नाम तो पूछा ही नहीं', अचानक उसे याद आया, 'चलो, कल पूछूँगी।' स्वयं को समझाकर वह तेजी से घर की ओर चल पड़ी।

कलामंदिर और कलाकार अब तक सैकड़ों बार उसके मस्तिष्क में आ चुके थे। सारी रात वह कलामंदिर के स्वप्न देखती रही थी। पता नहीं क्यों, उसे लगता था कि उस कलाकार में एक आकर्षण है। 'शायद यह उसका भ्रम हो', खुद को कई-कई बार समझाया। रात गहरा रही थी और उसी में नींद ने भी आकर उसे अपने पाश में कब बाँध लिया, पता ही नहीं चला। पहाड़ों की सुबह बहुत सुंदर होती है। धीमे-धीमे सूरज आकाश की ओर लाली बिखेरता हुआ चढ़ता है और कोहरा नीचे की ओर बैठता जाता है। हर ओर एक स्निग्धता, कोमलता और मीठी-मीठी धूप बिखर जाती है। ऊँची पहाड़ी पर चीड़ के पेड़ों के बीच से आती धूप की किरणें सबके मन पर ढेरों चित्र बनाने लगती हैं। पहाड़ों के सूर्योदय का सौंदर्य देखते ही बनता है।

'क्यों, आज से पेंटिंग क्लासेज नहीं जाना? उठ जा बेटा, साढ़े आठ बज चुके हैं।' पास के स्टूल पर चाय का प्याला रखकर माँ ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

'क्या, साढ़े आठ···ओह! बहुत देर हो गई।' वह झट से उठ बैठी।

'चलो, नहा-धोकर, फ्रेश होकर आओ, मैं नाश्ता लगाती हूँ।' माँ के मीठे स्वर के साथ उसने चाय की चुस्की ली।

सड़क पर चहल-पहल थी। उसने घड़ी देखी, 'साढ़े नौ बज रहे हैं, मैं समय से पहुँच जाऊँगी।' सोचते हुए वह सामान्य गति से कलामंदिर की ओर बढ़ने लगी। पता नहीं क्यों, उसे बार-बार उस कलाकार की मुसकराहट याद आ रही थी। न जाने कैसा खिंचाव है उसकी मुसकराहट में। यही सब सोचते हुए वह कलामंदिर की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर हॉल में जा ही रही थी कि उसने देखा कि कलाकार किसी तसवीर में तल्लीन होकर लगा हुआ है। उसकी तल्लीनता तोड़ने के लिए उसने धीरे से कहा, 'गुड मॉर्निंग सर!'

'ओह! आ गई आप···आइए!' कलाकार ने अपने कैनवस को एक कपड़े से ढक दिया।

वह उसकी तरफ आया और उसकी आँखों में देखकर मुसकराते हुए बोला, 'वैसे मेरा नाम संगम है, आप मुझे संगम कहकर भी बुला सकती हैं। सर बहुत फॉर्मल लगता है।'

'ज जी···पर आप तो···' संगम की आँखों में देखते ही न जाने उसे क्या हो गया, 'ठीक है।' कहकर वह सामने पड़ी कुरसी पर बैठ गई।

'तूलिकाजी, यह रहा कैनवस, आपके हाथों का जादू देखने के लिए यह स्वयं को आपके हाथों में समर्पित करता है। लीजिए, उठाइए ब्रश व रंग और शुरू हो जाइए।' उसने एक नया कैनवस स्टैंड पर

लगाकर उसकी ओर किया।

वह एक दम सकपका गई, 'पर मुझे तो···मैं तो खुद आपसे सीखने आई थी···और आप···।'

'अरे, पहले मैं देखूँ तो कि आपको क्या आता है, उसी हिसाब से मैं आपको सिखाऊँगा न। चलिए, शुरू हो जाइए।' उसने इतने प्यार और आत्मीयता से कहा कि उसने ब्रुश से उस कैनवास पर चित्र बनाना शुरू कर दिया। संगम भी अपने उसी कैनवास की ओर चल दिया, जिसपर वह पहले से ही चित्र बना रहा था। लगभग आधे घंटे बाद तूलिका ने उसे पुकारा, 'देखिए, बस और तो कुछ मेरी समझ में नहीं आ रहा।'

संगम उसकी तरफ आया और चित्र देखकर मुसकराने लगा, 'हम्म···चित्र तो अच्छा है, लेकिन सचमुच बहुत कुछ सीखना पड़ेगा आपको।' और उसने ब्रुश उठाकर उस चित्र को ठीक करना आरंभ कर दिया। तूलिका संगम के हाथ में चलते ब्रुश को देखकर और उससे अपने ही चित्र पर होते सुधार को देखकर आश्चर्यचकित रह गई। मन-ही-मन बुदबुदाती, 'वाह···क्या सधा हुआ हाथ है! छूते ही मेरा चित्र कमाल का बन गया। सचमुच इनमें कोई दिव्य शक्ति है।' पंद्रह मिनट तक कुछ सुधार करने के बाद संगम ने कहा, 'यह देखिए···इस प्रकार हाईलाइट लगाते हैं। रंगों का संयोजन आँखों को अच्छा लगनेवाला होना चाहिए, चुभनेवाला नहीं।' वह संगम की ओर देखकर मंत्रमुग्ध सी उसकी बातें सुन रही थी। संगम भी उसे चित्रकला की बारीकियाँ बताने में लग गया।

□

समय बीतता रहा। एक दिन तूलिका जैसे ही हाल में पहुँची, उसने देखा कि दस बरस का एक लड़का एक हॉल की सफाई कर रहा है। पूछने पर पता चला कि उसका नाम जगत है और वह नेपाल का रहनेवाला है। कल रात संगम जिस होटल में खाना खा रहा था, वहीं से उसे अपने साथ ले आया, क्योंकि प्लेट टूट जाने के कारण होटल मालिक उसे बुरी तरह पीट रहा था। संगम से देखा न गया और उसने उसे अपने साथ रख लिया। यह सब सुनकर तूलिका का हृदय संगम के लिए अपार श्रद्धा और प्रेम से भर गया। इतने में संगम भी वहाँ आ गया।

'ओह···तो मैडमजी बातों में व्यस्त हैं। अरे, अपनी पेंटिंग पूरी कीजिए।' उसने हँसते हुए कहा। जगत अब तक बाहर जा चुका था। तूलिका ने संगम की ओर देखकर पूछा, 'आपकी पेंटिंग का क्या हुआ, जो इतने दिनों से आप बना रहे हैं। एक बार दिखाइए तो।'

'न···न, अभी नहीं, चार दिन बाद दिखाऊँगा।' उसने कहा।

'चार दिन बाद क्यों?'

'क्योंकि उसमें अभी कुछ कमी है और मैं आज बाहर जा रहा हूँ, चार दिन बाद लौटूँगा, तब दिखाऊँगा।' कहते हुए वह तूलिका के पास आ गया।

'चार दिन के लिए बाहर···' तूलिका का खिला हुआ चेहरा एकदम मुरझा गया, 'तो मैं···मेरा मतलब है, स्टूडियो बंद रहेगा?'

'नहीं, आप चाहें तो आकर अपना अभ्यास कर सकती हैं।' संगम ने कहा।

'पर कहाँ जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं?' उसने बेचैन होकर पूछा।

'अरे···अरे, इतना परेशान क्यों हो रही हो? जगत को एक स्कूल में प्रवेश दिलवाने जा रहा हूँ, उसको यहाँ रखूँगा तो पढ़-लिख नहीं पाएगा, इसलिए उसे एक स्कूल में प्रवेश दिलवाकर उसके रहने-खाने का प्रबंध करके चार दिन में लौट आऊँगा।' उसने बहुत प्यार से कहा।

'जगत!' उसने मन में सोचा कि आजकल जब लोग अपनों का साथ नहीं देते, यह एक गैर बच्चे के लिए इतना कर रहे हैं। सचमुच यह एक दिव्यपुरुष हैं। तूलिका के मन में संगम के प्रति प्रेम उमड़ने लगा। उसने संगम का हाथ पकड़ लिया और हिचकते हुए बोली, 'मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ, अगर आपको बुरा न लगे तो।'

'मुझसे प्यार करती हो, यह कहना चाहती हो न!' संगम ने उसके हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर कहा।

'अ···आप कैसे जानते हैं, क्या जादूगर हैं आप?' उसकी आँखें फटी रह गईं, पर अगले ही पल उसने अपनी पलकें झुका लीं, 'सचमुच, आप जादूगर ही हैं और आपका यह स्टूडियो एक परीलोक सा है, सबकुछ कितना अनोखा और सम्मोहित करनेवाला! आई रियली लव यू संगम।' अगले ही पल खुद को सँभालते हुए बोली, 'पर आपको कैसे पता कि मैं···'

'जो रंगों की पूजा करते हैं, उनके लिए प्यार का रंग सबसे पहले दिखाई दे जाता है, आई लव यू टू, तूलिका!' कहकर उसने तूलिका के चेहरे को अपने हाथों में ले लिया, माथे पर अपने होंठ रख दिए। तूलिका लजाकर एक ओर चली गई।

उसके मानस-पटल पर यह सब चल ही रहा था कि ड्राइवर ने आवाज दी, ''दीदी, मंदिर पर थोड़ी देर रुक जाएँ?'' ''अँ···हाँ···हाँ, लेकिन ज्यादा देर मत करना···'' कहकर वह कार से बाहर निकल आई और मंदिर की ओर निहारने लगी। उसे याद आने लगा कि वह संगम के साथ सबसे पहले इसी मंदिर में आई थी। उसने और संगम ने मिलकर भगवान् शिव की पूजा की थी। उस समय दोनों के ही मन में एक-दूसरे का जीवन-साथी बनने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। पुरानी बातें याद करके उसका चेहरा गुलाबी हो गया। उसे याद आया कि जगत को स्कूल में भरती कराकर जब चार दिन बाद संगम वापस लौटा और वह उससे मिलने गई तो पैकिंग पेपर में लिपटा एक कैनवस उसे देते हुए संगम ने कहा था—'हैप्पी बर्थडे'। उसने पैकिंग पेपर हटाया तो अपनी ही इतनी सुंदर तसवीर देखकर वह खुशी और आश्चर्य से पुलककर संगम से लिपट गई और संगम ने उसे कसकर पकड़ लिया। खुद को सँभालते हुए उसने न चाहते हुए भी संगम की बाँहों से स्वयं छुड़ाने की असफल चेष्टा की और संगम ने कहा था कि रहने दो, मत बाहर जाओ मेरी बाँहों से, तूलिका तो कलाकार के हाथों में ही अच्छी लगती है···और संगम ने उसे माथे, गालों और अधरों पर चूमकर अपने प्यार का रंग भर दिया। और तसवीर को वहीं रखकर बोला, 'अपने मंदिर की देवी को यहीं स्थापित करूँगा।' और उसकी तसवीर सामने की दीवार पर लगा दी। वह बहुत-बहुत खुश थी उस दिन।

ड्राइवर मंदिर के दर्शन करके आ चुका था। वह झटपट कार में बैठी और कार मसूरी की नागिन जैसी सड़कों पर चलने लगी। वह फिर अपने सुनहरे अतीत की ओर मुँह करके बैठ गई। उसे वह दिन कभी नहीं भूलता, जब संगम ने उसका चित्र उसे देकर कहा था, 'यह मेरे कलामंदिर की देवी का चित्र है।' सचमुच उसने अपनी इतनी सुंदर तसवीर कभी नहीं देखी थी। उसे संगम की हर बात याद आ रही थी। उसने उससे कहा था कि 'तुम गुलाबी साड़ी में बहुत सुंदर दिखती हो, बसंत पंचमी पर मेरा जन्मदिन है, उस दिन तुम गुलाबी साड़ी में ही आना।' लेकिन शायद विधाता को कुछ और ही मंजूर था। बसंत पंचमी से पहले ही उसके पिता का तबादला इलाहाबाद हो गया और तीन ही दिन में उसे मसूरी से जाना पड़ा। उस दिन वह संगम से मिलकर बहुत रोई थी, 'मैं जा रही हूँ···' संगम ने उसे प्यार से चूमकर कहा था, 'ऐसा नहीं कहते, कहो मैं फिर आऊँगी, कुछ बनकर आऊँगी।' जिस दिन वह मसूरी से चली थी, उस दिन संगम भी मसूरी से बाहर था। वह केवल एक पत्र उसके लिए छोड़कर आई थी। कितना तड़पी थी उससे एक बार मिलने को, लेकिन कोई फायदा नहीं।

आज पूरे पाँच साल बाद वह संगम से मिलने जा रही है। इलाहाबाद में थी तो पत्रों का सिलसिला था, लेकिन इलाहाबाद से फिर पापा का तबादला गुवाहटी हो गया। फिर तो जैसे पत्रों का सिलसिला थम सा गया। अब जब पापा सेवानिवृत्त होकर लखनऊ शिफ्ट हो गए और वह भी फाइन आर्ट्स का कोर्स कंप्लीट करके एक कॉलेज में चित्रकला की प्रवक्ता बन गई तो उसे संगम से मिलने की खुशी दुगुनी प्रतीत हो रही थी। आज उसने गुलाबी रंग की साड़ी पहनी थी। कार अपनी रफ्तार से सर्पीली सड़कों पर दौड़े जा रही थी और उतनी ही रफ्तार से उसका दिल संगम से मिलने को तड़प रहा था। उसने अपने आने की सूचना नहीं दी थी, क्योंकि वह उसे 'सरप्राइज' देना चाहती थी। लगभग चालीस मिनट में वह मसूरी पहुँच गई। कार को पार्किंग में ही छोड़कर वह तेज कदमों से कलामंदिर की ओर बढ़ने लगी। मसूरी का गुलाबी मौसम उसे उसका स्वागत करता हुआ लग रहा था। सड़क के किनारे-किनारे लगे जंगली गुलाब के फूलों को देखकर पूरा वातावरण प्यार के रंग में रँगा हुआ लगता था, जैसे सचमुच दो प्रेमियों के मिलन का साक्षी हो रहा हो। उसके तेज बढ़ते कदम एकदम रुक गए, 'यह क्या, यहाँ तो कलामंदिर हुआ करता था, कहीं वह गलत जगह तो नहीं आ गई। नहीं···नहीं, वह कैसे भूल सकती है उस जगह को, पर कलामंदिर की जगह रॉयल बार एंड रेस्टोरेंट!' आश्चर्य और घबराहट में उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। वह तेजी से उन्हीं सीढ़ियों पर चढ़ने लगी, जो कभी कलामंदिर की सीढ़ियाँ थीं, लेकिन अब सफेद-काले संगमरमर से और स्टील की ग्रिल से सुसज्जित सीढ़ियों पर पैर रखते हुए उसके मन में धक्का लग रहा था। लेकिन फिर भी वह ऊपर हॉल तक पहुँची। हॉल का कायाकल्प हो चुका था। उसे देखते ही दरबान ने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार किया और उसके लिए काँच का दरवाजा खोलकर 'आपका स्वागत है' बोला। वह हॉल के अंदर गई तो देखा कि हॉल में बहुत करीने से मेजें और कुरसियाँ लगी हैं। उसे देखकर लगता ही नहीं था कि वहाँ कभी चित्रकला का स्टूडियो था। वह बेचैन कदमों से वापस आने लगी कि तभी सीढ़ियों से ऊपर आते हुए एक नवयुवक दिखा, जिसका चेहरा जाना-पहचाना था, उसने दिमाग पर जोर डाला, 'अरे, यह तो जगत है!' वह एक दम बोल उठी, 'जगत···!' नवयुवक ने उसकी ओर देखा, 'जी कहिए।'

'य···यहाँ स्टूडियो था···संगम सर···' उसके शब्द लड़खड़ा रहे थे।

'आप तूलिका दीदी हैं?'

'हाँ, तुमने पहचान लिया। यह रेस्टोरेंट···स्टूडियो कहाँ गया?' कहते हुए उसके होंठ सूख रहे थे।

'आइए, ऊपर चलकर बात करते हैं। मैं यहाँ ही रहता हूँ, केयर टेकर हूँ इस रेस्टोरेंट का।' दोनों ऊपर हॉल में आ गए। एक मेज पर बैठते हुए जगत ने कहना शुरू किया, 'आपके जाने के बाद साहब बहुत बुझे-बुझे से रहने लगे थे। बीमार होने के कारण उनसे ज्यादा काम भी नहीं होता था। इस वजह से कई महीनों तक जब मेरी फीस नहीं भर पाए तो मुझे स्कूल से निकाल दिया गया और मैं यहाँ आ गया। एक रात बहुत तेज आँधी चली थी। साहब और मैं देहरादून में ही थे। साहब को डॉक्टर को दिखाने गया था। पता नहीं कैसे, इस कलामंदिर में आग लग गई और सब स्वाहा हो गया।'

'क्या?' उसका मुँह खुला और आँखें फटी रह गईं। खुद को संयत करके बोली, 'अ···और संगम···स···र···' जगत फूटकर रो पड़ा, 'कुछ भी नहीं बचा, कुछ भी नहीं···' आँसू पोंछते हुए वह आगे बोला, 'अगले दिन जब हम वापस आए तो सबकुछ राख ही राख देखकर साहब को जैसे दौरा पड़ गया। पागलों जैसी हालत हो गई और उसी राख में 'मेरे मंदिर की देवी', 'मेरे मंदिर की देवी···' कहकर कुछ ढूँढ़ने-टटोलने लगे। 'जोश में आकर एकदम बाहर भागे और इन्हीं सीढ़ियों से गिर गए···' इस बार वह और जोर से रोया।

तूलिका मानो जड़ हो गई। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उसका गुलाबी रंग पीला पड़ गया। अब तक घने कोहरे ने मसूरी को अपने आगोश में ले लिया था। काँच के शीशे से दिखनेवाला सुंदर दृश्य धुँधला और अस्पष्ट हो चुका था।

शिवछाँह, १६५-ब,
बुखारपुरा, पुराना शहर, बरेली-२४३००५
दूरभाष : ९४१२३४५६७९

खिलती झाड़ी

मूल : **कारमैन बरगोस**

अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

दक्षिण स्पेन में, अलसीरा के पास राजमार्ग से अलग-थलग रमणीय भूमि के टुकड़ों पर नवजात पक्षी की तरह और फैले हुए वृक्षों से रक्षित सफेद मकान खड़े हैं जो दूर से ही यात्रियों के मन में लताकुंज को देखने की चाहना पैदा करते हैं। लताकुंज, जहाँ जंगली लकड़ी के पत्ते अंगूरों की लताओं की टहनियों में अटके मिलते हैं। यहाँ उग्र सूर्य की किरणें पृथ्वी को चमकीले आलिंगन में लपेटती हैं जो जीवन को उत्पन्न करती हैं।

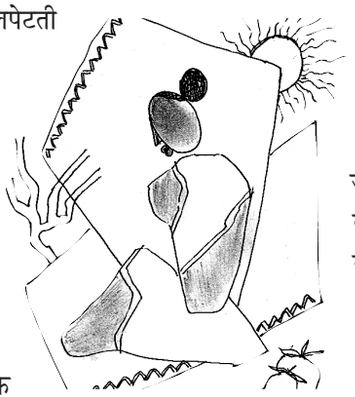

अनाज की कटाई के समय के खेत, मिलकर सुनहरे रंग प्रस्तुत कर रहे थे। अंगूरों की लताओं के पत्तों ने अपनी हरी उलझनों के साथ अंगूरों के घने गुच्छों को धुँधले रूप से दिखाना शुरू कर दिया था। खजूरों के पेड़ फलों से लदी अपनी शाखाओं को बहादुरी से हिला रहे थे और वातावरण में शक्ति की सुगंध तैर रही थी। प्रकृति का यह प्राणदाता श्वास मर्सीडीज के कोमल और थके हुए शरीर में प्रवेश करके उसके रक्त में ऑक्सीजन भरकर उसे नया जीवन प्रदान कर रहा था।

मर्सीडीज पैतृक संपत्ति की मालकिन थी। वह अठारह वर्ष की युवा, रमणीय, कोमल शरीर की अनाथ लड़की थी और दरबार में लगातार सामाजिक उत्सवों के कारण थक चुकी थी।

अब उसका अस्तित्व अवर्णनीय रूप से परिवर्तित हो चुका था। प्यार और उपजाऊपन का बाहरी वातावरण, जो उसको लपेटे हुए था और उसके स्वास्थ्य को नया बनाता था, ने उसी समय उसकी कल्पना को प्रभावित किया। युवा लड़की, जिसको उसके डॉक्टर के नुसखों ने यहाँ रहने के लिए विवश किया था, किसी अनुरक्त किसान के स्वप्न देखने लगी, जो भद्दे देहातियों, जिनसे वह घिरी रहती थी, से वस्तुत: भिन्न था।

साहसी कुँआरी लड़कियों के सिरों में मन की कल्पना किसी तरह चमत्कार करेगी। मर्सीडीज ने कभी प्रेम नहीं किया था और सुंदर तथा प्रशंसनीय महिलाओं की तरह उसने केवल अपनी ही सुंदरता के मंदिर में पूजा की थी। एक दिन उसने अपनी खिड़की के लोहे के कठघरे से बँधी खिलती झाड़ी की शाख देखी। नई खिली फूलों की कलियाँ सुंदर लाली की तड़क-भड़क दिखा रही थीं और उनकी पत्तियों पर ओस के कण पिसे हुए हीरों की तरह चमक रहे थे।

सायंकाल जब वे अंगूरों के कुंज के नीचे एकत्र हुए तो उसने पूछा कि उसके लिए फूल कौन लाया था? मैन्युअल, बीस वर्षीय युवा जो अंगूरों के बगीचे में काम करता था, ने अपनी काँपती आवाज में और अपनी पुरानी टोपी को काँपती अंगुलियों से मोड़ते हुए स्वीकार किया कि उसी ने महिला के लिए फूल तोड़े थे; उसने झाड़ी के नुकीले काँटों से घायल अपने हाथ दिखाए।

युवा महिला के दिल में असाधारण सहानुभूति जाग्रत हुई; उसने अपने आपको विनीत व्यक्ति की आत्मा की मालकिन के रूप में देखा। वह उसकी उत्कंठा और गुप्त आराधना से अति प्रसन्न हुई। इसके बाद मर्सीडीज ने लड़के को सब प्रकार के बहानों के साथ अपने पास रखा, भले ही पड़ोसियों ने तरह-तरह की चर्चाएँ कीं।

प्रतिदिन मैन्युअल उसके लिए खिलती झाड़ी की शाखें लाता था और वह उनसे अपने लिए अद्‌भुत शृंगार की चीजें बनाती थी। उसके नीले-काले बाल छोटे लाल फूलों और छोटी हरी पत्तियों से गुँथे, उसे अद्‌भुत आकृति प्रदान करते थे और आँखों में अधिक चमक लाते थे। उन्हीं फूलों से बना हार उसकी त्वचा के कोमल पीलेपन को और बढ़ाता था; उसके सफेद उड़ते हुए कपड़ों पर यहाँ-वहाँ अस्थिरता से बिखरी हुई झाड़ी की शाखों से वह पवित्र गुफा की ड्रूइड पुजारन नजर आती थी।

मर्सीडीज की दया और मुसकराहट ने मैन्युअल का साहस बढ़ा दिया और उनकी मित्रता ने ग्रामीण जीवन की उस कथा का रूप ले लिया जिसमें महान् महिला अपने आपको देहाती आदमी के स्तर तक झुका लेती है, प्रेम के मधुर वायदे करती है जो लड़के का समस्त जीवन भर देते हैं। उसने स्थिति पर गंभीरता से विचार नहीं किया। उसकी कसकुट रंग की त्वचा, उसकी सुघड़ शक्तिशाली आकृति और उसकी बड़ी एवं तीक्ष्ण आँखों के साथ मैन्युअल उसे सुंदर लगता था; उसका प्रचंड और बर्बर स्वभाव का आदरणीय पूजा में बदलना उसके झूठे अभिमान की मिथ्या प्रशंसा थी। जहाँ तक मैन्युअल का प्रश्न था, वह कम कष्ट महसूस करती थी—परंतु यहाँ सबकुछ था।

एक दिन मर्सीडीज, फार्म पर सभी काम करनेवालों के साथ, पासवाले मंदिर गई। वह लड़कियों से हटकर सिंहासन पर प्रसन्नता से बैठी और उस क्षण की अधीरता से प्रतीक्षा करने लगी कि कब मैन्युल आए और उसका साथ दे, परंतु भोज में आनेवालों में उसके कुछ मित्र भी थे जिन्होंने उस दुनिया की बात की जिसको अपने एकांत के अवकाशों में वह भूल चुकी थी; आनंद और प्रसन्नता की लहर उसपर दौड़ गई।

इस छाप को दूर करने के लिए मर्सीडीज ने मैन्युअल को अपनी आँखों से ढूँढ़ा और अंत में, देहाती भीरुता के कारण उसे अपने पास न आते हुए देख ही लिया। मर्सीडीज उसे बुला सकती थी, परंतु उसने अपने आपको रोके रखा। वह उससे लज्जित थी। उसके मित्र क्या कहेंगे? वह, जो अपने नौकरों में से एक की प्रेमिका है!

उसने मैन्युअल की ओर पुन: देखा। कितना अपना लगता था! मोटे कपड़े की जैकेट पहने, एक लाल रूमाल के छल्ले-से निकालकर गले में बँधा हुआ, गाय के चमड़े से बने भद्दे जूते जो उसके चलने-फिरने में रुकावट पैदा करते थे—वह सोच रही थी कि वह उसे सुंदर कैसे और क्यों समझने लगी है!

वापसी यात्रा उद्विग्न करनेवाली रही। मर्सीडीज शून्यचित्त प्रतीत होती थी और उसकी आँखों ने एक बार भी मैन्युअल की आँखों को नहीं देखा। उसने समझा कि उनके संबंध बहुत दूर तक जा चुके हैं और प्रतिदिन तेजी और आकस्मिक ढंग से बढ़ रहे हैं; उसने मेडरिड लौट जाने के लिए सारे प्रबंध पूरे कर लिये।

एक वर्ष व्यतीत हो गया। हम मर्सीडीज के नगरवाले मकान के शानदार महिलाकक्ष में हैं। युवा महिला आराम-कुरसी पर विश्राम कर रही है और पीला और काँपता हुआ मैन्युअल उसके सामने खड़ा है जिसमें अलसीरावाली कोमल हृदयी युवावस्था पहचान पाना कठिन है।

''तुम्हें देखकर मैं कितना खुश हूँ,'' उसने झूठे मित्रभाव से उसे कहा, ''मुझे बताओ कि तुम कैसे हो और गाँव का क्या हाल है?''

जब उसने कोई उत्तर नहीं दिया, तो उसने कहना जारी रखा—''क्या तुम चिंतित हो, मेरे छोकरे? मैंने तुम्हें इसलिए बुलाया है कि मैं विवाह करने जा रही हूँ। मेरे पति को वहाँ काम से जाना पड़ेगा और मैं नहीं चाहती कि उसको पता चले—तुम समझते हो कि मेरा अभिप्राय क्या है। मैं एक किसान की पत्नी बनने का निश्चय नहीं कर सकती थी, इसकी अपेक्षा कि तुम कभी एक भद्र पुरुष बनते, परंतु तुम नाराज मत हो, विचारशक्ति से काम लो—तुम संपत्ति के निरीक्षक होगे और अपनी इच्छा से उसका प्रबंध करोगे। तुम्हें भी विवाह कर लेना चाहिए। सबसे बढ़कर उस बचपने के खेल की बाबत किसी से बात मत करना।''

''मैं समझता हूँ, मैडम मसीर्डीज, तुम विश्वास रखो, मैं तुम्हें पीड़ा नहीं दूँगा।'' मैन्युअल बोला और एकाएक कमरे से चला गया।

मर्सीडीज उसके दु:ख का भाव समझकर बड़बड़ाई—'उसने इसको कितनी गंभीरता से लिया होगा!' स्त्री के शाश्वत अहंकार और स्वार्थ तथा विजय के ढंग से उसने आगे कहा, 'वह अब भी मुझे प्रेम करता है और लुई को उसका पता नहीं चलेगा।'

''हाँ, प्यारे लुई,'' मसीर्डीज ने दो दिन बाद अपने प्रेमी से कहा, ''मुझे बड़ा धक्का लगा है। अलसीरा का निरीक्षक बिजली की गाड़ी के नीचे आ गया है—अविश्वसनीय मूर्खता का टुकड़ा—सड़क के मध्य में खड़ा काँप रहा था।''

''यह वास्तव में दु:ख और विलाप करने योग्य घटना है, परंतु इतना शोक करने के लिए मुझे कोई विशेष कारण नजर नहीं आता। तुम हाथ में यह क्या थामे हुए हो?''

''जंगली फूलों का गुच्छा जो अभागा आदमी मुझे देने के लिए ला रहा था और मरते समय उसके पास से उठाया गया है।''

''क्या अद्भुत उपहार है!''

''वह इनको मेरे लिए अलसीरा से लाया था क्योंकि जब मैं वहाँ पर थी तो वह मुझे फूल पेश किया करता था; वह मेरी पसंद को जानता था।''

''यह भी हो सकता है कि तुम उसपर हाथ रखने के लिए उससे मौज-मस्ती करती होगी। ऐसे पाप गिनना निंदनीय है। इनको फेंक दो और इस मामले पर अधिक मत सोचो।''

''तुम कितने अच्छे हो, लुई और मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ!'' उसने झाड़ी की शाख को आग में फेंक दिया; झाड़ी की शाख से कड़ाके का शोर हुआ जबकि सफेद धुएँ का बादल खिलते खेतों में तीखी गंध छोड़ता हुआ हवा में मिल गया।

सा/अ

सुधी पाठकों, लेखकों एवं विज्ञापनदाताओं को

'साहित्य अमृत' परिवार की ओर से

गणेशोत्सव, नवदुर्गा व विजयादशमी

की हार्दिक शुभकामनाएँ

नरई

• श्रीकांत उपाध्याय

न्यू जलपाईगुड़ी। १ सितंबर, २०१६।
जो ट्रेन अलीपुरद्वार और दिल्ली के बीच चलती है, उसका नाम 'महानंदा एक्सप्रेस' है। उत्तर बंगाल की प्रमुख नदी है महानंदा।

हम दंपती इलाहाबाद जा रहे हैं। महानंदा एक्सप्रेस का आगमन दोपहर पौने दो बजे है। यह ट्रेन अकसर देर करती जाती है। बड़ी ट्रेनों को रास्ता देना महानंदा का स्वभाव बन गया है और रुकी हुई ट्रेन से उतरकर प्लेटफार्म पर इधर-उधर देखना मेरी फितरत।

महानंदा प्लेटफार्म पर आकर खड़ी हो गई है। कहाँ है ए.सी. टू कोच? ढूँढ़ते रह जाओगे। टी.टी.ई. ए.सी. टू के यात्रियों को ए.सी. थ्री में बर्थ दे रहे हैं। वरिष्ठ नागरिक होने के कारण हमें नीचे की बर्थ मिल गई है। यह मेरे लिए राष्ट्रीय पुरस्कार है। काँच की खिड़की के पार मेरा गाँव-देश है और गाँव-देश के बिंब-प्रतिबिंब। मैं ठहरा बिंब-प्रतिबिंबों का एक अदद द्रष्टा।

ट्रेन न्यू जलपाइगुड़ी से निकल चुकी है और अब केले और अनन्नास की मनोरम दृश्यावली के बीच से गुजर रही है। स्वस्थ-प्रसन्न है अनन्नास की खेती। लेकिन मुझे प्लेटफॉर्म पर हॉकर ने दोने में जो अनन्नास के टुकड़े दिए थे, वे लगभग कच्चे थे। छल कहाँ नहीं उपस्थित है?

किशनगंज आ रहा है। बिहार का सीमांत स्टेशन। बंगाल और बिहार की मिली-जुली भाषा और संस्कृति। अदृश्य सरस्वती के रूप में नेपाली भी विद्यमान है। कच्चे-पक्के घर, झोंपड़े-बाड़ी। बाँस की कोठियाँ। आम-कटहल-केले। कहीं-कहीं सुपारी और नारियल। धान और जूट के खेत। कुछ पोखरों में जूट के बोझ (पूरे बुंदेलखंड़ी में) बेहे गए हैं। माटी-पाथर से दाबकर बोझ को पानी में डुबोया गया है जूट को गलाने के लिए। गलने पर ही रेशे उतरते हैं। रेशे ही तो जूट हैं। सूखने के बाद रेशे के लच्छे और गोले जूट की मिलों में पहुँचते हैं और मिलों से टाट-पट्टियाँ, बोरे-बोरियाँ तथा न जाने कितने आकार-प्रकार में राष्ट्र की देहरी पर उपस्थित होते हैं। दुर्भिक्ष के वक्ष पर चढ़े अन्न के बोरे कितने गौरवशाली लगते हैं।

मेरे बचपन में गाँव की गड़ही के पानी में ऐसे ही सनई बेही जाती थी। अब न सनई रही न गड़ही रही। गाँव के दुर्दांत ने गड़ही दबोच ली। सन-सुतली की रस्सियाँ स्मृतिशेष हो गईं।

जूट के गलने से उसका रंग पानी में उतर आया है। पूरा पोखर कलुआ गया है। ऐसे विषैले पानी में मछलियों को साँस लेने में दिक्कत होती है। वे इच्छा-मृत्यु माँगती हैं। साफ-सुथरे पानीवाले पोखरों के किनारे पानी में बंसी डालकर बैठे हैं ध्यानावस्थित लोग। कब मछली कँटिए की डंडी झकझोरे, कब बंसी की डोर मछली को खींचे।

सुपरिचित साहित्यकार। अब तक रहीम, कबीर, सूर पर पुस्तकें प्रकाशित। 'दस डिग्री चैनल' अंडमान के संस्मरण। बिहारी और भाषा पर पुस्तकें शीघ्र प्रकाश्य। संप्रति राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला पुणे से रीडर के पद से सेवानिवृत्त।

ये वही लोग हैं, जिन्होंने पिछले तीन महीनों में जी-तोड़ मेहनत की है। जोताई, बोआई, रोपाई, निराई। तब कहीं जाकर धान की हरीतिमा लहराती है। अब उन्हें फुरसत मिली है। बंसी लेकर पोखर के किनारे बैठना उनका शौक है। उनका मछली से गहरा नाता है। इस शौक में तन-मन एकाग्र हो जाता है। महानंदाएँ आती-जाती रहें। न कुछ और दिखाई देता है, न कुछ और सुनाई देता है। दीन-दुनिया से बेखबर।

और उधर कालियाचक में क्या हो रहा है? दूर नहीं है मालदा। प्रसिद्ध है आम के लिए बंगाल का जिला मालदा। उसी जिले का एक उपनगर है—कालियाचक। कालचक्र का तद्भव रूप है—कालियाचक्र। कितना विद्रूप हो गया है तद्भव।

यह उपनगर बांग्लादेश की सीमारेखा पर अवस्थित है। सीमारेखा पर बाड़ खड़ी है। बाड़ के दोनों ओर खेत हैं। पुलिस और बी.एस.एफ. है। खेत में मजदूर-किसान काम कर रहे हैं। अकस्मात् उस पार से प्रक्षेपित जाली नोटों के पैकेट खेत में आ गिरते हैं। रात के अँधेरे में इस पार से एक-एक करके पशुओं को बाड़ से भी ऊपर उठा लिया जाता है और सरकस की शैली में उस पार उतार दिया जाता है। उस पार की युवतियाँ बाड़ के ऊपर से उड़कर इस पार अवतीर्ण हो रही हैं। भारतीय महानगरों को प्रेषित करने के लिए आकर्षक पार्सल तैयार हो रहे हैं।

कालियाचक लूट और हिंसा का प्रधान केंद्र हो गया है। तृण की ओट में बैठी बंगाल बाघिन को यह सब नहीं दिख रहा है। वह किसी और पर कभी-कभी गरजती दिखती है। पुरस्कार लौटानेवाले महान् लेखकों को अभिव्यक्ति की आजादी चाहिए। हिंदी की युवा तर्क लेखिकाएँ और कवयित्रियाँ स्त्री अस्मिता के लिए लड़ रही हैं।

किशनगंज के बाद परिदृश्य बदल जाता है। उत्तर बिहार का वह विस्तृत भूभाग आरंभ होता है, जहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ का पानी विनाशलीला करता है। जहाँ तक देख पा रहा हूँ—पानी-ही-पानी। पेड़-रूख पानी में।

घर-द्वार पानी में। कहाँ गए लोग? कहाँ गए पशु-पक्षी? बाढ़ तो एक महीने पहले आई थी, लेकिन अभी भी पानी उतरा नहीं है। भौगोलिक दृष्टि से उत्तर बिहार का यह अंचल धँसा हुआ है। प्रतिवर्ष हवाई सर्वेक्षण।

ऊँची जमीन की विशद पट्टी पर रेलवे लाइन बिछी हुई है। महानंदा पानी के आक्षितिज विस्तार के बीच चली जा रही है। कुछ स्टेशनों के करीब राहत शिविर लगे हुए हैं। जनसंख्या-विस्फोटक, बच्चे खेल-कूद रहे हैं। सर्वहारा-परिवार की एक स्त्री शिविर के द्वार पर बैठी दर्पण के सामने केश-विन्यास कर रही है।

बिहार का शोक—ओ कोसी! अगर श्मशान-भूमि में भी शिविर लगा दिया जाए, तो भी वह विस्थापित परिवार की कुलवधू मसान की पीठ पर बैठकर वेणी-संहार करेगी।

इधर बाढ़ में डूबा बिहार पानी से मुक्ति चाहता है, उधर महाराष्ट्र का मराठवाड़ा और उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड परम वृष्टि पाकर निहाल हो रहे हैं। कटिहार के बाद भू-दृश्य बदलता है। बाढ़ के दृश्य अब नहीं दिख रहे हैं। शाम का धुँधलका उतर रहा है।

बिहार रात की बाँहों में और मैं निद्रा के अनंत में।

सवेरा हो गया है। दक्षिण बिहार की धान-मेखला रात में आई और चली गई। मुगलसराय पीछे छूट गया है। महानंदा चुनार-मिरजापुर क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी है।

कहाँ हैं देवकीनंदन खत्री के उपन्यास—चंद्रकांता और चंद्रकांता संतति में वर्णित वे रहस्यमय जंगल और खोह-कंदराएँ? रेलवे लाइन के आस-पास कुछ जंगली पेड़, कटी-पिटी जमीन और नदी-नाले के पार्श्व में रहनेवाले सरपत अवश्य दिख रहे हैं। यही प्रतीक हैं जंगल के, नदी-नाले के। अब हम प्रकृति को प्रतीकों में देखा करेंगे।

पानी में प्रसन्नचित्त खड़े हैं धान। नीचे रेलवे लाइन के किनारे वर्षा ऋतु ने जगह-जगह जलाशय बना दिए हैं। कुईं से समन्वित हैं ये जलाशय। अचानक एक जलाशय दृष्टिपथ में आता है और अपनी संपूर्ण दिव्यता के साथ मेरे मानस-फलक पर अंकित हो जाता है। नहीं मिटेगी जन्म-जन्मांतर तक वह छवि।

जलाशय का पानी उज्ज्वल नीलमणि सा दमक रहा है। अपने-अपने मृणाल पर प्रार्थनामय मुद्रा में, पानी में खड़ी है कुमुदिनियाँ। खिली-अधखिली-अनखिली। पानी पर छहरे हैं कुमुदिनी-पत्र। पानी के अरण्य में विहार कर रही हैं नन्हीं-नन्हीं मछलियाँ।

जलाशय के किनारे छिछले पाने में खड़ी है एक घास—नरई। इसमें न कोई गाँठ, न कोई पत्ता। भीतर से पूरी तरह खाली-खोखली। एक नरम शलाका सूर्योन्मुखी।

कोई देखे, न देखे। कोई चीन्हे, न चीन्हे। कोई जाने, न जाने। सृष्टिकर्ता तो देखता है। सिरजनहार तो चीन्हता है। प्रतिपालक तो जानता है। शायद गंगा पार काशी के मध्यकालीन संत ने नरई के किसी पूर्वज को कहीं देखा था और एक कालजयी साखी रच दी—

सतगंठी कोपीन है, साधु न मानै संक।
राम अमलि माता रहै, गिनै इंद्र कौ रंक॥

भस्मस्नात देह पर सात गाँठों से गठा कौपीन धारण कर साधु जब भागीरथी के तट पर सूर्योदय सा खड़ा होता है, तो वह जीवन और जगत् का महानायक हो जाता है, जिसका तेज-प्रताप देखकर पंच महाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—रोमांचित हो उठते हैं।

महीतल पर अकुतोभय होकर वह सर्वभूत मंगलाय विचरण करता है। वह अपने स्वामी के भक्तिरसायन का पान कर अहोरात्र उन्मत्त रहता है। मेदिनी का वह गगन-गिरि अपने आगे इंद्र को रंक गिनता है।

लखनऊ के नवाब की तरह अपनी बिरादरी में अप्सराओं के साथ अनुरंजन करनेवाला तथा रात के अंधकार में अहल्याओं का अभिमर्शन करनेवाला देवेंद्र किस गिनती का?

सा
अ

२०/३ शिंदे नगर, बावधन
एन.डी.ए. रोड, पुणे-४११०२१
दूरभाष : ०२०-२२९५२२३८

हिंदी की अलख

कविता

• गौतम अरोड़ा 'सरस'

हिंदी अब तक भटक रही है, अपने हिंदुस्तान में
नहीं कार्य कुछ ठोस हो रहा है, इसके उत्थान में।
कोरे भाषण से केवल यह काम नहीं हो पाएगा।
स्वच्छ हृदय से नेता जब तक बीड़ा नहीं उठाएगा।

यही संस्कृति है अपनी, जो विश्व पटल पर छाई है।
क्योंकर फिर अपने भारत में इससे बैर-लड़ाई है।
नहीं राष्ट्र भाषा का दर्जा अब तक इसको मिल पाया।
भारी है हिंगलिश हिंदी पर, संकट यह कैसा आया।

कर्णधार कब सोचेंगे, हिंदी का मान बढ़ाएँगे
अथवा कागज का घोड़ा ही ये केवल दौड़ाएँगे।
बढ़े मान-गौरव भाषा का हिंद की यह पहचान है,
सच कहता हूँ भारत माँ का यह अनुपम वरदान है।

करना होगा प्रण अब सबको—इसका मान बचाएँगे
घर-आँगन से संसद् तक हिंदी की अलख जगाएँगे।
कार्य 'सरस' यह करना होगा, तब संस्कृति बच पाएगी।
आनेवाली पीढ़ी भी तब हिंदी को अपनाएगी॥

सा
अ

के-६१/१०३-६७, आर्यसमाज भवन
बुलानाला, वाराणसी
दूरभाष : ०९४१५३०३२२४

लोकगीतों में स्वातंत्र्य चेतना की अभिव्यक्ति

● ऊषा निगम

समाज में लोकगीतों की उपस्थिति सदैव रही है। त्योहारों और उत्सवों में इन्हें गाया जाता रहा है। इतिहासकारों का ध्यान कभी इस ओर नहीं गया कि इतिहास लेखन में भी इन गीतों का महत्त्व हो सकता है। कुछ वर्षों से लोकगीतों ने इतिहास लेखकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। लोकगीतों की विषयवस्तु का अध्ययन करने के उपरांत इस नजीते पर पहुँचा गया कि लोकगीतों में अभिव्यक्त तमाम घटनाओं को भी इतिहास लेखन में स्थान दिया जाना चाहिए। अब लोकगीत इतिहास लेखन के महत्त्वपूर्ण स्रोत बन गए हैं। यहाँ पर विषय स्वातंत्र्य चेतना का है, अत: हमारे लोकगीतों नें इस चेतना को अपने गीतों में स्थान दिया है या नहीं। यदि दिया है तो कितना और किस प्रकार अभिव्यक्त किया है, इस विषय पर चर्चा करनी है।

हमारे देश की पराधीनता की दास्तान बहुत लंबी रही। लेकिन अंग्रेजी राज की गुलामी के २०० वर्षों में इस देश को जितना व्यथित, अपमानित और उद्वेलित किया, उतना व्यथित यह देश पहले कभी नहीं रहा था। यही कारण है कि भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की विजय के साथ ही उसके विरोध का जन्म भी हो चुका था। यह विरोध लोकमानस को भी प्रभावित करता रहा और इस विरोध ने लोकगीतों में अभिव्यक्ति पाई। ये अभिव्यक्तियाँ आम आदमी की भावनाओं का प्रमाण हैं। प्रमाण हैं इस बात का कि जनमानस भी जागरूक हो रहा था, वह भी अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने के लिए छटपटा रहा था। भले ही वह राष्ट्रीय स्तर पर न सोच पाता हो, पर वह बहुत कुछ सोच रहा था, विचार कर रहा था, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहा था। 'कोई नृप होई हमें का हानी' की मानसिकता के बावत लोककवि के गीतों में अब नृप के प्रति घृणा दिखाई देती है। उससे मुक्त होने की चाहत नजर आती है। वनवासियों से लेकर ग्रामीण अंचल तक फैले इस असंतोष की जड़ें बहुत गहरी थीं। उनके हृदय के उद्‌गार उनकी अपनी स्थानीय भाषा में गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए। खेतों, खलिहानों, चौपालों में गाए जाते रहे ये लोकगीत आज भी उनके बीच सुरक्षित हैं।

लोकगीत हर युग में गाए गए। भारत की आजादी की लड़ाई टुकड़ों-टुकड़ों में रही। यह संघर्ष लंबा रहा। १८५७ की क्रांति के सभी नायक—नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह, राजा देवी बरजा, बेनी माधव आदि लोकगीतों के विषय बने। १८५७ का

सुप्रसिद्ध लेखिका। स्वतंत्रता सेनानियों पर विशेष लेखन। पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि निरंतर प्रकाशित। 'कानपुर : एक सिंहावलोकन' स्मारिका भी। सन् १९७०-७२ में पी.पी.एन. कॉलेज में अध्यापन कार्य के बाद अब लेखन में रत।

संग्राम जनमानस पर गहरी छाप छोड़ गया था। अंग्रेजी राज्य के दमन और क्रूरताओं ने लोकमन को इतना आहत किया था कि लोकगीतों में इस संग्राम की खूब चर्चा रही। कभी-कभी यही लोकगीत शिक्षित समाज के कवियों के प्रेरणास्रोत बने। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई पर बुंदेलखंड के हरबोला गायकों ने तमाम लोकगीतों की रचना की। 'खूब लड़ी मरदानी' कविता की रचयिता सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविता का प्रारंभ ही इन हरबोलों को याद करते हुए किया था—

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।

केवल नायकों का ही वर्णन नहीं किया इन जनकवियों ने, देश की आर्थिक दशा की भी चर्चा की। वैभव से विपन्नता की ओर देश बढ़ गया। उन्हें इस बात की ही समझ थी कि देश की समृद्धि का नाश कैसे हो रहा है। तभी लोककवि के हृदय से निकला—

देसवा के सब धन धान विदेसवा में जाय रहे।
महँगी पड़त हर साल, कृसक अकुलाय रहे॥

लोककवि ने वर्तमान और अतीत की तुलना कुछ इस तरह की—

होइ गइबे कंगाल हो विदेसी तोरे रजवा में।
सोने की थाली में जहवाँ, जेवना जेंवल रह ली,
कठवा के डोकिया के होइ गइली मुहाल हों,
विदेसी तोरे रजवा में॥

विदेशी शोषण के प्रति कवि के हृदय में कितनी पीड़ा है, यह उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट दिखाई देता है। लोककवि को यह भी समझ में आता है कि अंग्रेज रूपी दुश्मन उनके देश को दबाने आया है। अत: युद्ध आवश्यक है; और यह भी कि जो युद्ध नहीं कर सकते, वे युवक साड़ी अच्छी पहनकर घर में बैठ जाएँ—

लागे सरम लाज घर में बैठ जाहु
मरद से बनि के लुगइया आए हरि।

हिंदू-मुसलिम समस्या हमारे देश की बहुत बड़ी समस्या रही, आज भी है और अंग्रेजी राज्य में भी थी। धार्मिक आधार पर परस्पर वैमनस्यता कुछ तो थी, बहुत कुछ अंग्रेजों के द्वारा बढ़ाई गई। अंग्रेजी सरकार के लाभ के अनुपात में हमारा नुकसान बढ़ता गया। इस वैमनस्यता ने बहुत खून बहाया और आजादी की लड़ाई को कमजोर भी किया। गांधीजी के अथक प्रयासों के बावजूद दोनों धर्मावलंबियों के बीच की दूरी कम नहीं की जा सकी और अंततः देश बँट गया।

पहिरि के साड़ी च्छी मुँहवा छिपाइ लेहु
राखि लेइ तोहरी पगरइया आए हरि॥

१९०५ में वायसराय लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर दिया। सरकार अनेक वर्षों से बंगाल के विभाजन पर विचार कर रही थी। बंग-भंग के विचार को ही बंगालवासी स्वीकार नहीं कर रहे थे, जब विभाजन हो गया, तब बंगाल में जैसे तूफान आ गया। समस्या यह थी कि शक्तिशाली ब्रिटिश राज्य का विरोध कैसे किया जाए, कैसे उसके आर्थिक वर्चस्व को निर्बल किया जाए। बंग-भग ने एक ओर सशस्त्र क्रांति के मार्ग को प्रशस्त किया, वहीं दूसरी ओर विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रयोग का नारा दिया था। बिटिया के विवाह के अवसर पर समधीजी से लोककवि कहता है कि उसकी बेटी का विवाह तभी होगा, जब उनके द्वारा स्वदेशी वस्त्रों को धारण किया जाएगा। पिता को अपनी पुत्री का अनब्याहा रह जाना स्वीकार है। देखिए कितनी सुंदर अभिव्यक्ति है—

फिर जाहु फिर जाहु घर का समधिया हो,
मोर धिया रहि हे कुँआरि।
बसन उतारिं सब फेंकहु विदेशिया हो,
मोर पूत रहिहैं उधार।
बसन सुदेसिया मंगाइ पहिरबा हो,
तब होइहै धिया के विवाह।

निम्नलिखित एक और गीत खादी की लोकप्रियता को प्रदर्शित करता है एवं गांधी, जवाहर और तिरंगे के प्रति महिलाओं के उत्साह को दरशाता है। वे हुलसकर रँगरेज से याचना करती हैं कि बहुत दिनों से एक ऐसी चुनरी पहनने की इच्छा थी, जिसमें—

खादी की चुनरिया रंग दे छापेदार रे रँगरेजवा।
बहुत दिनन से लगलवा जा मन हमार रे रँगरेजवा॥
कहीं पे छापो गांधी महातमा, चरखा मस्त चलाते हों।
कहीं पे छापो वीर जवाहर जेल के भीतर जाते हों।
अंचरा पे झंडा तिरंगा बांका लहरदार रे रँगरेजवा॥
सादी की चुनरिया...।

१९१५ में भारतीय राजनीति में गांधीजी का पदार्पण हुआ। एक नए युग का और शक्तिशाली शत्रु से युद्ध करने की एक नई शैली का सूत्रपात और विकास हुआ (यद्यपि अहिंसा और असहयोग का प्रयोग पहले भी किया जा चुका था)। इतिहासकार कहते हैं कि राजनीति में गांधी का प्रवेश आँधी की तरह हुआ था। लोककवि, जिसने इतिहास का कभी अध्ययन नहीं किया था, वह भी ऐसा ही कुछ कहता है—

गांधी कीं तो आँधी आ गई,
मिलकर शोर मचाएँगे।
गांधी पहुँचे जेल में
हम जेल में जाएँगे॥

गांधी का जमाना था। सारा देश जेल जाने को लालायित था। भाभी का देवर भी हथकड़ी-बेड़ी पहने जेल में था। भाभी कह रही है—

गांधी के आइल जमाना देवर जेलखाना अब गइले।
जब से तपे सरकार बहादुर भारत मरे बिनु दाना।
हाथ हथकड़िया वा गोडवा में बेड़िया,
देसवा भर भइल दिवाना, देवर जेलखाना अब गइले॥

लोककवि की दृष्टि में आजादी की जंग का महत्त्व था। उसके लिए साध्य का महत्त्व था, साधन का नहीं। उसके लिए हिंसा अथवा अहिंसा के मार्ग का विवाद नहीं था। जन-मानस को जगाने के लिए एक ओर गांधी को याद किया तो दूसरी ओर भगतसिंह के बलिदान को सराहा गया, कुछ इस तरह—

जागा बलम गांधी टोपीवाले आइ गइलैं...
राजगुरु, सुखदेव, भगतसिंह हो,
तहरै जगावे बदे फाँसी पर चढ़ाय गइलै।

लोककवि को ज्ञात था कि भगतसिंह ने अपनी इच्छा से स्वयं के लिए फाँसी का रास्ता चुना था। उन्होंने देशहित के लिए साथियों सहित हँसते-हँसते अपने जीवन का बलिदान कर दिया—

ए रामा भगतसिंह जवनवा,
आरे देस के करनवा ए रामा
हँसि हँसि,
फाँसी पर चढ़ि गइले ए रामा॥

सभी इतिहासकार एक मत हैं कि 'फूट डालो और राज्य करो' अंग्रेजी सरकार का मूल मंत्र था। इन्हीं कूटनीतिक दाँव-पेंचों द्वारा मुट्ठी भर विदेशियों ने इतने बड़े देश को अपना गुलाम बना लिया था। एक राजस्थानी लोकगीत में आम जनता की वेदना की चर्चा है। कवि कहता है कि अंग्रेज अपने साथ बेगार प्रथा लाए, उन्होंने भाई-भाई को लड़ाया, देश की ऐसी दुर्गति की कि पशुओं से लेकर शिशु तक दाने-दाने को मोहताज हो गए—

देश में अंगरेज आयौ कांई कांई लायौ रे,
फूट न्हाखी भायां में बेगार लायौ रे।
घोड़ा रोवै घास नै, टाबरिया रोवै दाणै नें,
बुरजां में ठाकुराणिया रोवै जामण जाया नें।

हिंदू-मुसलिम समस्या हमारे देश की बहुत बड़ी समस्या रही, आज भी है और अंग्रेजी राज्य में भी थी। धार्मिक आधार पर परस्पर वैमनस्यता कुछ तो थी, बहुत कुछ अंग्रेजों के द्वारा बढ़ाई गई। अंग्रेजी सरकार के

लाभ के अनुपात में हमारा नुकसान बढ़ता गया। इस वैमनस्यता ने बहुत खून बहाया और आजादी की लड़ाई को कमजोर भी किया। गांधीजी के अथक प्रयासों के बावजूद दोनों धर्मावलंबियों के बीच की दूरी कम नहीं की जा सकी और अंतत: देश बँट गया। लोककवि ने अशिक्षित होते हुए भी एकता की आवश्यकता को समझा था और आमजन को समझाने का प्रयास किया था। उसने बड़े मार्मिक शब्दों में अपील की है कि दो भाइयों के झगड़े में क्या रखा है, गांधी की सीख को मान लो—

अरे चमकै मंदिरवा में चाँद,
मसजिदवा में बंसी बाजै।
मिलि रहू हिंदू मुसलमान,
छांडि देहु सगरे झगड़े।
अरे, मिलि रह दोनों भइया,
लड़ाई झगड़ा न साजै।
मानि जाव गांधी करि सीख,
इन झगडन में काह धरौ॥

कभी भारतीय नरेशों और सैनिकों का विद्रोह। कभी वनवासियों और किसानों का विरोध, फिर क्रांतिकारियों का सशस्त्र संघर्ष, गांधीजी का अहिंसात्मक जन-आंदोलन और नेताजी सुभाषचंद्र बोस का सैन्य प्रयास इन सबका परिणाम देश की आजादी के रूप में आया। चिर प्रतीक्षा पूर्ण हुई तो लोककवि भी गा उठा—

काहि जे चढ़ि आएल भारतमाता,
काहिं जे चढ़ल सुराज,
चलहु सखि! देखन को॥
किथ जे चढ़ि आएल वीर जवाहिर,
कथि पर गांधी महाराज।
चलहु सखि। देखन को॥
हाथी चढ़ल आवै भारतमाता,
डोली में बैठल सुराज।
चलहु सखि! देखन को॥
घोड़ा चढ़ि आएल वीर जवाहिर,
पैदल गांधी महाराज।
चलहु सखि देखन को॥

एक सखी दूसरी सखी से कह रही है कि चलो, देखने चलें कि भारतमाता और स्वराज्य किस सवारी पर बैठकर आ रहे हैं, जवाहरलाल और गांधी भी। कवि की कल्पना उत्तर देती है कि भारतमाता हाथी पर, स्वराज्य डोली में और जवाहर घोड़ी पर बैठकर आ रहे हैं। गांधी पैदल ही सबका मार्गदर्शन कर रहे हैं। संभवत: उनकी अनेक पद-यात्राओं के कारण यह कल्पना की गई थी।

तो ऐसी थी इन अनाम, अनजान लोककवियों, लोकगायकों की रचनाएँ, जिन्होंने उस कालखंड की भारतीय राजनीति की प्रत्येक आवश्यकता, प्रत्येक आंदोलन और अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाओं को अपने गीतों में स्थान दिया था, जिन्हें अनवरत सुनते रहने से वैसी ही भावनाओं का जन-मानस में जन्म हुआ होगा। यही कारण था कि प्रारंभिक विरोधों से लेकर अंत तक हमारे देश के स्वाधीनता संग्राम को उन लोगों का भी साथ मिला, जिन्हें इन आंदोलनों की ही समझ नहीं थी। यह साथ ही बहुत था। इस साथ ने इसे जन-आंदोलन बनाया। स्वातंत्र्य चेतना को जन्म देने में, उसे प्रसारित करने में इन लोककवियों के अवदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आज भी ये गीत हृदय को छू लेते हैं और हमारे भीतर उत्साह का संचार करते हैं।

७४ कैंट, कानपुर-२०८००४
दूरभाष : ०९७९२७३३७७७

हाइकु

● **दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'**

बना करती
सृजन श्रेष्ठता ही
कवि व्यक्तित्व।

परिणाम है
अंतबाह्य क्रिया का
कवि का काव्य।

आकार में ही
बसा है निराकार
कहाँ ढूँढ़ते ?

न बोएँ कभी
बाह न आए तब तक
खेत में बीज।

पसीना नहीं
देखा है आलस्य ही
माँगते भीख।

अवश्य होगा
आज ग्राम का चोर
कल किलों का।

विहँस झेले
गिरा बादल जल
प्रेयसी धरा।

बिखर जाती
खिलते ही कली के
छिपी सुगंध।

ऋण की मार
बना देती व्यक्ति को
आत्म हंता।

नभ पलंग
ओढ़ तारक सोए
सो गई संध्या।

शांत चित्त को
कर देती अशांत
समस्याएँ आ।

अवश्य सोचें
अपराध से पूर्व
न्यायिक दंड।

शोभा देता है
शक्ति-संपन्न को ही
क्षमा का शब्द।

लड़ रहा है
सृष्टि कल्प से चाँद
कब हारा तम।

सेना के नाम
सीमा पर डटा है
जय विश्वास।

२२८ बी, सिविल लाइंस
कोटा-३२४००१ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४६०५७०८८३

आएँगे मेहमान अभी

● संजीव ठाकुर

रोज रात

रोज रात घर के बाहर
भौंका करते हैं कुत्ते,
कहते हैं पहनेंगे हम भी
तेरे जैसे जूते;
ठंड सताती है हमको
पहरेदारी करने में,
तुम्हें मजा तो आता होगा
घर के भीतर रहने में।

रोज रात घर के भीतर
चूँ-चूँ करते हैं चूहे,
कहते हैं खाएँगे हम भी
मीठे मालपूए;
दाँत दु:खते हैं भाई
सूखी रोटी खाने में,
तुम्हें मजा तो आता होगा
छप्पन भोग लगाने में।

फिर हँस दी

घर को थोड़ा साफ करो,
मम्मी! मुझको माफ करो।

आएँगे मेहमान अभी,
क्या बोलेंगे हमें सभी?

उधर तुम्हारी रखी किताबें,
इधर तुम्हारी फिंकी जुराबें!

घर का सत्यानाश किया,
तुमने क्या बदमाश किया?

उठो, रखो, टेडी-वेडी
अलमारी में रक्खो नाडी।

सुबू उठी बेमन से अब
करने लगी सफाई सब।

अपना बिस्तर साफ किया
माँ का टेंशन हाफ किया।

घर को खूब किया तब्दील,
फिर हँस दी वह खिल-खिल-खिल!

सुपरिचित कवि-कथाकार तथा बाल साहित्यकार। संजीव ठाकुर की प्रमुख कृतियाँ हैं–'नौटंकी जा रही है', 'फ्रीलांस जिंदगी', 'अब आप अली अनवर से…' (कहानी-संग्रह), 'झौआ बैहार' (लघु उपन्यास) तथा 'इस साज पर गाया नहीं जाता' (कविता-संग्रह)। 'बड़ों का बचपन' तथा 'चुन्नू-मुन्नू का स्कूल' बाल साहित्य की चर्चित कृतियाँ हैं।

अब नहीं मुझको पढ़ना

अम्मा तेरी याद मुझको बहुत सताती है,
सच कहता हूँ चुपके-चुपके रोज रुलाती है।

यहाँ कहाँ आगे-पीछे है प्यार जतानेवाला,
रूठूँ तो फिर कौन खड़ा है मुझे मनानेवाला?

अच्छा होता गाय चराता, क्यों भेजा स्कूल?
कितना बढ़िया लगता था, मुझे उगाना फूल!

मुझको क्यों भेजा है अम्मा पढ़ने इतनी दूर,
यहाँ नहीं तेरे हाथों का लड्डू मोतीचूर!

चिट्ठी मेरी पहुँचे जैसे, भागे-भागे आना,
मेरा सब सामान बाँधकर मुझको घर ले जाना।

जा छुपते

चोर एक न उनसे भागे
भौंक-भौंककर कुत्ते हारे,
बच्चों को तो खूब डरा दें
क्योंकि वे होते बेचारे!

गली-मोहल्ले के कुत्ते
होते हैं बीमार
सड़ी-गली चीजें ही हरदम
वो खाते हैं यार!

घर में पलनेवाले कुत्ते
ऐयाशी करते,
ए सी में सोते हैं
नाजों-नखड़ों में पलते!

चोर देखकर उनकी भी
सिट्टी होती गुम,
जा छुपते मालिक के पीछे
नीचे करके दुम!

गधे का गाना
गधे ने गाया गाना,
उल्लू ने पहचाना
बंदर ने उसे माना
मेढक हुआ दीवाना।

कोयल ने मारा ताना,
'तुझे न म्यूजिक आना'
गधे को फर्क पड़ा न
गाता रह गया गाना!

एस.एफ. २२, सिद्ध विनायक अपार्टमेंट,
अभय खंड-३, इंदिरापुरम, गाजियाबाद

बेबो को मिल गई सीख

● पवन चौहान

पिंकी की बिल्ली और चीकू चूहा रोज की तरह आज भी खूब हँसते-खेलते स्कूल जा रहे थे। उनकी यह दोस्ती बहुत पहले से थी। वे रोज एक साथ स्कूल जाते और एक साथ घर आते। दोनों के स्कूल का रास्ता भी एक ही था, लेकिन स्कूल अलग-अलग थे। पिंकी के स्कूल में सिर्फ बिल्लियाँ थीं और चीकू के स्कूल में सिर्फ चूहे। सभी इन दोनों की दोस्ती की मिसाल देते थे।

आज स्कूल जानेवालों की संख्या में बढ़ोतरी हो गई थी, क्योंकि दूसरे स्कूल से आई काली बिल्ली बेबो भी पिंकी के स्कूल में पढ़ने जा रही थी। बेबो बहुत ही शरारती, चालाक और चोरटी किस्म की बिल्ली थी। इसकी वजह से उसे पिछले स्कूल से निकाल दिया गया था।

पिंकी रोज की तरह आज भी चौराहे पर चीकू का इंतजार कर रही थी। लेकिन चीकू था कि अभी तक नहीं पहुँचा था। चीकू को आज रास्ते में बेबो से वास्ता जो पड़ गया था। बेबो ने जब चीकू को देखा तो वह उससे शरारत करने लग गई। वह उसकी पूँछ को अपने मुँह में लेकर कभी उसका झूला झुला देती तो कभी टाँग से खींचकर पीछे फेंकती। चीकू बेबो से बार-बार उसे स्कूल जाने देने के लिए प्रार्थना कर रहा था। लेकिन बेबो के कान पर जूँ तक नहीं रेंग रही थी। अबकी बार तो उसने चीकू को पूरा ही मुँह में डाला और फिर कुछ देर मुँह में रखने के बाद मिट्टी में उगल दिया। इस शरारत से उसके कपड़े, स्कूल बैग पूरी तरह से गंदे हो गए। उसकी साँस बुरी तरह से फूल रही थी और उसकी एक टाँग में चोट भी आ गई थी। बिल्ली के मुँह में उसका दम घुटते-घुटते बचा था। इस स्थिति में वह अब स्कूल तो जा नहीं सकता था, इसलिए उसे वापस घर आना पड़ा।

जब पिंकी को चीकू के पड़ोसी चूहे से चीकू की हालत का पता चला तो वह बहुत उदास हो गई। उसका आज स्कूल में जरा भी मन नहीं लग रहा था। परंतु उसे बेबो को देखकर गुस्सा आ रहा था। वह स्कूल में कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहती थी। लेकिन दूसरी ओर बेबो ने स्कूल में खूब ऊद्धम मचाया हुआ था। वह कभी किसी की किताब हवा में लहरा देती तो कभी किसी की पेंसिल तोड़ देती। लंच से पहले तक बेबो ने कइयों के लंच चट कर लिये थे। जिसके कारण आज उसके कई सहपाठियों को भूखे रहना पड़ गया था। बेबो के आने से क्लास का सारा माहौल बिगड़ गया था। उसको सबक सिखाने के लिए पिंकी के साथ सभी सहपाठियों ने बेबो की शिकायत स्कूल के मुखिया से की। बेबो

जाने-माने साहित्यकार। ख्याति-लब्ध पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविता, कहानियाँ प्रकाशित एवं शिमला दूरदर्शन और आकाशवाणी से कहानी और कविता पाठ। हिम साहित्य परिषद् (मंडी, हि.प्र.) द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिता में कहानी 'शारदा' को द्वितीय पुरस्कार, साहित्य मंडल (नाथद्वारा) का सम्मान। संप्रति स्कूल शिक्षक (टी.जी.टी., नॉन-मेडिकल)।

मुखिया के सामने भीगी बिल्ली बन गई और उसने शरारतें न करने का वादा भी मुखिया से कर लिया। लेकिन बाहर आते ही सबको धमकाते हुए बोली, 'अगर दूसरी बार मेरी शिकायत हुई तो मैं किसी को नहीं छोड़ूँगी। याद रखना, फिर तुम सब बहुत पछताओगे।'

बेबो की बात से बहुत सी बिल्लियाँ घबरा गईं। पिंकी सारी स्थिति को भाँप चुकी थी। बेबो को सुधारने के लिए अब उसने किसी अन्य उपाय के बारे में सोचना शुरू कर दिया था।

स्कूल के बाद पिंकी के सभी सहपाठी चीकू से मिलने उसके घर पहुँचे। उन्होंने देखा, चीकू की हालत सचमुच खराब थी। उसकी एक टाँग में काफी दर्द हो रहा था और वह जगह-जगह से घायल था। पिंकी ने चीकू को हौसला देते हुए कहा, 'तुम उदास मत होना। हमने बेबो को सबक सिखाने की योजना बना ली है। वह फिर हम सबको कभी परेशान नहीं करेगी।' चीकू को जैसे ही पिंकी ने सारी योजना बताई। चीकू के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ पड़ी।

दूसरे दिन भी बेबो स्कूल जाते हुए सबको छेड़ती हुई जा रही थी। लेकिन जैसे ही वह चौराहे पर पहुँची तो उसका सामना शेरू कुत्ते से हुआ। शेरू इस इलाके का जाना-माना गुंडा, लेकिन पिंकी का परममित्र था। शेरू को देखते ही बेबो बुरी तरह से डर गई। उसे देखते ही उसने मुँह से एक चूहा बाहर उगल दिया। शेरू उससे कुछ नहीं बोला। बस उसके मुँह पर एक जोरदार चाँटा लगाकर चला गया। बेबो अवाक् सी देखती रह गई।

लेकिन अगले दिन भी बेबो की शरारतें जस की तस थीं। आज उसने शेखू चूहे का बैग मिट्टी पर फेंक दिया था। आज फिर से जैसे ही वह चौराहे पर पहुँची तो उसका सामना एक बार फिर शेरू से हुआ। शेरू आज भी कुछ नहीं बोला। उसने आज भी उसे कसकर चाँटा मारा और उसका बैग जोर से रास्ते पर पटक दिया। बेबो का सारा सामान रास्ते पर

बिखर गया। बेबो को इस बात का बहुत दुःख हुआ। लेकिन यह सब देखकर पिंकी और उसके दोस्त बहुत खुश हो रहे थे।

शरारती बेबो आज बहुत उदास थी। उसने किसी से भी शरारत नहीं की। शायद उसका आज ऐसा मन न था। उसके मन में शेरू का डर बैठ गया था और वह यह अभी तक नहीं समझ पा रही थी कि वह उसके साथ यह सब क्यों कर रहा है? इसी उधेड़बुन में वह जैसे अपनी सारी शरारतें ही भूल चुकी थी।

उसके अगले दिन जब उसका सामना दोबारा शेरू से हुआ तो वह कुछ नहीं बोला और बिना कुछ किए वहाँ से चुपचाप चला गया। बेबो बहुत खुश हुई। इस खुशी में आज स्कूल पहुँचते ही उसने सबसे पहले पिंकी का लंच बॉक्स निकाला और लंच को चट करके उसको जोर से जमीन पर दे मारा। लंच बॉक्स टूट गया। पिंकी को यह लंच बॉक्स बहुत ही प्रिय था। उसे अपने लंच बॉक्स को तोड़ने का बहुत दुःख हो रहा था।

उसके अगले दिन बेबो फिर शेरू के सामने थी। शेरू ने बेबो को आज फिर कसकर एक थप्पड़ दे मारा। उसका बैग छीना और लंच बॉक्स निकालकर लंच खा लिया और बॉक्स को जमीन पर जोर से पटक दिया। बेबो का लंच बॉक्स टूट चुका था। यह सब देखकर आज पहली बार बेबो की आँख से आँसू निकल आए। आज उसका प्यारा सा लंच बार्क्स टूट चुका था। अपनी किसी चीज के खोने का कितना दुःख होता है, इसका उसे आज भलीभाँति अहसास हो रहा था।

आज कक्षा में शांति का माहौल था। बेबो को शेरू का बार-बार तंग करने का रहस्य समझ नहीं आ रहा था। वह तो उससे कभी उलझी भी नहीं थी। उसने तो पहली बार ही उसे यहाँ पर देखा है। फिर वह उसे तंग क्यों कर रहा है?

लंच ब्रेक हो चुका था, लेकिन बेबो अभी भी उसी उलझन में फँसी हुई थी। आज उसे जरा भी भूख नहीं थी। उसकी सारी भूख जैसे मर गई थी। पिंकी बेबो के पास पहुँची और अपना लंच बॉक्स आगे करती हुई बोली, 'बेबो, लंच कर लो।'

'नहीं।' बेबो ने उदासी भरे शब्दों में कहा।

'लो बेबो, थोड़ा सा तो ले लो। मुझे पता है, आज तुम्हारा लंच बॉक्स टूट गया है। तुम्हें भूख लग रही होगी।'

'नहीं, मुझे जरा भी भूख नहीं है। लेकिन मैं आज इतना जरूर समझ पाई हूँ कि अपनी चीज के खोने का दर्द क्या होता है।'

'क्या मतलब?' पिंकी ने पूछा।

'मैंने आज तक आप सबको परेशान किया और सबकी चीजें तोड़ी। आप सभी के साथ-साथ चूहों को भी किसी-न-किसी तरह से परेशान करती रही। मैं उस वक्त आप सबके दुःख का अहसास नहीं कर सकती थी। लेकिन शेरू के कारण आज मैं हर उस शरारत के दुःख का अहसास कर पा रही हूँ, जो मैंने तुम सबके साथ कीं। मुझे माफ कर दो। मैं आज अपने किए पर बहुत शर्मिंदा हूँ।'

'अरे बेबो, कोई बात नहीं। गलतियाँ तो सबसे हो जाती हैं। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि तुम्हें अपनी गलती का अहसास हो चुका है। बाकी माफी तो मुझे भी तुमसे माँगनी है।'

'क्यों, तुमने क्या किया है?'

'दरअसल शेरू को तुम्हारे पीछे लगाने की योजना मेरी ही थी। तुमने हम सभी को बहुत तंग करना शुरू कर दिया था, इसलिए।'

'पिंकी, तुम लोगों ने अच्छा ही किया। मुझ जैसी शरारती के लिए शायद यही तरीका सही था।' बेबो अपने किए पर शर्मिंदा होते हुए बोली।

'अरे, नहीं बेबो।'

'अरे, हाँ पिंकी।'

इस बात पर दोनों ठहाके मारकर हँस पड़ी थीं।

सा अ

गाँव व डा. महादेव
तहसील-सुंदर नगर,
जिला-मंडी-१७५०१८ (हि.प्र.)
दूरभाष : ०९८०५४०२२४२

इस अंक के चित्रकार

शैलेंद्र सरस्वती

२३ फरवरी, १९७९ को कोलकाता में जनमे चित्रकार शैलेंद्र सरस्वती ने विविध विधाओं में लेखन किया है। कई पत्र-पत्रिकाओं में कहानी तथा कविताओं का प्रकाशन हुआ है तथा कई हिंदी मासिक पत्रिकाओं में रेखांकन प्रकाशित।

संपर्क : नारायणी निवास, मोबाइल टावर के सामने
धरनीधर कॉलोनी, उस्ता बारी के बाहर,
बीकानेर-३३४००५ (राज.)
दूरभाष : ०७८७७९८६३२१

वर्ग पहेली (१४४)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान–विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० सितंबर, २०१७ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम–पते नवंबर २०१७ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१४२) का शुद्ध हल

१ अ	२ प्र	त्य	३ क्ष	■	४ स	र	५ का	६ र
७ स	भा	■	८ म	९ ह	ज	■	१० श	ह
बा	■	११ जी	ता	जा	ग	१२ ता	■	नु
१३ ब	१४ हु	त	■	र	■	१५ क	१६ ल	मा
■	१७ कु	र	सी	■	१८ स	त	ह	■
१९ उ	म	स	■	२० क	■	२१ व	र	२२ क
ता	■	२३ ना	२४ ह	म	२५ वा	र	■	था
२६ व	२७ द	■	२८ व	ल	य	■	२९ गा	न
३० ला	वा	रि	स	■	३१ स	हा	य	क

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर**
'श्री प्रमोदस्थान', ५६९–बी,
सेठीनगर
उज्जैन–४५६०१० (म.प्र.)

२. **सुश्री रेणु मिश्र**
द्वारा कर्नल कौशल मिश्र
यश मंदिर ४भ९, जवाहर नगर
जयपुर–४ (राजस्थान)

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई !

वर्ग-पहेली १४२ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री विजयपाल सेहलंगिया (महेंद्रगढ़), सी.आर. नाहड़िया (नारनौल), फकीरचंद ढुल (कैथल), मोहन उपाध्याय (अजमेर), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), शिखा जैन, बी.डी. बजाज, कुसुम गोयनका, निर्मला गुजराती, पुखराज वार्ष्णेय, सुभाष आर्य, दिनकर सहल (दिल्ली), रेखा चतुर्वेदी (लखनऊ), रजनीश कुमार त्रिवेदी (बरेली), वाई.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), सरिता दशोत्तर (रतलाम), प्रतिमा गुप्ता (मोहाली), रुक्मणी संगल (पटियाला), आरती शैलेश सुभेदार (बेलगाम), माणक तुलसीराम गौड़, मधुरानी (बेंगलुरु), गिरधारीलाल अग्रवाल (यवतमाल), विनीता सहल (मुंबई), देवकीनंदन कांडपाल (अल्मोड़ा), रामेश्वर प्रसाद कुलमित्र (कबीरधाम)।

बाएँ से दाएँ—

१. रिवाज (४)
४. होली में रंग डालने की एक युक्ति (४)
७. यमुना नदी का उद्गम-स्थल (५)
८. ओर, तरफ (२)
१०. चाचा (२)
११. सुँघनी (४)
१२. लठैत (४)
१३. नियम के विपरीत कोई नियम विशेष (४)
१५. न होनेवाली (४)
१७. कार्यकाल (२)
१८. कमल की पोली व लंबी डंडी (२)
१९. हीरा, पन्ना आदि रत्न समूह (५)
२१. बाल्यावस्था (४)
२२. बहुत धनी व्यक्ति (२,२)

ऊपर से नीचे—

१. हर रोज (२,२)
२. संगीत में स्वर और ताल का संश्लेष (२)
३. झुककर सादर अभिनंदन (४)
४. पित्त-प्रकोप से उत्पन्न दर्द (४)
५. संदेश ले जानेवाली, दूती (२)
६. हिंदी-साहित्य का उत्तर-मध्य काल (२-२)
९. फरमान (५)
१०. किसी व्यक्ति की योग्यता का लोहा मानना (३,२)
१३. सामान (४)
१४. जिसमें करुणा हो (४)
१५. कसूर (४)
१६. शिव का एक नाम (४)
१९. किसी मंत्र का बार-बार उच्चारण (२)
२०. लंबाई में ताना हुआ सूत (२)

वर्ग पहेली (१४३) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१४४)

१		२	३	■	४	५		६
	■	७					■	
८	९	■		■		■	१०	
११				■	१२			
■		■	■	■	■	■		■
१३			१४	■	१५			१६
१७		■		■		■	१८	
	■	१९		■		२०	■	
२१				■	२२			

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक मिला। 'लोक-संस्कृति विशेषांक' अपने आप में एक यादगार और धरोहर विशेषांक साबित हुआ। यह विशेषांक सारे विशेषांकों से अलग नजर आया। 'साहित्य अमृत' के २२ वर्ष पूरे करने पर ढेर सारी बधाई। संपादकीय में ७१वें स्वाधीनता दिवस की झलक मिली; उसमें ढेरों विषयों पर विचार हमें खूब पसंद आए। सभी लेख ज्ञान की माला पिरोए नजर आए। इस तरह के विशेषांक धरोहर के रूप में रखने योग्य हैं, ताकि आनेवाली पीढ़ी इस पढ़कर कुछ सीख अर्जित कर सके। देश-विदेश की लोककथाएँ भी खूब पसंद आईं।

—बद्रीप्रसाद वर्मा 'अनजान', गोरखपुर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का 'लोक-संस्कृति विशेषांक' प्राप्त हुआ, बहुत भाया। मुझे विशेष आनंद इसलिए भी हुआ कि जिस 'साहित्य अमृत' की प्रकाशन योजना मेरे यहाँ पूना में बनी, उस 'साहित्य अमृत' की विशेषांक योजना में 'लोक-संस्कृति विशेषांक' अब जाकर आया, वह भी श्रद्धेय विद्यानिवासजी की पुण्य प्रतिस्मृति के साथ। इस हेतु आपका अभिनंदन और बधाइयाँ। यह अंक देश-विदेश की लोककथाओं के लिए याद रहेगा। लोक साहित्य और लोक-संस्कृति अभिन्न होते हुए भी एक नहीं भिन्न-भिन्न हैं और यह भी उतना ही सच है कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। लोक-संस्कृति किसी भी देश-विदेश, प्रांत, नगर, गाँव, जनपद, अंचल की जनजाति, जनसमूह, कबीले का पहनावा, खान-पान, मृत्यु गान, रैन और बसेरा है। जीवन की मूलभूत मनोवृत्तियाँ, इनसे जुड़ी मूलभूत प्रवृत्तियाँ, ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों की प्राकृतिक जरूरतें हैं। अनादिकाल से उपर्युक्त सभी की अभिव्यक्ति के जितने भी माध्यम— आंगिक, वाचिक, रेखांकन, वाद्य साधन उपलब्ध होते रहे, उनके द्वारा व्यक्त मूर्त-अमूर्त सर्वांगीण रूपाकार ही लोक-संस्कृति है। लोक साहित्य, लोक-संस्कृति (समग्रता में) की अपनी विविध विधाओं में वाचिक-शाब्दिक अभिव्यक्ति, उसका इतिहास और भूगोल दोनों ही हैं। इस दृष्टि से इस दिशा में 'साहित्य अमृत' का यह लोक-संस्कृति एक अच्छा और उल्लेखनीय प्रयास है। निस्संदेह भौगोलिक दृष्टि से तो है ही कि विशेषांक में देश के प्रमुख ही नहीं, बड़े ही नहीं, छोटे जनपद अंचलों को भी समाविष्ट किया है। उनकी लोक-संस्कृति से परिचय करा व्यापक फलक देने का प्रयत्न किया है। पर अच्छा ही होता यदि विद्वान्-विदुषी लेखक अपने आलेखों में अन्य प्रांतों से भिन्न अपने प्रदेश अंचल की लोक-संस्कृति, उन पक्षों को खास तौर से उभारते, जिनके नामों से तो अन्य प्रांतों के लोग परिचित हैं, जैसे महाराष्ट्र की लावणी, राजस्थान की घूमर, ब्रज की रासलीला, गुजरात का गरबा आदि। फिर भी अंक पठनीय, सग्रंहणीय बन पड़ा है।

—डॉ. मालती शर्मा, पुणे

'साहित्य अमृत' का अगस्त 'लोक-संस्कृति विशेषांक' प्राप्त हुआ। इस अंक में बहुत से दिग्गज लेखकों ने जिस प्रकार लोक-संस्कृति का पक्ष प्रस्तुत किया है, उससे हमें अपने देश की समृद्ध संस्कृति को और भी भली प्रकार से जानने-समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। भारत तो यों भी विभिन्नताओं का गुलदस्ता है, पर यहाँ सुधी लेखकों ने हर प्रांत की लोक-संस्कृति को उपस्थित करके पत्रिका को संग्रहणीय बना दिया है। इसके उपरांत लोककथाएँ···क्या बात है। आदरणीय मृदुलाजी, नर्मदा प्रसादजी, व्यासमणि त्रिपाठी व डॉ. विद्याविंदु सिंहजी को पढ़कर सुखद संतुष्टि होती है। सबसे बढ़िया बात तो यह हुई कि इस अकेले अंक में संपूर्ण भारत की लोक-संस्कृति सिमट आई है। बहुमूल्य सामग्री के संग्रहण हेतु बधाई।

—आशा शैली, नैनीताल

'साहित्य अमृत' का लोक-संस्कृति विशेषांक प्राप्त कर बहुत ही प्रसन्नता हुई। इस विशेषांक में भारत की लोक-संस्कृति तथा लगभग सभी राज्यों की लोक-संस्कृति के बारे में विशेष आलेखों को प्रकाशित किया, जो एक अभूतपूर्व उपलब्धि है। इतने बड़े—२६८ पृष्ठ के विशेषांक को अतिशीघ्र प्रकाशित करके भिजवाया, इसके लिए कितना श्रम किया होगा, यह अवर्णनीय है। इसके द्वारा सभी राज्यों की लोक-संस्कृति की जानकारी व महत्त्वपूर्ण बातों से अवगत कराया। एतदर्ल आपको बहुत-बहुत धन्यवाद!

—कृष्णचंद्र टवाणी, किशनगढ़ (राज.)

कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कामरूप तक फैली भारतीय सभ्यता-संस्कृति अपने आप में विश्व का एक उत्कृष्ट अनूठा उदाहरण है। इस कड़ी को जोड़ता हुआ 'साहित्य अमृत' का लोक-संस्कृति से परिचय करानेवाला अगस्त अंक अद्‌भुत, अविस्मरणीय लगा। आलेखों के साथ-साथ देश-विदेश की लोककथाएँ सराहनीय, प्रशंसनीय और अभिनंदनीय रहीं। 'आजादी के तराने' (सं. राजेंद्र पटोरिया) पढ़कर रोंगटे खड़े हुए। सभी शहीदों के आगे मेरा शीश-नमन। कुछ मिलाकर मन, तन तृप्त करनेवाला अंक संपादकीय मंडल के परिश्रम का मीठा फल है। अनंत शुभकामनाएँ!

—अशोक वाधवाणी, गांधीनगर (महा.)

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक यथासमय प्राप्त हुआ। संपादकीय में समकालीन विषयों का विश्लेषण उच्चकोटि का है। भारतीय संस्कृति तथा सभी राज्यों की संस्कृति का बोधगम्य विवरण सराहनीय है। पं. विद्यानिवास मिश्र की रचना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्रीमती मृदुला सिन्हा का लेख भोजपुर की माटी की सुगंध लिये हुए है। यों तो सभी रचनाएँ अपने आप में सराहनीय हैं, लेकिन अवध क्षेत्र की संस्कृति की रचना विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

—एस.एन. मिश्र, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' का लोक-संस्कृति केंद्रित बहुआयामी अंक मिला। बहुत मन से इस क्षेत्र के सुधी लेखकों ने अपने आलेख लिखे हैं, काश अब विद्यानिवासजी होते तो अपने इस वृक्ष को इस तरह पल्लवित देखकर

बहुत खुश होते। संपादक श्रीयुत चतुर्वेदी का संपादकीय तो सबकुछ का व्यापक अवगाहन होता है, उसे मैं नियमित तौर पर पढ़ता हूँ और उनकी प्रज्ञा को सराहता हूँ।

—ओम निश्चल, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' का अगस्त 'लोक-संस्कृति विशेषांक' प्राप्त हुआ। देश भर की लोक-संस्कृतियों के मोतियों को जिस ढंग से साहित्य अमृत द्वारा पिरोया गया है, वह सराहनीय है।

—राजीव उपाध्याय यायावर, सहारनपुर

'साहित्य अमृत' का अगस्त 'लोक-संस्कृति विशेषांक' मिला। समसामयिक प्रासंगिक विषयों से संपृक्त संपादकीय प्रभावपूर्ण है। पं. विद्यानिवास मिश्रजी की प्रतिस्मृति 'भारतीय संस्कति में लोक की प्रतिष्ठा' स्तुत्य है। माननीय कृष्ण गोपालजी का आलेख 'भारतीय कला और संस्कृति' आनंद की निष्पत्ति कराता है। सुप्रसिद्ध कथाकार श्रीमती मृदुला सिन्हाजी का आलेख 'भारतीय संस्कृति लोक-संस्कृति में जीवंत है' अपनी प्रासंगिकता में उत्कृष्ट है। डॉ. सुरेश गौतम की लोकगाथा में भारत के विभिन्न अंचलों में अलग-अलग नामों से पुकारी जाती गाथाओं में अंतसूर्यात्मक दूब-दधि-अच्छत का मंथन-रस है। विजयदत्त श्रीधरजी लोक-संस्कृति में विज्ञान के दर्शन कराते हैं। संदीप राशिनकरजी का लोक मंगलकारी चित्रांकन लोक-संस्कृति की पारंपरिक झलक दिखाता है और पुष्पिता अवस्थीजी के आलेख 'भारतवंशियों की वैश्विक लोक-संस्कृति' में विश्व के भारतवंशियों में भारतीय धर्म और अध्यात्म की कैसी महिमा समाहित है, यह वाक्य हमें अनंत की यात्रा करा देता है। सभी राज्यों की लोक-संस्कृति के आलेख पढ़कर आनंद सागर में डूबता-उतरता मन कहता है कि भले ही इन राज्यों की यात्रा न भी कर सकें तो लोक-संस्कृति के इन आलेखों ने जीवन की विविधता की लोक मंगलकारी यात्रा करा दी है। हम पाते हैं कि भारत के कोने-कोने की लोक-संस्कृति में विभिन्नता होते हुए भी उनकी आधारभूमि एक ही प्रकार की है। 'लोक-संस्कृति विशेषांक' के समस्त रचनाकारों एवं 'साहित्य अमृत' की पूरी टीम को कोटि-कोटि प्रणाम।

—डॉ. नर्मदा प्रसाद सिसोदिया, होशंगाबाद (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का 'लोक-संस्कृति विशेषांक' प्राप्त हुआ। पूरा अंक भारत के विभिन्न अंचलों की लोक-संस्कृतिमूलक सामग्री से अत्यंत धन्य और धनी है। लोककथाओं और लघुकथाओं वाले पृष्ठ पाठक को तत्काल अपना बना लेते हैं। संपादन अद्‌भुत है। 'साहित्य अमृत' के सभी सदस्यों को इस विशेषांक पर बार-बार बधाइयाँ।

—बालकवि बैरागी, नीमच (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। अंक मूलत: भारत की लोक-संस्कृति पर केंद्रित है। संपादकीय में लोक-संस्कृति की विविधता और दैनिक व्यावहारिकता पर गहन वैचारिक चिंतन प्रस्तुत किया गया है, जो लोक-संस्कृति के फलक को सम्यक् समझने की दृष्टि देता है। दरअसल भारतीय संस्कृति की विविधता और उस विविधता में एकता ही यहाँ के जन-जीवन की विशेषता है। संपादक मंडल ने बड़ी श्रम-साध्यता और कला-कुशलता से इसे जुही की माला में चंपक पुष्पों की भाँति सँजोया है, जो अपनी बहुवर्णीय झाँकी और सोंधी सुगंध से प्रबुद्ध पाठक-वर्ग को सम्मोहित करने में पूरी तरह सक्षम है। यों तो लोक साहित्य में लोक-संस्कृति स्वयं झलकती है और अपनी सार्थकता सिद्ध करती है, लेकिन आलोच्य अंक में उन सबका समग्रता में संपादन अधिक अर्थवान है। मनीषी विद्वान् नंदकिशोर पांडेय का लेख 'भोजपुरी लोकगीत संस्कृति का आईना' भोजपुरी क्षेत्र के लोक-संस्कारों को सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में जानने का जुड़ाव जगाता है। यद्यपि आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने लोकगीतों का संकलन/संपादन किया है, उस परिप्रेक्ष्य में, यह लेख अपनी संक्षिप्तता के बावजूद वाकई 'आईना' ही है। लोक-संस्कृति के विज्ञान पर विजयदत्त श्रीधर का लेख चिंतनपरक लगा। मालिनी अवस्थी के विचारों में सांस्कृतिक भावों की गहराई है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने कला-दृष्टि से लोक-संस्कृति को परिनिष्ठित किया है। बलवंत जानी के विद्वतापूर्ण आलेख में तत्त्व और तंत्र को केंद्र में रखकर बारीक विवेचन किया है। कन्नौज के सांस्कृतिक वैभव को रमेश तिवारी 'विराम' ने विकासात्मक विधि से विवेचित किया है तो अंडमान और निकोबार की लोक-संस्कृति पर व्यासमणि त्रिपाठी की प्रस्तुति गहरी पकड़ का प्रमाण पेश करती है।

इसी प्रकार कुमाऊँ लोक-संस्कृति पर करुणा पांडेय का वैचारिक परिदृश्य विशिष्ट गुण-तत्त्व से युक्त है। गुजराती लोक-संस्कृति पर अनीता परमार का लेख उनकी गहरी परख और पैनी दृष्टि का परिचायक है। प्रोजेश सेनगुप्ता ने बँगला लोक-संस्कृति की खूबियों से रूबरू कराया है। ब्रज की लोक-संस्कृति (राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी), मैथिली लोक-संस्कृति : एक परिचय (उषा किरण खान) अपनी अतिरिक्त उपादेयता लिये हैं। अन्य आलेख भी भारत की लोक-संस्कृति के मूल्य, महत्त्व और महनीयता को निर्विवाद रूप से रेखांकित करते हुए अपनी शाश्वतता सिद्ध करते हैं। संस्कृति सभ्यता की आत्मा है। किसी देश-समाज की संस्कृति उसकी अमूल्य थाती होती है। इस तईं भारत के प्राय: सभी प्रांतों की लोक-संस्कृति का प्रस्तुत पत्रिका में समाहार एक दस्तावेजी प्रयास है। निस्संदेह इसकी उपयोगिता चिरकाल तक बनी रहेगी। अस्तु, समृद्ध संपादन के लिए पुन:-पुन: साधुवाद।

—डॉ. राहुल, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' ने 'लोक-संस्कृति विशेषांक' के माध्यम से समूचे भारतीय संस्कृति से पाठकों को रूबरू करके जो कुछ भी परोसा है, वह मात्र संग्रहणीय ही नहीं, वरन् संस्कृति के इतिहासकारों हेतु जो सामग्री प्रस्तुत की है, वह शोध के लिए एक महान् या यों कहिए महती, लुभावनी एवं प्रस्तुत प्रचुर सामग्री से लैस वह २६८ पृष्ठ की पत्रिका है, जो वर्षों तक पठन-पाठन की दृष्टि से अभूतपूर्व होगी, यह विश्वास है हमको। साथ ही 'साहित्य का भारतीय परिवार्श्व' के अंतर्गत लघुकथाओं के

सहारे ५८ पृष्ठों में भारत एवं संसार की लोककथाओं से पाठकों को जो कुछ भी दिया है, वह हमें सीखाता तो है ही; साथ ही मनन करने को भी बाध्य करता है कि हम मानव संस्कार, संस्कृति के विश्लेषण में सबको साथ लेकर चलने में गौरव महसूस करते हैं।

—मदन मोहन वर्मा, गाजियाबाद

'साहित्य अमृत' का अगस्त 'लोक-संस्कृति विशेषांक' अनूठा तथा संग्रहणीय है। ऐसे उल्लेखनीय अंक के प्रकाशन पर मेरा साधुवाद।

—डॉ. महश्वेता चतुर्वेदी, बरेली

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में वर्णित विचारों से एक स्वस्थ, सही अद्यतन जानकारी मिल जाती है, जो सुखद है। रचनाओं में विशेष रूप से रेणु की 'लाल पान की बेगम', जनकदेव जनक का 'लौटा दो सावन', गोपाल चतुर्वेदी का 'भ्रष्टाचार के किले की प्रेरक कथा', ज्योत्स्ना 'प्रवाह' का 'त्रिया चरित्रम्', शशिकांत सिंह 'शशि' कर 'एक डॉक्टर की कथा', कृपाशंकर शर्मा 'अचूक' तथा मालिनी गौतम की रचनाएँ अच्छी लगीं। पूरन सरमा का 'अपना ईश्वर' ने भी जमाने की नब्ज टटोलने की अच्छी कोशिश की है।

—नंदकिशोर तिवारी, वाराणसी

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक संपादकीय की वजह से उम्दा लगा। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी 'लाल पान की बेगम' गाँव-देहात के भावों-अनुभावों का सजीव चित्रण करती हुई पाठक को प्रभावित करती है। 'भीगे सावन की पुरवाई' गीत अच्छा लगा। 'भोर रँगीली, शाम रँगीली' गीत गेयता एवं भाव-प्रवाह के कारण उम्दा लगा। दया दीक्षित की बाल कहानी 'जगह' भी प्रेरक लगी। अन्य कहानियाँ, लघुकथाएँ एवं आलेख बहुत अच्छे एवं प्रभावी लगे।

—विजयपाल सेहलंगिया, महेंद्रगढ़ (हरि.)

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक पढ़ा, निश्चय ही यह एक श्रेष्ठ हिंदी पत्रिका का श्रेष्ठ अंक है। समसामयिक घटनाओं की पड़ताल करता संपादकीय, जहाँ मोदी सरकार के तीन वर्ष की विशिष्ट उपलब्धियों की चर्चा है, वहीं विपक्षी दलों के 'खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे' वाले क्रियाकलापों पर भी दृष्टिपात किया है। इससे पाठक को वर्तमान परिस्थितियों को समझने की नई दृष्टि प्राप्त होती है। 'त्रिया चरित्रम्' एक उच्चकोटि का आलेख है, ज्योत्स्नाजी ने सनातन काल से चले आ रहे आरोप की धज्जियाँ उड़ाने में सफलता पाई है। कहानियों में जनकदेव 'जनक' की कहानी 'लौटा दो सावन' नारी मन के कोने-कोने की जीवंत तसवीर प्रस्तुत करती है। 'अपना ईश्वर', 'दो बाँके', 'रोशनी के साए', 'गोबरधन' सभी कहानियाँ अपने आप में अनूठी हैं। रचनाओं के चयन के लिए संपादक की पारखी नजर की दाद देनी पड़ती है। 'राम झरोखे बैठ के' में गोपाल चतुर्वेदीजी ने इस बार लोकतंत्र की चादर के ऐसे छिद्र दिखा दिए, जिसमें से सारा आकाश ही काला नजर आ रहा है। प्रेमपालजी ने अपनी 'अथश्री जूनागढ़-डाकोर तीर्थयात्रा कथा' का अत्यंत सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। इन तीर्थों के बारे में ऐसी जानकारी दी है, जिसे अधिकांश लोग नहीं जानते, अपनी विरासत से अपने लोगों को जोड़ने का कार्य बड़े सुव्यवस्थित ढंग से संपन्न किया है। निश्चय ही यह अंक पठनीय एवं संग्रहणीय बन पड़ा है।

—तुलसीदेवी तिवारी, बिलासपुर (छ.ग.)

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक प्राप्त हुआ। मुखपृष्ठ पर बारिश की बूँदें और खूबसूरत चिड़िया बहुत अच्छी लगीं। सिद्ध कलाकार सिद्धेश्वर के चित्र सुंदर हैं। संपादकीय में राजनीतिक स्थितियों का आकलन हमेशा की तरह खरा-खरा है। साथ में 'एक भूला बिसरा साहित्यकार' खेतीलाल शाह का स्मरण एवं परिचय भी प्राप्त हुआ। पूरन सरमा की व्यंग्य से इतर कहानी 'अपना ईश्वर' अच्छी रचना है। गुजराती कहानी 'ध्वन्यार्थ' में बेटी तो 'रोशनी के साए में' कहानी में बेटे के भीतर माता-पिता के प्रति प्रेम और दायित्व के सूखते जाने का वर्णन कचोटता है। 'गोबरधन' का अप्रत्याशित अंत खुद्दारी को मंडित करनेवाला है। बालकथा 'जगह' में लेखिका दया दीक्षित से ज्ञात हुआ कि एक सत्यकथा का ही चित्रण है। कथा प्रवाहपूर्ण एवं शिक्षाप्रद है। बंगाल के रचनाकारों में अलका सरावगी का कहना, 'इन पुरुषों का अहंकार···असल में है।' समस्या की नब्ज पकड़ना है। संयोग से 'त्रिया चरित्रम्' ज्योत्स्ना प्रवाह का ध्वन्यार्थ भी यही है। 'एक डॉक्टर की कथा' व्यंग्य मजेदार है। सुधीर निगम की 'रोशनी के साए' में 'पत्नी ने सुदामा बनाकर भेजा, पर बेटा कृष्ण न बन पाया।' वाक्य याद रहेगा। 'बहुत बड़ा नहीं था मेरा सपना' कविता मार्मिक है। श्री प्रेमपाल शर्मा के यात्रा संस्मरण इतने सरल-सीधे-रोचक होते हैं कि अगर कोई पाठक उसी जगह जाए और संस्मरण की फोटोकॉपी भी साथ रख ले तो यात्रा सरल हो जाए।

—आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर, उज्जैन

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक प्राप्त कर बहुत प्रसन्नता हुई। भारत के विभिन्न देशों की लोक-संस्कृति को, जिसे यदि देखा जाए तो अलग-अलग ग्रंथों में समेटना भी असंभव सा जान पड़ता है, लेकिन उसे मात्र २६८ पृष्ठों में समेटकर इस अंक ने अत्यंत सराहनीय कार्य किया है, यह अपने आपमें एक महान् उपलब्धि है। विविधता में एकता की झलक प्रस्तुत करता यह अंक हमारी संस्कृति से रूबरू कराता है। इस विशेषांक में हमारी संस्कृति की मिट्टी की खुशबू समाहित है। फूलों की खूबसूरती की प्रशंसा तो हर कोई करता है, पर इन सबमें उसकी महक उपेक्षित हो जाती है। पत्रिका के इस अंक में भारतीय संस्कृति के विविध आयामों को बहुत ही खूबसूरती के साथ पेश किया गया है, जिससे हम सभी अपनी संस्कृति की महक को महसूस कर पा रहे हैं। लोककथाएँ और लघुकथाएँ बहुत ही मनोरंजक हैं, जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। भारतीय संस्कृति से जुड़ी लघुकथाओं के साथ-साथ विदेशी लघुकथाओं का समावेश भी इस अंक को विश्वस्तर से जोड़ने का प्रयास है। इस आकर्षक प्रस्तुति के लिए 'साहित्य अमृत' की पूरी टीम को बधाई।

—अनुराधा, हरिद्वार (उत्तराखंड)

डॉ. मैनेजर पांडेय को 'शलाका सम्मान'

विगत दिनों नई दिल्ली के हिंदी भवन में हिंदी अकादमी द्वारा आयोजित सम्मान-अर्पण समारोह में श्री राजेंद्रपाल गौतम के मुख्य आतिथ्य एवं श्री वी. अब्राहम के विशिष्ट आतिथ्य में डॉ. मैनेजर पांडेय को 'शलाका सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें पाँच लाख रुपए की राशि, प्रशस्ति-पत्र और शॉल भेंट की गई। इस अवसर पर हिंदी अकादमी द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' के वार्षिकी अंक का विमोचन किया गया। विशिष्ट सृजनात्मक योगदान के लिए अकादमी का 'शिखर सम्मान' सुश्री नूर जहीर एवं 'संतोष कोली स्मृति सम्मान' डॉ. जगमति सांगवान को दिया गया। सम्मानस्वरूप दो-दो लाख रुपए की राशि, प्रशस्ति-पत्र, शॉल भेंट की गई। इसके अतिरिक्त हिंदी अकादमी का 'विशिष्ट योगदान सम्मान' डॉ. जयप्रकाश कर्दम को; 'पत्रकारिता सम्मान' श्री मधुसूदन आनंद व नवीन कुमार को; 'गद्य विधा सम्मान' श्री रमेश उपाध्याय को; 'काव्य सम्मान' डॉ. सविता सिंह को; 'नाटक सम्मान' प्रो. रामगोपाल बजाज को; 'हास्य व्यंग्य सम्मान' श्री सहीराम को; 'अनुवाद सम्मान' डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र को; 'हिंदी सेवा सम्मान' डॉ. जानकीप्रसाद शर्मा को; 'ज्ञान-प्रौद्योगिकी सम्मान' श्री राजेश जैन को; 'बाल-साहित्य सम्मान' डॉ. प्रभाकिरण जैन को तथा 'सहभाषा सम्मान' श्री महेश कटारे को प्रदान किया गया। सम्मानस्वरूप सभी को एक-एक लाख रुपए की राशि, प्रशस्ति-पत्र और शॉल भेंट की गई। आभार डॉ. जीतराम भट्ट ने व्यक्त किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों जोधपुर के होटल में सर्वश्री रविदत्त मोहता, हरिदास व्यास, मुरलीधर वैष्णव, सुधीर सिंह सुधाकर द्वारा श्री कृष्ण कुमार यादव व उनकी पत्नी श्रीमती आकांक्षा यादव को उनकी रचनाओं के पाठ के लिए 'रचना स्वर्ण प्रतिभा सम्मान', 'रचना प्रतिभा सम्मान' एवं 'शतकवीर सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें शॉल, प्रशस्ति-पत्र व स्मृति-चिह्न भेंट किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री रमाकांत शर्मा, मदन मोहन परिहार, हबीब कैफी, हरिप्रकाश राठी, पद्मजा शर्मा, जेबा रशीद, पुष्पलता कश्यप, बसंत कुमार, भानु मित्र, अनिल अनवर, अक्षय गोजा, अर्जुन देव चारण, मनशाह नायक, दिनेश सिंदल, खुर्शीद खैराडी आदि साहित्यकारों को 'शतकवीर सम्मान' से सम्मानित किया गया। □

श्री स्वयं प्रकाश सम्मानित

विगत दिनों बच्चों और किशोरों के लिए महत्त्वपूर्ण लेखन के लिए प्रसिद्ध कथाकार श्री स्वयं प्रकाश को उनकी बाल साहित्य कृति 'प्यारे भाई रामसहाय' के लिए 'साहित्य अकादेमी पुरस्कार' से सम्मानित करने की घोषणा की गई। सम्मानस्वरूप उन्हें पचास हजार की राशि एवं प्रतीक चिह्न भेंट किया जाएगा। □

सम्मान समारोह संपन्न

२३ अगस्त को कोलकाता में फ्रेंड्स ऑफ कोलकाता की ओर से कलामंदिर प्रेक्षागृह में आयोजित 'शंखनाद' कार्यक्रम में डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी को 'राष्ट्र भारती सम्मान' से सम्मानित किया। सम्मानस्वरूप उन्हें मानपत्र एवं ५१,०००/- की राशि प्रदान की गई। इस अवसर पर डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र एवं श्री राजेंद्र खंडेलवाल ने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री प्रकाश चंडालिया ने किया तथा धन्यवाद श्री अशोक पारिक ने ज्ञापित किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

२-३ अक्तूबर को राजस्थान के सलूंबर में हिंदी बाल कहानियों के लिए दिए जानेवाले 'स्वतंत्रता सेनानी ओंकारलाल शास्त्री स्मृति पुरस्कार' के अंतर्गत रु. ३०००/- की राशि का प्रथम पुरस्कार डॉ. मोहम्मद साजिद खान को, रु. २०००/- की राशि का द्वितीय पुरस्कार श्री रजनीकांत शुक्ल को, रु. १५००/- की राशि का तृतीय पुरस्कार डॉ. लता अग्रवाल को तथा श्रेष्ठ बाल कहानियों के अंतर्गत रु. १०००/- की राशि से सर्वश्री पंकज वीरवाल, अलका प्रमोद, कमलेश चौधरी, सावित्री चौधरी, राजेंद्र श्रीवास्तव, देशबंधु शाहजहाँपुरी, गुडवीन मसीह, अलका अग्रवाल, ओमप्रकाश क्षत्रिय, किशारे श्रीवास्तव को देने की घोषणा की गई। रु. २५००/- की राशि के 'मेवाड़ गौरव' से श्री माधव दरक तथा रु. २०००/- की राशि के 'सलूंबर श्री अलंकरण' से श्री हेमंत भट्ट को सम्मानित करने की घोषणा की गई। □

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली के हिंदी भवन सभागार में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन की १३६वीं जयंती के अवसर पर प्रख्यात पत्रकार पंडित भीमसेन विद्यालंकार की स्मृति में प्रतिवर्ष हिंदी भवन द्वारा दिया जानेवाला 'हिंदीरत्न सम्मान' सर्वश्री जगदीश्वर गोवर्धन, कमलकिशोर गोयनका, त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, गोविंद व्यास, रत्ना कौशिक व सरला माहेश्वरी द्वारा मॉरीशस के प्रतिष्ठित हिंदी लेखक श्री प्रह्लाद रामशरण को प्रदान किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें रजत श्रीफल, शॉल, सरस्वती प्रतिमा, प्रशस्ति-पत्र एवं एक लाख रुपए की राशि प्रदान की गई। मंचस्थ अतिथियों ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्रीमती सरला माहेश्वरी ने किया तथा आभार डॉ. गोविंद व्यास ने व्यक्त किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

५ अगस्त को हैदराबाद के फापसी सभागृह में डॉ. शुभदा वांजपे की अध्यक्षता में कमला गोइंका फाउंडेशन द्वारा आयोजित समारोह में डॉ. टी. मोहन सिंह को हिंदी भाषा में साहित्यिक योगदान के लिए 'भाभीश्री रमादेवी गोइंका हिंदी साहित्य सम्मान', श्रीमती पारनंदि निर्मला

को 'गीतादेवी गोइंका हिंदी-तेलुगु अनुवाद पुरस्कार' एवं श्रीमती कुमुद जैन को 'श्री मुनींद्र पत्रकारिता सम्मान' से सम्मानित किया गया। संचालन श्रीमती मीना मूठा ने किया तथा आभार श्री ओमप्रकाश गोइंका ने व्यक्त किया। ☐

जयंती समारोह संपन्न

विगत दिनों इंद्रधनुष साहित्य परिषद् फारबिसगंज द्वारा राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त एवं श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' की जयंती मनाई गई। इस अवसर पर सर्वश्री अजित दत्त, मांगन मिश्र, हेमंत यादव, रण विजय यादव, हर्ष नारायण दास, परमेश्वर साह, सुरेंद्र प्रसाद मंडल, राजू विद्यार्थी एवं महेंद्रनाथ झा ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री विनोद कुमार तिवारी ने किया। ☐

जयंती समारोह संपन्न

३ अगस्त को वर्धा के सरोजिनी नायडू सभागार में तथा ४ अगस्त को महात्मा गांधी आयुर्विज्ञान संस्थान में प्रो. गिरीश्वर मिश्र की अध्यक्षता में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की १३१वीं जयंती आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री आनंद वर्धन शर्मा, श्रीराम परिहार, नंदिनी मेहता, एस. छाबड़ा, के.आर. पातोंड, ओ.पी. गुप्ता, सतीश कुमार, तनया सेठ, अनवर अहमद सिद्दीकी, अनिल कुमार दुबे ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. अनुपमा गुप्ता ने किया तथा आभार श्री नरेंद्र दंढारे ने व्यक्त किया। ☐

गोस्वामी तुलसीदास जयंती संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली में गोस्वामी तुलसीदास की जयंती के अवसर पर हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा गोस्वामी तुलसीदास चौक पर (लालकिले के सामने) तुलसीदासजी की मूर्ति स्थापित की गई, जिसमें सर्वश्री महेश चंद्र शर्मा, रवि कप्तान, सुमन गुप्ता, रामशरण गौड़, नीलम राठी, विनोद बब्बर, इंदिरा मोहन, नरेंद्र मुद्गल, वेद प्रकाश उपस्थित थे। ☐

सन्निधि संगोष्ठी संपन्न

२२ जुलाई को नई दिल्ली की गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा में श्री मुकेश भारद्वाज की अध्यक्षता में काका साहेब कालेलकर एवं विष्णु प्रभाकर की स्मृति में 'कविताओं में महिलाएँ' विषय में सन्निधि संगोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें मुख्य अतिथि डॉ. नरेंद्र मोहन, विशिष्ट अतिथि सर्वश्री प्रियदर्शन, अनिता भारती, ममता धवन ने श्रीमती कुलिना कुमारी की पुस्तक 'आवाज मेरे मन की' का लोकार्पण करते हुए अपने विचार व्यक्त किए। साथ ही सर्वश्री केदारनाथ, लाडो कटारिया व अनुराधा कनौजिया ने भी अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री प्रसून लतांत व सुश्री किरन आर्या ने किया। ☐

कवि सम्मेलन संपन्न

२५ जुलाई को अलीगढ़ के पाम ट्री होटल में पद्मभूषण श्री नीरज की अध्यक्षता में आयकर स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में कवि सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री कुँअर बेचैन, सूर्यकुमार पांडेय, सुरेश नीरव, शंभू शिखर, प्रेमकिशोर पटाखा, शशांक प्रभाकर, अलीहसन मकरेंडिया, सुनील बाजपेयी 'सरल', हरीश बेताब, कीर्ति काले व अशोक अंजुम ने काव्य पाठ किया। संचालन डॉ. कीर्ति काले ने किया। ☐

'खरी-खरी' का आयोजन संपन्न

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर बाराबंकी में सुमन फाउंडेशन के सौजन्य से श्री रंजीत बहादुर के मुख्य आतिथ्य तथा श्री किशोर श्रीवास्तव के संयोजन में जन चेतना कार्टून पोस्टर प्रदर्शनी 'खरी-खरी' का भव्य आयोजन किया गया। अंत में सभी विजेता बच्चों और युवाओं को पुरस्कार बाँटे गए। संचालन श्रीमती अमिता शुक्ला ने किया। ☐

व्याख्यानमाला आयोजित

२४ जुलाई को रायपुर के कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के नए सत्र में विद्यार्थियों के लिए आयोजित कार्यक्रम में सर्वश्री जगमोहन सिंह राजपूत, मानसिंह परमार व गिरीशकांत पांडेय ने 'पत्रकारिता जगत् की सबसे बड़ी जरूरत विवेक है' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. शाहिद अली ने किया। ☐

जन्मदिवस समारोह संपन्न

१५ अगस्त को नई दिल्ली में प्रो. रामदरश मिश्र के आवास पर उनके जीवन के ९३ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें डॉ. वेद मित्र शुक्ल व श्री संजय प्रभाकर, ओम निश्चल, प्रेम जनमेजय, प्रताप सहगल एवं नरेश शांडिल्य ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर श्री मिश्र की चार पुस्तकों 'संवाद यात्रा', 'रात सपने में', 'एक बचपन यह भी' व 'सपना सदा पलता रहा'; रामदरश पर केंद्रित मासिक पत्रिका 'प्राची' अंक, प्रेम जनमेजय के व्यंग्य-संग्रह 'भ्रष्टाचार के सैनिक' तथा श्री लालित्य ललित की पुस्तक 'चुप्पी में से', 'उद्घोष' व 'आदत सी तुम्हारी' का लोकार्पण किया गया। संचालन डॉ. लालित्य 'ललित' ने किया तथा आभार सुश्री रीता मिश्र ने व्यक्त किया। ☐

जन्मदिवस आयोजित

२४ जून को विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान एवं गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा द्वारा विष्णु प्रभाकर के १०६वें जन्मदिवस पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा की अध्यक्षता में आयोजित सन्निधि संगोष्ठी में डॉ. वेदप्रताप वैदिक के मुख्य आतिथ्य एवं श्री राम अग्रवाल के विशिष्ट आतिथ्य में सर्वश्री प्रेम प्रकाश, ऋतु भनौट, विभूति देबवर्मा, आकाश दहिया, बबिता सिन्हा को सम्मानित किया गया। संचालन श्री प्रसून लतांत ने किया। ☐

विमोचन एवं चर्चा कार्यक्रम संपन्न

विगत दिनों इंदौर की केंद्रीय अहिल्या लाइब्रेरी में श्री चंद्रसेन विराट की अध्यक्षता एवं श्री राकेश शर्मा के मुख्य आतिथ्य में लोकार्पण एवं चर्चा संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें श्री अश्विनी कुमार दुबे

के नवीनतम उपन्यास 'स्वप्नदर्शी' का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर मंचस्थ अतिथियों के साथ सर्वश्री सतीश राठी व ज्ञान चतुर्वेदी ने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. पुरुषोत्तम दुबे ने किया तथा आभार श्री अशोक शर्मा भारती ने व्यक्त किया। ☐

परिसंवाद का आयोजन

१५ अगस्त को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी के सभाकक्ष में स्वतंत्रता दिवस की ७१वीं वर्षगाँठ के अवसर पर 'मेरे लिए स्वतंत्रता का अर्थ' विषय पर सर्वश्री श्रीनिवास राव, अभय कुमार दुबे, अनंत विजय, असगर वजाहत, गीतांजलि श्री, केकी एन. दारूवाला, लीलाधर मंडलोई, मालन वी. नारायण, नलिनी, प्रयाग शुक्ल, शरण कुमार, श्यौराज सिंह बेचैन, चित्रा मुद्गल ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री देवेश कुमार 'देवेश' ने किया। ☐

चर्चा समारोह संपन्न

विगत दिनों श्रीमती चित्रा मुद्गल के परामर्श में सक्रिय साहित्यिक संस्था 'चेतनामयी' की मासिक संगोष्ठी में डॉ. नरेंद्र कोहली की अध्यक्षता में वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित श्री प्रेम जनमेजय के व्यंग्य संकलन 'भ्रष्टाचार के सैनिक' पर चर्चा का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री नरेंद्र कोहली, विवेक, दिनेश कुमार, हरीश नवल, गीता, रश्मि लूथरा, मधु, मृदुला जैन, रेखा, साधना, रेणू जैन ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

'कालचिती' कृति लोकार्पित

विगत दिनों वहरागोड़ा कॉलेज में युवा कथाकार श्री शेखर मल्लिक के पहले उपन्यास 'कालचिती' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री महादेव टोप्पो, नरेश कुमार, राकेश मिश्रा, शोभाराम बेसरा, सत्यप्रिय महालिक ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

कुँअर बेचैन का 'अमृत महोत्सव' संपन्न

विगत दिनों गाजियाबाद में अखिल भारतीय साहित्य परिषद् एवं हिंदी भवन समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में डॉ. कुँअर बेचैन के जीवनयात्रा के ७५ वसंत पूर्ण कर लेने के उपलक्ष्य में 'अमृत महोत्सव' का आयोजन डॉ. गोपाल दास 'नीरज' की अध्यक्षता में किया गया। विशिष्ट अतिथि सर्वश्री बालस्वरूप राही, गोविंद व्यास, कृष्णमित्र, चैतन्य चेतन, देवेंद्र देव थे। इस अवसर पर सर्वश्री अशोक मधुप, अरुण सागर, तूलिका सेठ, कीर्ति रतन, रतन देव ने डॉ. कुँअर बेचैन का शॉल, पुष्पगुच्छ व अभिनंदन-पत्र भेंट कर अभिनंदन किया। ☐

राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

१-२ अगस्त को नई दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास' की स्थापना के ६० वर्ष पूरे होने के अवसर पर गोवा की राज्यपाल श्रीमती मृदुला सिन्हा की अध्यक्षता में 'भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का बोध' विषय पर छह सत्रों में राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें मुख्य वक्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल थे। विशिष्ट अतिथि डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री थे। न्यास के अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर पाँच कृतियों, जिनमें श्रीमती मृदुला सिन्हा की 'बिहार : इंद्रधनुषीय लोकरंग', श्री अनाथबंधु चटर्जी की 'महाजीवन : श्यामा प्रसाद मुखर्जी', सुश्री नीरजा माधव की 'भारत राष्ट्र और उसकी शिक्षा पद्धति', श्री वासुदेव शरण अग्रवाल 'भारत की मौलिक एकता' तथा श्री शंकर गोपाल की 'फिजिक्स इन एनशिएंट इंडिया' का लोकार्पण किया गया। धन्यवाद डॉ. रीता चौधरी ने ज्ञापित किया। प्रथम दिवस पर डॉ. सोनल मानसिंह की अध्यक्षता में 'साहित्य में स्वदेश भाव' विषय के प्रथम सत्र में सर्वश्री प्रेमशंकर त्रिपाठी, अग्नि शेखर, अवनिजेश अवस्थी ने विचार व्यक्त किए। श्री कृष्ण कुमार अष्ठाना की अध्यक्षता में 'बाल मन : लेखन की चुनौतियाँ' विषय पर केंद्रित द्वितीय सत्र में सर्वश्री प्रकाश मनु, क्षमा शर्मा, दर्शन सिंह आशट ने विचार व्यक्त किए। श्री दयाप्रकाश सिन्हा की अध्यक्षता में 'अस्मिता के प्रश्न और राष्ट्रीयता' विषय के तृतीय सत्र में सर्वश्री रवि टेकचंदाणी, लीलाधर जगूड़ी ने विचार व्यक्त किए। २ अगस्त को प्रो. नंदकिशोर पांडे की अध्यक्षता में 'जनजातीय साहित्य : परिधि के केंद्र की ओर' विषय पर प्रथम सत्र में सर्वश्री टी.वी. कट्टीमनी, अशोक भगत, रुद्रनारायण पाणिग्रही ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. देवेंद्र दीपक की अध्यक्षता में 'लोक साहित्य में भारत' विषय के द्वितीय सत्र में सर्वश्री श्रीराम परिहार, मालिनी अवस्थी, यतींद्र मिश्र ने विचार व्यक्त किए। सुश्री मालती जोशी की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय जागरण और महिला लेखन' विषय के तृतीय सत्र में सर्वश्री ऋता शुक्ल, नीरजा माधव, अद्वेता काला ने विचार व्यक्त किए। समापन सत्र में सर्वश्री केंद्रिय मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री डॉ. महेंद्रनाथ पांडेय, वरिष्ठ संघ-प्रचारक श्री रंगाहरि व प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. नरेंद्र कोहली ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

साहित्यिक क्षति

श्री चंद्रकांत देवताले नहीं रहे

७ नवंबर, १९३६ को मध्य प्रदेश के बैतूल जिले के जौल खेड़ा में जनमे वरिष्ठ साहित्यकार श्री चंद्रकांत देवताले का १४ अगस्त को निधन हो गया। वे लगभग इक्यासी वर्ष के थे। उन्होंने हिंदी कविता के चित्त को बदल देनेवाली कविताएँ लिखीं। वे साठोत्तरी हिंदी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर थे और १९६० के दशक में अकविता आंदोलन के साथ उभरे थे। उन्होंने इंदौर में एक कॉलेज में शिक्षक के रूप में अपनी सेवा दी। उन्हें 'साहित्य अकादेमी सम्मान' के अलावा 'मध्य प्रदेश शिखर सम्मान' व 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' भी मिला था। उनकी रचनाओं में 'रोशनी के मैदान के उस तरफ', 'पत्थर फेंक रहा हूँ' व 'हड्डियों में छिपे ज्वार' प्रमुख हैं।

साहित्य अमृत **परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि।**